Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रेमचन्द

कायाकल्प

CC-0

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रेमचंद साहित्य

उपन्यास : गोदान, वरदान, प्रतिज्ञा, गबन, कायाकल्प (दो भाग), निर्मला, सेवासदन, कर्मभूमि, प्रेमाश्रम (दो भाग), रंगभूमि (दो भाग), अहंकार, आजाद कथा (दो भाग)

कहानियां : मानसरोवर (आठ भाग), मंगलसूत्र व अन्य रचनाएं, सोलह अप्राप्य कहानियां, आजाद कथा (दो भाग) प्रेम पचीसी, प्रेमतीर्थ, प्रेमपूर्णिमा, प्रेम द्वादशी, प्रेम प्रसून, प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियां, गुप्त धन (दो भाग), टालस्टाय की कहानियां, सोजे वतन, नारी जीवन की कहानियां, ग्रामीण जीवन की कहानियां, प्रेमचंद की प्रतिनिधि कहानियां।

निबन्ध : प्रेमचंद के विचार (तीन भाग), साहित्य का उद्देश्य

नाटक : कर्बला, संग्राम, प्रेम की वेदी

ज़ीवनी : कलम, तलवार और त्याग, राम चर्चा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कायाकल्प

भाग-1

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu.
Acc. No. 5166 8
Dated 18-5-03

प्रेमचंद

G.M.C.E.J
5166

पी॰ एन॰ प्रकाशन, शाहदरा दिल्ली-32

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सर्वाधिकार :
प्रकाशक : पी॰ एन॰ प्रकाशन
518/6 बी॰, विश्वास नगर,
शाहदरा. दिल्ली–110032
संस्करण : 2000
मूल्य : 125.00
आवरण : सत्यसेवक मुखर्जी
मुद्रक : एस॰ एन॰ प्रिंटर्स. दिल्ली-110032

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्राक्कथन

'कायाकल्प' में जो पुनर्जन्म, पुनर्यौवन आदि की अलौकिक एवं आश्चर्यजनक घटनाएं हैं, वे निश्चित रूप से प्रेमचंद के उपन्यासों की शृंखला में एक नई विषय सामग्री का समावेश है।

'कायाकल्प' उपन्यास का मुख्य उद्देश्य धन, प्रभुता, ऐश्वर्य एवं विलास की अनिष्टकारिता दिखाना है। उपन्यास का सम्पूर्ण कथा-तंत्र एवं चरित्रों का सृजन इसी उद्देश्य से किया गया है।

'कायाकल्प' उपन्यास की कथा छः परिवारों की कथा है। यशोदा नन्दन और ख्वाज़ा महमूद के परिवारों को छोड़कर शेष चार परिवारों का मुख्य कथा से सीधा सम्बन्ध है। इन चार परिवारों के सभी पात्र कथा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। चक्रधर और अहिल्या, रानी देवप्रिया, विशालसिंह और मनोरमा तथा ठाकुर परिवार में लौंगी, कथा-रचना की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पात्र हैं। उपन्यास की मानसिक और शारीरिक कायाकल्प की कहानी इन्हीं पात्रों से सम्बन्धित है। इन सभी पात्रों में चक्रधर, अहिल्या, विशालसिंह के मन का कायाकल्प होता है। देवप्रिया की काया का कल्प होता है। शेष दो पात्र मनोरमा और लौंगी धन एवं विलास के वातावरण में रहने पर भी मानसिक परिवर्तन से बचे रहते हैं।

चक्रधर की कथा को तीन भागों में बांटकर देखा जा सकता है। एक–धन एवं प्रभुता से विहीन जीवन। दो–धन एवं प्रभुतापूर्ण जीवन। तीन–धन एवं प्रभुता मुक्त जीवन। इस विभाजन से यह स्पष्ट हो जाता है कि धन और प्रभुता ही वह केन्द्र बिन्दु है जो उसके जीवन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। चक्रधर अपने धन एवं प्रभुता विहीन जीवन में कोई भी काम धनार्जन के लिए नहीं करता। वह स्पष्ट रूप से धन की प्रभुता का विरोध करता है। इस काल में उसके चरित्र में देश-सेवा की उच्चतम स्थितियां विद्यमान हैं, क्योंकि वह धन, प्रभुता की माया शक्ति के प्रभाव-क्षेत्र से दूर रहना चाहता है। चक्रधर जैसे ही धन, प्रभुत्वपूर्ण जीवन में प्रवेश करता है उसके चरित्र में विकृतियां आने लगती हैं। वह इस काल में कर्मचारियों की 'तस्वीह' करता है, नौकरों को पीटता है एवं दण्ड-नीति का आश्रय लेता है। लेखक के अनुसार भी 'सम्पदा' ने उसका सर्वनाश कर दिया। चक्रधर सम्पत्ति पर अपने सिद्धान्तों को भेंट न करना चाहता था, लेकिन एक अवसर पर वह धनी एवं शक्ति सम्पन्न विशालसिंह के समान ही व्यवहार करता है। चक्रधर द्वारा बेगार न करने पर किसान को पीटने की घटना धन, प्रभुता के प्रभाव को प्रदर्शित करने के लिए ही संयोजित की गई है। इस घटना के निष्कर्ष में लेखक ने लिखा है कि 'रियासत की बू' उसमें अलक्षित रूप से समा जाती है और उसकी मनुष्यता, चरित्र और सिद्धान्त का ह्रास कर रही है। यह उपन्यास के प्रतिपाद्य का एक प्रमुख अंश है। प्रेमचंद धन, ऐश्वर्य, प्रभुताविहीन तथा धन, ऐश्वर्य, प्रभुतापूर्ण जीवन के अन्तर को स्पष्ट

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करके यह कहना चाहते हैं कि चक्रधर जैसे दृढ़ चरित्र एवं उच्च सिद्धान्तों वाले व्यक्ति का भी धन, प्रभुता उसके चरित्र का कायापलट कर देती है। लेखक ने इस परिवर्तन के लिए 'कायाकल्प' शब्द का प्रयोग किया है। गृह-त्याग के समय राज भवन चक्रधर को यह कहता प्रतीत होता है, "जो लोग मेरे आश्रय में आते हैं उनकी मैं कायाकल्प कर देता हूं, उनकी आत्मा को महानिद्रा की गोद में सुला देता हूं।" इस प्रकार लेखक ने 'कायाकल्प' शब्द से आत्मिक गुणों के नाश का अर्थ लिया है, लेकिन उपन्यास में धन, ऐश्वर्य, प्रभुता से मुक्त होने के पश्चात् चक्रधर के जीवन-चरित्र का जो उन्नयन होता है, उसे हम क्या कहेंगे। चक्रधर धन, प्रभुता के वातावरण से मुक्त होकर 'दरिद्र नारायण' एवं दुःखी जनों की सेवा करता है। चक्रधर का यह चारित्रिक उत्थान—मानसिक जगत का उत्थान, लेखक का ईप्सित कायाकल्प है। लेखक चक्रधर की कथा और उसके चरित्र से यह सन्देश देना चाहता है कि धन, ऐश्वर्य, प्रभुताविहीन व्यक्ति ही देश की सच्ची सेवा कर सकता है।

'कायाकल्प' में मुख्य कथा से ही धन, प्रभुता, ऐश्वर्य की अनिष्टकारिता सिद्ध नहीं होती, बल्कि उपन्यास के अनेक पात्रों ने अनेक स्थलों पर धन, प्रभुता की चर्चा की है और उसकी निन्दा-स्तुति में अपने विचार प्रकट किए हैं। उपन्यास में मनोरमा, चक्रधर, विशालसिंह तथा लौंगी अनेक स्थानों पर धन-प्रभुता एवं ऐश्वर्य-विलास की चर्चा करते हैं। उपन्यास के अन्य पात्र भी कई स्थानों पर धन-प्रभुता की चर्चा करते हैं। उपन्यास के प्रमुख पात्र अपने धन-प्रभुता विरोधी विचारों की घोषणा ही नहीं करते, बल्कि अपने जीवन की असफलताओं, कष्टों एवं दुर्गुणों के लिए अपने धन-प्रभुता-विलास-प्रेम को उत्तरदायी मानते हैं। उपन्यास में पात्रों की ऐसी उक्तियां भी हैं, जिनमें वे दूसरे पात्रों के कष्टों के लिए उनके धन-प्रभुता-प्रेम को मुख्य कारण मानते हैं। वागीश्वरी अहिल्या से स्पष्ट कहती है कि अगर तू धन के पीछे अंधी न हो जाती, तो तुझे यह दण्ड न भोगना पड़ता। अतः जब तक धन और राज्य का मोह न छोड़ेगी, तुझे उस त्यागी पुरुष के दर्शन न होंगे। लेखक ने अपनी टिप्पणियों में भी पात्रों की दुर्गति के लिए धन-प्रभुता को दोषी ठहराया है। प्रेमचंद के विचारानुसार 'सम्पदा' ने ही चक्रधर का सर्वनाश किया, 'धन-मद' के कारण ही अहिल्या को बुरे दिन देखने पड़े और वह 'दरिद्र' रहकर भी सुखी रह सकती थी। इस प्रकार, इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि धन-प्रभुता-ऐश्वर्य-विलास की अनिष्टकारिता दिखाना लेखक का सर्वप्रमुख उद्देश्य रहता है। इस उद्देश्य के साथ देवप्रिया-महेन्द्र की कथा भी जुड़ी हुई है। देवप्रिया-महेन्द्र की कथा विलास एवं भोगेच्छा की अतिशयता के परिणाम की कथा है। विलास के साधन धन से ही एकत्र होते हैं। इस कथा का प्रतिपाद्य है कि भोग-तृष्णा व्यक्ति को कभी सुखी नहीं बना सकती है। मानव के शरीर का कायाकल्प करने से कुछ नहीं होगा, उसके मन का उन्नयन, कायाकल्प करने से ही सच्चे सुख की उपलब्धि हो सकती है। विलासिनी देवप्रिया का 'तपस्विनी देवप्रिया', बनने पर ही भविष्य उज्ज्वल होता है।

—रामआनंद

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

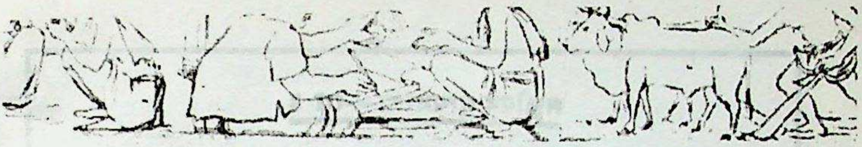

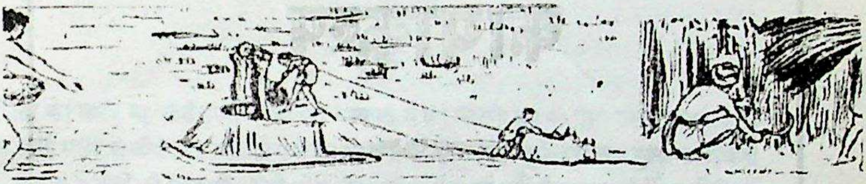

कायाकल्प

रचनाकाल : 10 अप्रैल, 1924 – 1926

प्रकाशनकाल : 1926

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सञ्जीवन-ग्रन्थमाला—रत्न १

सम्पादक—प्रेमचन्द

कायाकल्प

लेखक—

रंगभूमि, सेवासदन, प्रेमाश्रम, प्रेम-पूर्णिमा, प्रेम-पचीसी, प्रेम-प्रमोद, प्रेम-प्रतिमा, प्रेम-द्वादशी, नवनिधि, सप्तसरोज आदि के रचयिता—

प्रेमचन्द

प्रकाशक—

भार्गव-पुस्तकालय, गायघाट,

बनारस ।

—1926

प्रथमावृत्ति } १९८३ } मूल्य-२॥)

(प्रथम संस्करण का मुख पृष्ठ)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक

दोपहर का समय था; चारों तरफ अंधेरा था। आकाश में तारे छिटके हुए थे। ऐसा सन्नाटा छाया हुआ था, मानो संसार से जीवन का लोप हो गया हो। हवा भी बंद हो गई थी। सूर्यग्रहण लगा हुआ था। त्रिवेणी के घाट पर यात्रियों की भीड़ थी—ऐसी भीड, जिसकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती। वे सभी हिन्दू, जिनके दिल में श्रद्धा और धर्म का अनुराग था, भारत के हर एक प्रांत से इस महान् अवसर पर त्रिवेणी की पावन धारा में अपने पापों का विसर्जन करने के लिए आ पहुंचे थे, मानो उस अंधेरे में भक्ति और विश्वास ने अधर्म पर छापा मारने के लिए अपनी असंख्य सेना सजाई हो। लोग इतने उत्साह से त्रिवेणी के संकरे घाट की ओर गिरते-पड़ते लपके चले जाते थे कि यदि जल की शीतल धारा की जगह अग्नि का जलता हुआ कुंड होता, तो भी लोग उसमें कूदते हुए जरा भी न झिझकते?

कितने आदमी कुचल गए, कितने डूब गए, कितने खो गए, कितने अपंग हो गए, इसका अनुमान करना कठिन है। धर्म का विकट संग्राम था। एक तो सूर्यग्रहण, उस पर यह असाधारण अद्भुत प्राकृतिक छटा ! सारा दृश्य धार्मिक वृत्तियों को जगाने वाला था। दोपहर को तारों का प्रकाश माया के पर्दे को फाड़कर आत्मा को आलोकित करता हुआ मालूम होता था। वैज्ञानिकों की बात जाने दीजिए, पर जनता में न जाने कितने दिनों से यह विश्वास फैला हुआ था कि तारागण दिन को कहीं किसी सागर में डूब जाते हैं। आज वही तारागण आंखों के सामने चमक रहे थे, फिर भक्ति क्यों न जाग उठे ! सद्‌वृत्तियां क्यों न आंखें खोल दें !

घंटे भर के बाद फिर प्रकाश होने लगा, तारागण फिर अदृश्य हो गए, सूर्य भगवान की समाधि टूटने लगी।

यात्रीगण अपने-अपने पापों की गठरियां त्रिवेणी में डाल-डालकर जाने लगे। संध्या होते-होते घाट पर सन्नाटा छा गया। हां, कुछ घायल, कुछ अधमरे प्राणी जहां-तहां पड़े कराह रहे थे और ऊंचे कगार से कुछ दूर पर एक नाली में पड़ी तीन-चार साल की एक लड़की चिल्ला-चिल्लाकर रो रही थी।

सेवा-समितियों के युवक, जो अब तक भीड़ संभालने का विफल प्रयत्न कर रहे थे, अब डोलियां कंधों पर ले-लेकर घायलों और भूले-भटकों की खबर लेने आ पहुंचे। सेवा और दया का कितना अनुपम दृश्य था !

सहसा एक युवक के कानों में उस बालिका के रोने की आवाज पड़ी। अपने साथी से बोला—यशोदा, उधर कोई बच्चा रो रहा है।

यशोदानन्दन—हां मालूम तो होता है। इन मूर्खों को कोई कैसे समझाए कि यहां बच्चों को लाने का काम नहीं। चलो, देखें।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दोनों ने उधर जाकर देखा, तो एक बालिका नाली में पड़ी रो रही है। गोरा रंग था, भरा हुआ शरीर, बड़ी-बड़ी आंखें, गोरा मुखड़ा, सिर से पांव तक गहनों से लदी हुई। किसी अच्छे घर की लड़की थी। रोते-रोते उसकी आंखें लाल हो गई थीं। इन दोनों युवकों को देखकर डरी और चिल्लाकर रो पड़ी। यशोदा ने उसे गोद में उठा लिया और प्यार करके बोला-बेटी, रो मत, हम तुझे तेरी अम्मां के घर पहुंचा देंगे। तुझी को खोज रहे थे। तेरे बाप का क्या नाम है?

लड़की चुप तो हो गई, पर संशय की दृष्टि से देख-देखकर सिसक रही थी। इस प्रश्न का कोई उत्तर न दे सकी।

यशोदानन्दन ने फिर चुमकारकर पूछा--बेटी, तेरा घर कहां है?

लड़की ने कोई जवाब न दिया।

यशोदा-अब बताओ महमूद, क्या करें?

महमूद एक अमीर मुसलमान का लड़का था। यशोदानन्दन से उसकी बड़ी दोस्ती थी। उसके साथ यह भी सेवा-समिति में दाखिल हो गया था। बोला--क्या बताऊं? कैंप में ले चलो, शायद कुछ पता चले।

यशोदानन्दन--अभागे जरा-जरा से वच्चों को लाते हैं और इतना भी नहीं करते कि उन्हें अपना नाम और पता तो याद करा दें।

महमूद--क्यों बिटिया, तुम्हारे बाबूजी का क्या नाम है?

लड़की ने धीरे से कहा--बाबू दी !

महमूद--तुम्हारा घर इसी शहर में है या कहीं और?

लड़की--मैं तो बाबूदी के साथ लेल पर आयी थी !

महमूद--तुम्हारे बाबूजी क्या करते हैं?

लड़की--कुछ नहीं कलते।

यशोदानन्दन--इस वक्त अगर इसका बाप मिल जाए तो सच कहता हूं, बिना मारे न छोड़ूं। बचा गहने पहनाकर लाये थे, जाने कोई तमाशा देखने आये हों !

महमूद-और मेरा जी चाहता है कि तुम्हें पीटूं। मियां-बीवी यहां आए तो बच्चे को किस पर छोड़ आते ! घर में और कोई न हो तो?

यशोदानन्दन--तो फिर उन्हीं को यहां आने की क्या जरूरत थी?

महमूद--तुम एथीइस्ट (नास्तिक) हो; तुम क्या जानो कि सच्चा मज़हबी जोश किसे कहते हैं?

यशोदानन्दन--ऐसे मजहबी जोश को दूर से ही सलाम करता हूं। इस वक्त दोनों मियां-बीवी हाय-हाय कर रहे होंगे।

महमूद--कौन जाने, वे भी यहां कुचल-कुचला गए हों।

लड़की ने साहसकर कहा--तुम हमें घल पहुंचा दोगे? बाबूदी तुमको पैछा देंगे।

यशोदानन्दन--अच्छा बेटी, चलो तुम्हारे बाबूजी को खोजें।

दोनों मित्र बालिका को लिये कैम्प में आए, पर यहां कुछ पता न चला। तब दोनों उस तरफ गए, जहां मैदान में बहुत से यात्री पड़े हुए थे। महमूद ने बालिका को कन्धे पर बैठा लिया और यशोदानन्दन चारों तरफ चिल्लाते फिरे--यह किसकी लड़की है? किसी की लड़की तो नहीं खो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गई? यह आवाजें सुनकर कितने ही यात्री हां-हां, कहां-कहां करके दौड़े, पर लड़की को देखकर निराश लौट गए।

चिराग जले तक दोनों मित्र घूमते रहे। नीचे-ऊपर, किले के आस-पास, रेल के स्टेशन पर, अलोपी देवी के मन्दिर की तरफ यात्री-ही-यात्री पड़े हुए थे, पर बालिका के माता-पिता का कहीं पता न चला। आखिर निराश होकर दोनों आदमी कैम्प लौट आए।

दूसरे दिन समिति के और कई सेवकों ने फिर पता लगाना शुरू किया। दिन-भर दौड़े, सारा प्रयाग छान मारा, सभी धर्मशालाओं की खाक छानी पर कहीं पता न चला।

तीसरे दिन समाचार-पत्र में नोटिस दिया गया और दो दिन वहां और रहकर समिति आगरे लौट गई। लड़की को भी अपने साथ लेती गई। उसे आशा थी कि समाचार-पत्रों से शायद सफलता हो। जब समाचार-पत्रों से कुछ पता न चला, तब विवश होकर कार्यकर्त्ताओं ने उसे वहीं के अनाथालय में रख दिया। महाशय यशोदानन्दन ही उस अनाथालय के मैनेजर थे।

दो

बनारस में महात्मा कबीर के चौरे के निकट मुंशी वज्रधरसिंह का मकान है। आप हैं तो राजपूत पर अपने को 'मुंशी' लिखते और कहते हैं। 'मुंशी' की उपाधि से आपको बहुत प्रेम है। 'ठाकुर' के साथ आपको गंवारपन का बोध होता है, इसलिए हम भी आपको मुंशीजी कहेंगे। आप कई साल से सरकारी पेंशन पाते हैं। बहुत छोटे पद से तरक्की करते-करते आपने अंत में तहसीलदारी का उच्चपद प्राप्त कर लिया था। यद्यपि आप उस महान् पद पर तीन मास से अधिक न रहे और उतने दिन भी केवल एवज पर रहे; पर आप अपने आपको 'साबिक तहसीलदार' लिखते थे और मुहल्ले वाले भी उन्हें खुश करने को 'तहसीलदार साहब' ही कहते थे। यह नाम सुनकर आप खुशी से अकड़ जाते थे, पर पेंशन केवल पच्चीस रुपये मिलती थी, इसलिए तहसीलदार साहब को बाजार-हाट खुद ही करना पड़ता था। घर में चार प्राणियों का खर्च था। एक लड़की थी, एक लड़का और स्त्री। लड़के का नाम चक्रधर था, वह इतना जहीन था कि पिता के पेंशन के जमाने में जब घर से किसी प्रकार की सहायता न मिल सकती थी, केवल अपने बुद्धि-बल से उसने एम० ए० की उपाधि प्राप्त कर ली थी। मुंशीजी ने पहले ही से सिफारिश पहुंचानी शुरू कर दी थी। दरबारदारी की कला में वह निपुण थे। हुक्काम को सलाम करने का उन्हें मरज था। हाकिमों के दिए हुए सैकड़ों प्रशंसापत्र उनकी अतुल सम्पत्ति थे। उन्हें वह बड़े गर्व से दूसरों को दिखाया करते थे। कोई नया हाकिम आए, उससे जरूर रब्त-जब्त कर लेते थे। हुक्काम ने चक्रधर का ख्याल करने के वादे भी किए थे; लेकिन जब परीक्षा का नतीजा निकला और मुंशीजी ने चक्रधर से कमिशनर के यहां चलने को कहा तो उन्होंने जाने से साफ इंकार किया !

मुंशीजी ने त्योरी चढ़ाकर पूछा—क्यों, क्या घर बैठे तुम्हें नौकरी मिल जाएगी?

चक्रधर—मेरी नौकरी करने की इच्छा नहीं है।

वज्रधर—यह खब्त तुम्हें कब से सवार हुआ? नौकरी के सिवा और करोगे ही क्या?

चक्रधर—मैं आजाद रहना चाहता हूं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वज्रधर—आजाद रहना था तो एम० ए० क्यों किया?

चक्रधर—इसीलिए कि आजादी का महत्त्व समझूं।

उस दिन से पिता और पुत्र में आए दिन बमचख मचती रहती थी। मुंशीजी बुढ़ापे में भी शौकीन आदमी थे। अच्छा खाने और अच्छा पहनने की इच्छा अभी भी बनी हुई थी। अब तक इसी ख्याल से दिल को समझाते थे कि लड़का नौकर हो जाएगा तो मौज करेंगे। अब लड़के का रंग देखकर बार-बार झुंझलाते और उसे कामचोर, घमंडी, मूर्ख कहकर अपना गुस्सा उतारते थे—अभी तुम्हें कुछ नहीं सूझता, जब मैं मर जाऊंगा तब सूझेगा। तब सिर पर हाथ रखकर रोओगे। लाख बार कह दिया—बेटा, यह जमाना खुशामद और सलामी का है। तुम विद्या के सागर बने बैठे रहो, कोई सेंत भी न पूछेगा। तुम बैठे आजादी का मजा उठा रहे हो और तुम्हारे पीछे वाले बाजी मारे जाते हैं। वह जमाना लद गया जब विद्वानों की कद्र थी, अब तो विद्वान टके सेर मिलते हैं, कोई बात नहीं पूछता। जैसे और भी चीजें बनाने के कारखाने खुल गए हैं, उसी तरह विद्वानों के कारखाने खुल गए हैं, और उनकी संख्या हर साल बढ़ती जाती है।

चक्रधर पिता का अदब करते थे, उनको जवाब तो न देते; पर अपना जीवन सार्थक बनाने के लिए उन्होंने जो मार्ग तय कर लिया था, उससे वह न हटते थे। उन्हें यह हास्यास्पद मालूम होता था कि आदमी केवल पेट पालने के लिए आधी उम्र पढ़ने में लगा दे। अगर पेट पालना ही जीवन का आदर्श हो, तो पढ़ने की जरूरत ही क्या है। मजदूर एक अक्षर भी नहीं जानता, फिर भी वह अपना और अपने बाल-बच्चों का पेट बड़े मजे से पाल लेता है। विद्या के साथ जीवन का आदर्श कुछ ऊंचा न हुआ तो पढ़ना व्यर्थ है। विद्या को जीवन का साधन बनाते उन्हें लज्जा आती थी। वह भूखों मर जाते; लेकिन नौकरी के लिए आवेदन-पत्र लेकर कहीं न जाते। विद्याभ्यास के दिनों में भी वह सेवाकार्य में अग्रसर रहा करते थे और अब तो इसके सिवा उन्हें और कुछ सूझता ही न था। दीनों की सेवा और सहायता में जो आनन्द और आत्म-गौरव था, वह दफ्तर में बैठकर कलम घिसने में कहां!

इस प्रकार दो साल गुजर गए। मुंशी वज्रधर ने समझा था, जब यह भूत इसके सिर से उतर जाएगा, शादी-ब्याह की फ्रिक होगी, तो आप-ही-आप नौकरी की तलाश में दौड़ेंगे। जवानी का नशा बहुत दिनों तक नहीं ठहरता। लेकिन जब दो साल गुजर जाने पर भी भूत के उतरने का कोई लक्षण न दिखाई दिया, तो एक दिन उन्होंने चक्रधर को खूब फटकारा-दुनिया का दस्तूर है कि पहले अपने घर में दिया जलाकर तब मस्जिद में जलाते हैं। तुम अपने घर को अंधेरा रखकर मस्जिद को रोशन करना चाहते हो। जो मनुष्य अपनों का पालन न कर सका, वह दूसरों की किस मुंह से मदद करेगा। मैं बुढ़ापे में खाने-पहनने को तरसूं और तुम दूसरों का कल्याण करते फिरो। मैंने तुम्हें पैदा किया दूसरों ने नहीं; मैंने तुम्हें पाला-पोसा, दूसरों ने नहीं; मैं गोद में लेकर हकीम-वैद्यों के द्वार-द्वार दौड़ता फिरा, दूसरे नहीं। तुम पर सबसे ज्यादा हक मेरा है, दूसरों का नहीं।

चक्रधर अब पिता की इच्छा से मुंह न मोड़ सके। उन्हें अपने कॉलेज ही में कोई जगह मिल सकती थी। वहां सभी उनका आदर करते थे; लेकिन यह उन्हें मंजूर न था। वह कोई ऐसा धंधा करना चाहते थे, जिससे थोड़ी देर रोज काम करके अपने पिता की मदद कर सकें। एक घंटे से अधिक समय न देना चाहते थे। संयोग से जगदीशपुर के दीवान ठाकुर हरिसेवकसिंह को अपनी लड़की को पढ़ाने के लिए सुयोग्य और सच्चरित्र अध्यापक की जरूरत पड़ी। उन्होंने कॉलेज के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रधानाध्यापक को इस विषय में एक पत्र लिखा। तीस रुपये मासिक तक वेतन रखा। कॉलेज का कोई अध्यापक इतने वेतन पर राजी न हुआ। आखिर उन्होंने चक्रधर को उस काम पर लगा दिया। काम बड़ी जिम्मेदारी का था; किन्तु चक्रधर इतने सुशील, इतने गम्भीर और इतने संयमी थे कि उन पर सबको विश्वास था।

दूसरे दिन से चक्रधर ने लड़की को पढ़ाना शुरू कर दिया।

तीन

कई महीने बीत गए। चक्रधर महीने के अन्त में रुपये लाते और माता के हाथ पर रख देते। अपने लिए उन्हें रुपये की कोई जरूरत न थी। दो मोटे कुर्तों पर साल काट देते थे। हां, पुस्तकों से उन्हें रुचि थी; पर इसके लिए कॉलेज का पुस्तकालय खुला हुआ था, सेवा-कार्य के लिए चंदों से रुपये आ जाते थे। मुंशी वज्रधर का मुंह भी कुछ सीधा हो गया। डरे कि इससे ज्यादा दबाऊं, तो शायद यह भी हाथ से जाए। समझ गए कि जब तक विवाह की बेड़ी पांव में न पड़ेगी, यह महाशय काबू में नहीं आयेंगे। वह बेड़ी बनवाने का विचार करने लगे।

मनोरमा की उम्र अभी तेरह वर्ष से अधिक न थी; लेकिन चक्रधर को पढ़ाते हुए बड़ी झेंप होती थी। वह यही प्रयत्न करते थे कि ठाकुर साहब की उपस्थिति ही में उसे पढ़ाएं। यदि कभी ठाकुर साहब कहीं चले जाते, तो चक्रधर को महान् संकट का सामना करना पड़ता।

एक दिन चक्रधर इसी संकट में जा फंसे। ठाकुर साहब कहीं गए हुए थे। चक्रधर कुर्सी पर बैठे; पर मनोरमा की ओर न ताककर द्वार की ओर ताक रहे थे, मानो वहां बैठते डरते हों। मनोरमा वाल्मीकीय रामायण पढ़ रही थी। उसने दो-तीन बार चक्रधर की ओर ताका, पर उन्हें द्वार की ओर ताकते देखकर फिर किताब देखने लगी। उसके मन में सीता वनवास पर शंका हुई थी और वह इसका समाधान करना चाहती थी। चक्रधर ने द्वार की ओर ताकते हुए पूछा—चुप क्यों बैठी हो, आज का पाठ क्यों नहीं पढ़ती?

मनोरमा—मैं आपसे एक बात पूछना चाहती हूं, आज्ञा हो तो पूंछूं?

चक्रधर ने कातर भाव से कहा—क्या बात है?

मनोरमा—रामचन्द्र ने सीताजी को घर से निकाला तो वह चली क्यों गईं?

चक्रधर—और क्या करतीं?

मनोरमा—वह जाने से इंकार कर सकती थीं। एक तो राज्य पर उनका अधिकार भी रामचन्द्र ही के समान था, दूसरे वह निर्दोष थीं। अगर वह यह अन्याय न स्वीकार करतीं, तो क्या उन पर कोई आपत्ति हो सकती थी?

चक्रधर—हमारे यहां पुरुषों की आज्ञा मानना स्त्रियों का परम धर्म माना गया है। यदि सीताजी पति की आज्ञा न मानतीं, तो वह भारतीय सती के आदर्श से गिर जातीं।

मनोरमा—यह तो मैं जानती हूं कि स्त्री को पुरुष की आज्ञा माननी चाहिए लेकिन क्या सभी दशा में? जब राजा से साधारण प्रजा न्याय का दावा कर सकती है, तो क्या उसकी स्त्री नहीं कर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सकती? जब रामचन्द्र ने सीता की परीक्षा ले ली थी और अन्त:करण से उन्हें पवित्र समझते थे, तो केवल झूठी निंदा से बचने के लिए उन्हें घर से निकाल देना कहां का न्याय था?

चक्रधर—राजधर्म का आदर्श पालन करना था।

मनोरमा—तो क्या दोनों प्राणी जानते थे कि हम संसार के लिए आदर्श खड़ा कर रहे हैं? इससे तो यह सिद्ध होता है कि वे कोई अभिनय कर रहे थे। अगर आदर्श भी मान लें तो यह ऐसा आदर्श है, जो सत्य की हत्या करके पाला गया है। यह आदर्श नहीं है, चरित्र की दुर्बलता है। मैं आपसे पूछती हूं, आप रामचन्द्र की जगह होते, तो क्या आप भी सीता को घर से निकाल देते?

चक्रधर बड़े असमंजस में पड़ गए। उनके मन में स्वयं यही शंका और लगभग इसी उम्र में पैदा हुई थी; पर वह इसका समाधान न कर सके थे। अब साफ-साफ जवाब देने की जरूरत पड़ी तो, बगलें झांकने लगे।

मनोरमा ने उन्हें चुप देखकर फिर पूछा—क्या आप भी उन्हें घर से निकाल देते?

चक्रधर—नहीं, मैं तो शायद नहीं निकालता।

मनोरमा—आप निंदा की जरा भी परवाह न करते?

चक्रधर—नहीं, मैं झूठी निंदा की परवाह न करता।

मनोरमा की आंखें खुशी से चमक उठीं, प्रफुल्लित होकर बोली—यही बात मेरे मन में भी थी। मैंने दादाजी से, भाइयों से, पंडितजी से, लौंगी अम्मां से, भाभी से यही शंका की, पर सब लोग यही कहते थे कि रामचन्द्र तो भगवान हैं, उनके विषय में कोई शंका हो ही नहीं सकती। आपने आज मेरे मन की बात कही। मैं जानती थी कि आप यही जवाब देंगे। इसीलिए मैंने आपसे पूछा था। अब मैं उन लोगों को खूब आड़े हाथों लूंगी।

उस दिन से मनोरमा को चक्रधर से कुछ स्नेह हो गया। पढ़ने-लिखने में उसे विशेष रुचि हो गई। चक्रधर उसे जो काम करने को दे जाते, वह उसे अवश्य पूरा करती। पहले की भांति अब हीले-हवाले न करती। जब उनके आने का समय होता, तो वह पहले ही से आकर बैठ जाती और उनका इंतजार करती। अब उसे उनसे अपने मन के भाव प्रकट करते हुए संकोच न होता। वह जानती थी कि कम-से-कम यहां उनका निरादर न होगा, उनकी हंसी न उड़ाई जायेगी।

ठाकुर हरिसेवकसिंह की आदत थी कि पहले दो-चार महीने तक तो नौकरों को वेतन ठीक समय पर दे देते, पर ज्यों-ज्यों नौकर पुराना होता जाता था, उन्हें उसके वेतन की याद भूलती जाती थी। उनके यहां कई नौकर ऐसे भी पड़े थे, जिन्होंने बरसों से अपने वेतन नहीं पाए थे, चक्रधर को भी इधर चार महीनों से कुछ न मिला था। न वह आप-ही-आप देते थे, न चक्रधर संकोचवश मांगते थे। उधर घर में रोज तकरार होती थी। मुंशी वज्रधर बार-बार तकाजे करते, झुंझलाते—मांगते क्यों नहीं? क्या मुंह में दही जमाया हुआ है, या काम नहीं करते? लिहाज भले आदमी का किया जाता है। ऐसे लुच्चों का लिहाज नहीं किया जाता, जो मुफ्त में काम कराना चाहते हैं।

आखिर एक दिन चक्रधर ने विवश हो ठाकुर साहब को एक पुरजा लिखकर अपना वेतन मांगा। ठाकुर साहब ने पुरजा लौटा दिया—व्यर्थ की लिखा-पढ़ी करने की उन्हें फुर्सत न थी और कहा—उनको जो कुछ कहना हो, खुद आकर कहें। चक्रधर शरमाते हुए गए और बहुत-कुछ शिष्टाचार के बाद रुपये मांगे। ठाकुर साहब हंसकर बोले—वाह ! बाबूजी, वाह ! आप भी अच्छे मौजी जीव हैं। चार महीनों से वेतन नहीं मिला और आपने एक बार भी न मांगा ! अब तो आपके

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पूरे एक-सौ बीस रुपये हो गए। मेरा हाथ इस वक्त तंग है। दस-पांच दिन ठहरिए। आपको महीने-महीने अपना वेतन ले लेना चाहिए था। सोचिए, मुझे एकमुश्त देने में कितनी असुविधा होगी! खैर, जाइए, दस-पांच दिन में रुपये मिल जाएंगे।

चक्रधर कुछ न कह सके। लौटे, तो मुंह पर घोर निराशा छायी हुई थी। आज दादाजी शायद जीता न छोड़ेंगे। इस ख्याल से उनका दिल कांपने लगा। मनोरमा ने उनका पुरज़ा अपने पिता के पास ले जाते हुए राह में पढ़ लिया था। उन्हें उदास देखकर पूछा--दादाजी ने आपसे क्या कहा?

चक्रधर उसके सामने रुपये-पैसे का जिक्र न करना चाहते थे। झेंपते हुए बोले—कुछ तो नहीं।

मनोरमा—आपको रुपये नहीं दिए?

चक्रधर का मुंह लाल हो गया। बोले—मिल जाएंगे।

मनोरमा—आपको एक-सौ बीस रुपये चाहिए न?

चक्रधर—इस वक्त कोई जरूरत नहीं है।

मनोरमा—जरूरत न होती तो आप मांगते ही नहीं। दादाजी में बड़ा ऐब है कि किसी के रुपये देते हुए उन्हें मोह लगता है। देखिए, मैं जाकर—

चक्रधर ने रोककर कहा—नहीं-नहीं, कोई जरूरत नहीं।

मनोरमा ने न माना। तुरंत घर में गई और एक क्षण में पूरे रुपये लाकर मेज पर रख दिए, मानो कहीं गिने-गिनाए रखे हुए थे।

चक्रधर—तुमने ठाकुर साहब को व्यर्थ कष्ट दिया।

मनोरमा—मैंने उन्हें कष्ट नहीं दिया! उनसे तो कहा भी नहीं। दादाजी किसी की जरूरत नहीं समझते। अगर अपने लिए कभी मोटर मंगवानी हो, तो तुरंत मंगवा लेंगे! पहाड़ों पर जाना हो, तो तुरंत चले जाएंगे, पर जिसके रुपये आते हैं, उसको न देंगे।

वह तो पढ़ने बैठ गई; लेकिन चक्रधर के सामने यह समस्या आ पड़ी कि रुपये लूं या न लूं। उन्होंने निश्चय किया कि न लेना चाहिए। पाठ हो चुकने पर वह उठ खड़े हुए और बिना रुपये लिए बाहर निकल आए। मनोरमा रुपये लिए हुए पीछे-पीछे बरामदे तक आई। बार-बार कहती रही—इसे आप लेते जाइए। जब दादाजी दें तो मुझे लौटा दीजिएगा। पर चक्रधर ने एक न सुनी और जल्दी से बाहर निकल गए।

चार

चक्रधर डरते हुए घर पहुंचे, तो क्या देखते हैं कि द्वार पर चारपाई पड़ी हुई है; उस पर कालीन बिछी हुई है और एक अधेड़ उम्र के महाशय उस पर बैठे हुए हैं। उनके सामने ही एक कुर्सी पर मुंशी वज्रधर बैठे फर्शी पी रहे थे और नाई खड़ा पंखा झल रहा था। चक्रधर के प्राण सूख गए। अनुमान से ताड़ गए कि यह महाशय वर की खोज में आए हैं। निश्चय करने के लिए घर में जाकर माता से पूछा, तो अनुमान सच्चा निकला। बोले—दादाजी ने इनसे क्या कहा?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निर्मला ने मुस्कराकर कहा—नानी क्यों मरी जाती है, क्या जन्म भर क्वांरे ही रहोगे ! जाओ; बाहर बैठो; तुम्हारी तो बड़ी देर से जोहाई हो रही है। आज क्यों इतनी देर लगाई?

चक्रधर—यह हैं कौन?

निर्मला—आगरे के कोई वकील हैं, मुंशी यशोदानन्दन !

चक्रधर—मैं तो घूमने जाता हूं। जब यह यमदूत चला जाएगा, तो आऊंगा।

निर्मला—वाह रे शर्मीले ! तेरा-सा लड़का तो देखा ही नहीं। आ, जरा सिर में तेल डाल दूं, बाल न जाने कैसे बिखरे हुए हैं। साफ कपड़े पहनकर जरा देर के लिए बाहर जाकर बैठ।

चक्रधर—घर में भोजन भी है कि ब्याह ही कर देने का जी चाहता है? मैं कहे देता हूं, विवाह न करूंगा, चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाए।

किन्तु स्नेहमयी माता कब सुनने वाली थी। उसने उन्हें जबर्दस्ती पकड़कर सिर में तेल डाल दिया, संदूक से एक धुला हुआ कुर्ता निकाल लाई और यों पहनाने लगी, जैसे कोई बच्चे को पहनाए। चक्रधर ने गर्दन फेर ली।

निर्मला—मुझसे शरारत करेगा, तो मार बैठूंगी। इधर ला सिर ! क्या जन्म भर छूटे सांड़ बने रहने का जी चाहता है? क्या मुझसे मरते दम तक चूल्हा-चक्की कराता रहेगा? कुछ दिनों तो बहू का सुख उठा लेने दे।

चक्रधर—तुमसे कौन कहता है भोजन बनाने को? मैं कल से बना दिया करूंगा। मंगला को क्यों छोड़ रखा है?

निर्मला—अब मैं मारनेवाली ही हूं। आज तक कभी न मारा पर आज पीट दूंगी, नहीं तो जाकर चुपके से बाहर बैठ।

इतने में मुंशीजी ने पुकारा—नन्हें, क्या कर रहे हो? जरा यहां तो आओ।

चक्रधर के रहे-सहे होश भी उड़ गए। बोले—जाता तो हूं, लेकिन कहे देता हूं, मैं यह जुआ गले में न डालूंगा। जीवन में मनुष्य का यही काम नहीं है कि विवाह कर ले, बच्चों का बाप बन जाए और कोल्हू के बैल की तरह आंखों पर पट्टी बांधकर गृहस्थी में जुत जाए।

निर्मला—सारी दुनिया जो करती है, वही तुम्हें भी करना पड़ेगा। मनुष्य का जन्म होता ही किसलिए है?

चक्रधर—हजारों काम हैं?

निर्मला—रुपये आज भी नहीं लाए क्या? कैसे आदमी हैं कि चार-चार महीने हो गए, रुपये देने का नाम नहीं लेते ! जाकर अपने दादा को किसी बहाने से भेज दो। कहीं से जाकर रुपये लाएं। कुछ दावत-आवत का सामान करना ही पड़ेगा, नहीं तो कहेंगे कि नाम बड़े और दर्शन थोड़े।

चक्रधर बाहर आए तो मुंशी यशोदानन्दन ने खड़े होकर उन्हें छाती से लगा लिया और कुर्सी पर बैठाते हुए बोले—अबकी 'सरस्वती' में आपका लेख देखकर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। इस वैषम्य को मिटाने के लिए आपने जो उपाय बताए हैं, वे बहुत ही विचारपूर्ण हैं।

इस स्नेह-मृदुल आलिंगन और सहृदयपूर्ण आलोचना ने चक्रधर को मोहित कर लिया ! वह कुछ जवाब देना ही चाहते थे कि मुंशी वज्रधर बोल उठे—आज बहुत देर लगा दी? राजा साहब से कुछ बातचीत होने लगी क्या? (यशोदानन्दन से) राजा साहब की इनके ऊपर बड़ी कृपा है। बिल्कुल लड़कों की तरह मानते हैं। इनकी बातें सुनने से उनका जी ही नहीं भरता। (नाई से)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देख, चिलम बदल दे और जाकर झिनकू से कह दे, सितार-वितार लेकर थोड़ी देर के लिए यहां आ जाए। इधर ही से गणेश के घर जाकर कहना कि तहसीलदार साहब ने एक हांड़ी अच्छा दही मांगा है। देखना, दही खराब हुआ, तो दाम न मिलेंगे।

यह हुक्म देकर मुंशीजी घर में चले गए। उधर की फिक्र थी; पर मेहमान को छोड़कर न जा सकते थे। आज उनका ठाट-बाट देखते ही बनता था। अपना अल्पकालीन तहसीलदारी के समय का अलापाके का चोंगा निकाला था। उसी जमाने की मंदील भी सिर पर थी। आंखों में सुरमा भी था, बालों में तेल भी, मानो उन्हीं का ब्याह होने वाला है। चक्रधर शरमा रहे थे, यह महाशय इनके वेश पर दिल में क्या कहते होंगे। राजा साहब की बात सुनकर तो वह गड़-से गए।

मुंशीजी चले गये, तो यशोदानन्दन बोले—अब आपका क्या काम करने का इरादा है?

चक्रधर—अभी तो कुछ निश्चय नहीं किया है। हां, यह इरादा है कि कुछ दिनों आजाद रहकर सेवाकार्य करूं।

यशोदानन्दन—इससे बढ़कर क्या हो सकता है ! आप जितने उत्साह से समिति को चला रहे हैं, उसकी तारीफ नहीं की जा सकती। आप जैसे उत्साही युवकों का ऊंचे आदर्शों के साथ सेवाक्षेत्र में आना जाति के लिए सौभाग्य की बात है। आपके इन्हीं गुणों ने मुझे आपकी ओर खींचा है। यह तो आपको मालूम ही होगा कि मैं किस इरादे से आया हूं। अगर मुझे धन या जायदाद की परवाह होती, तो यहां न आता ! मेरी दृष्टि में चरित्र का जो मूल्य है, वह और किसी वस्तु का नहीं।

चक्रधर ने आंखें नीची करके कहा—लेकिन मैं तो अभी गृहस्थी के बंधन में नहीं पड़ना चाहता। मेरा विचार है कि गृहस्थी में फंसकर कोई तन-मन से सेवाकार्य नहीं कर सकता।

यशोदानन्दन—ऐसी बात तो नहीं। इस वक्त भी जितने आदमी सेवा-कार्य कर रहे हैं वे प्राय: सभी बाल-बच्चों वाले आदमी हैं।

चक्रधर—इसी से तो सेवा-कार्य इतना शिथिल है।

यशोदानन्दन—मैं समझता हूं कि यदि स्त्री और पुरुष के विचार और आदर्श एक-से हों, तो पुरुष के कामों में बाधक होने के बदले स्त्री सहायक हो सकती है। मेरी पुत्री का स्वभाव, विचार, सिद्धांत सभी आपसे मिलते हैं और मुझे पूरा विश्वास है कि आप दोनों एक साथ रहकर सुखी होंगे। उसे कपड़े का शौक नहीं, गहने का शौक नहीं, अपनी हैसियत को बढ़ाकर दिखाने की धुन नहीं। आपके साथ वह मोटे-से-मोटे वस्त्र और मोटे-से-मोटे भोजन में संतुष्ट रहेगी। अगर आप इसे अत्युक्ति न समझें, तो मैं यहां तक कह सकता हूं कि ईश्वर ने आपको उसके लिए बनाया है और उसको आपके लिए। सेवा-कार्य में वह हमेशा आपसे एक कदम आगे रहेगी। अंगरेजी, हिन्दी, उर्दू, संस्कृत पढ़ी हुई है; घर के कामों में इतनी कुशल है कि मैं नहीं समझता, उसके बिना मेरी गृहस्थी कैसे चलेगी? मेरी दो बहुएं हैं, लड़की की मां है; किन्तु सब-की-सब फूहड़; किसी में भी वह तमीज नहीं। रही शक्ल-सूरत, वह भी आपको इस तस्वीर से मालूम हो जाएगी।

यह कहकर यशोदानन्दन ने कहार से तस्वीर मंगवाई और चक्रधर के सामने रखते हुए बोले—मैं तो इसमें कोई हरज नहीं समझता। लड़के को क्या खबर है कि मुझे बहू कैसी मिलेगी। स्त्री में कितने ही गुण हों, लेकिन यदि उसकी सूरत पुरुष को पसंद न आई, तो वह उसकी नजरों से गिर जाती है और उनका दांपत्य-जीवन दुःखमय हो जाता है। मैं तो यहां तक कहता हूं कि वर और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कन्या में दो-चार बार मुलाकात भी हो जानी चाहिए। कन्या के लिए तो यह अनिवार्य है। पुरुष को स्त्री पसंद न आई, तो वह और शादियां कर सकता है। स्त्री को पुरुष पसंद न आया, तो उसकी सारी उम्र रोते ही गुजरेगी।

चक्रधर के पेट में चूहे दौड़ने लगे कि तस्वीर क्योंकर ध्यान से देखूं। वहां देखते शरम आती थी, मेहमान को अकेला छोड़कर घर में न जाते बनता था। कई मिनट तक तो सब्र किए बैठे रहे, लेकिन न रहा गया। पान की तश्तरी और तसवीर लिये हुए घर में चले आए। चाहते थे कि अपने कमरे में जाकर देखें कि निर्मला ने पूछा—क्या बातचीत हुई? कुछ देंगे-दिलाएंगे कि वही इक्यावन रुपये वालों में हैं?

चक्रधर ने उग्र होकर कहा—अगर तुम मेरे सामने देने-दिलाने का नाम लोगी, तो जहर खा लूंगा।

निर्मला—वाह रे! तो क्या पचीस बरस तक यों ही पाला-पोसा है क्या? मुंह धो रखें!

चक्रधर—तो बाजार में खड़ा करके बेच क्यों नहीं लेतीं? देखो कै टके मिलते हैं!

निर्मला—तुम तो अभी से ससुर के पक्ष में मुझसे लड़ने लगे। ब्याह के नाम ही में कुछ जादू है क्या?

इतने में चक्रधर की छोटी बहन मंगला तश्तरी में पान रखकर उनको देने लगी, तो कागज में लिपटी हुई तसवीर उसे नजर आई। उसने तसवीर ले ली और लालटेन के सामने ले जाकर बोली—यह बहू की तसवीर है। देखो, कितनी सुंदर है!

निर्मला ने जाकर तसवीर देखीं, तो चकित रह गई। उसकी आंखें आनंद से चमक उठीं। बोली—बेटा, तेरे भाग्य जाग गए। मुझे तो कुछ भी न मिले, तो भी इससे तेरा ब्याह कर दूं। कितनी बड़ी-बड़ी आम की फांक-सी आंखें हैं, मैने ऐसी सुंदर लड़की नहीं देखी।

चक्रधर ने समीप जाकर उड़ती हुई नजरों से तसवीर देखी और हंसकर बोले— लखावरी ईंट की-सी मोटी तो नाक है, उस पर कहती हो, कितनी सुंदर है!

निर्मला—चल, दिल में तो फूला न समाता होगा, ऊपर से बातें बनाता है।

चक्रधर—इसी मारे मैं यहां न लाता था। लाओ लौटा दूं।

निर्मला—तुझे मेरी ही कसम है, जो भांजी मारे। मुझे तो इस लड़की ने मोह लिया।

चक्रधर पान की तश्तरी और तसवीर लेकर चले; पर बाहर न जाकर अपने कमरे में गए और बड़ी उत्सुकता से चित्र पर आंखें जमा दीं। उन्हें ऐसा मालूम हुआ मानो चित्र ने लज्जा से आंखें नीची कर ली हैं, मानो वह उनसे कुछ कह रही है। उन्होंने तसवीर उठा ली और देखने लगे। आंखों को तृप्ति ही न होती थी। उन्होंने अब तक जितनी सूरतें देखी थीं, उनसे मन में तुलना करने लगे। मनोरमा ही इससे मिलती थी। आंखें दोनों की एक-सी हैं, बाल नेत्रों के समान विहंसते। वर्ण भी एक-से हैं, नख-शिख बिल्कुल मिलता-जुलता! किन्तु यह कितनी लज्जाशील है, वह कितनी चपल! यह किसी साधु की शांति-कुटीर की भांति लताओं और फूलों से सज्जित है, वह किसी गगनस्पर्शी शैल की भांति विशाल। यह चित्त को मोहित करती है, वह पराभूत करती है। यह किसी पालतू पक्षी की भांति पिंजरे में गाने वाली, वह किसी वन्य-पक्षी की भांति आकाश में उड़ने वाली; यह किसी कवि कल्पना की भांति मधुर और रसमयी, वह किसी दार्शनिक तत्त्व की भांति दुर्बोध और जटिल!

चित्र हाथ में लिए हुए चक्रधर भावी जीवन के मधुर स्वप्न देखने लगे। यह ध्यान ही न रहा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कि मुंशी यशोदानन्दन बाहर अकेले बैठे हुए हैं। अपना व्रत भूल गए, सेवा सिद्धांत भूल गए, आदर्श भूल गए, भूत और भविष्य भूल वर्तमान में लीन हो गए, केवल एक ही सत्य था और वह इस चित्र की मधुर कल्पना थी।

सहसा तबले की थाप ने उनकी समाधि भंग की। बाहर संगीत-समाज जमा था। मुंशी वज्रधर को गाने-बजाने का शौक था। गला तो रसीला न था; पर ताल-स्वर के ज्ञाता थे। चक्रधर डरे कि दादा इस समय कहीं गाने लगे तो नाहक भद्द हो। जाकर उनके कान में कहा--आप न गाइएगा। संगीत से रुचि थी; पर यह असह्य था कि मेरे पिताजी कत्थकों के सामने बैठकर एक प्रतिष्ठित मेहमान के सामने गाएं।

जब साज मिल गया, तो झिनकू ने कहा--तहसीलदार साहब, पहले आप ही की हो जाए।

चक्रधर का दिल धड़कने लगा; लेकिन मुंशीजी ने उनकी ओर आश्वासन की दृष्टि से देखकर कहा--तुम लोग अपना गाना सुनाओ, मैं क्या गाऊं !

झिनकू--वाह मालिक, वाह ! आपके सामने हम क्या गाएंगे। अच्छे-अच्छे उस्तादों की तो हिम्मत नहीं पड़ती !

वज्रधर अपनी प्रशंसा सुनकर फूल उठते थे। दो-चार बार तो नहीं-नहीं की, फिर धुरपद की एक गत छेड़ ही तो दी। पंचम स्वर था, आवाज फटी हुई, सांस उखड़ जाती थी, बार-बार खांसकर गला साफ करते थे, लोच का नाम न था, कभी-कभी बेसुरे भी हो जाते थे, पर साजिंदे वाह-वाह की धूम मचाए हुए थे--क्या कहना है, तहसीलदार साहब ! ओ हो !

मुंशीजी को गाने की धुन सवार होती थी तो जब तक गला न पड़ जाए, चुप न होते थे। गत समाप्त होते ही आपने 'सूर' का पद छेड़ दिया और 'देश' की धुन में गाने लगे।

झिनकू--यह पुराने गले की बहार है। ओ हो !

वज्रधर--नैन नीर छीजत नहिं कबहूं, निस-दिन बहत पनारे।

झिनकू--जरा बता दीजिएगा, कैसे?

वज्रधर ने दोनों आंखों पर हाथ रखकर बताया।

चक्रधर से अब न सहा गया। नाहक अपनी हंसी करा रहे हैं। इस बेसुरेपन पर मुंशी यशोदानन्दन दिल में कितना हंस रहे होंगे ! शर्म के मारे वह वहां खड़े न रह सके। घर में चले गए, लेकिन यशोदानन्दन बड़े ध्यान से गाना सुन रहे थे। बीच-बीच में सिर भी हिला देते थे। जब गीत समाप्त हुआ, तो बोले-तहसीलदार साहब आप इस फन के उस्ताद हैं!

वज्रधर-यह आपकी कृपा है, मैं गाना क्या जानूं, इन्हीं लोगों की संगति में कुछ शुद-बुद आ गया।

झिनकू--ऐसा न कहिए मालिक, हम सब तो आप ही के सिखाए-पढ़ाए हैं।

यशोदानन्दन--मेरा तो जी चाहता है कि आपका शिष्य हो जाऊं।

वज्रधर--क्या कहूं, आपने मेरे स्वर्गीय पिताजी का गाना नहीं सुना। बड़ा कमाल था ! कोई उस्ताद उनके सामने मुंह न खोल सकता था। लाखों की जायदाद उसी के पीछे लुटा दी। अब तो उसकी चर्चा ही उठती जाती है।

यशोदानन्दन--अब की न कहिए। आजकल के युवकों में तो गाने की रुचि ही नहीं रही। न गा सकते हैं, न समझ सकते हैं। उन्हें गाते शर्म आती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वज्रधर—रईसों में भी इसका शौक उठता जाता है।

यशोदानन्दन—पेट के धंधे से किसी को छुट्टी ही नहीं मिलती, गाए-बजाए कौन ?

झिनकू—(यशोदानन्दन से) हुजूर को गाने का शौक मालूम होता है !

यशोदानन्दन—अजी, जब था तब था ! सितार-वितार की दो-चार गतें बजा लेता था। अब सब छोड़-छाड़ दिया।

झिनकू—कितना ही छोड़-छाड़ दिया है; लेकिन आजकल के नौसिखियों से अच्छे ही होंगे। अबकी आप ही की हो।

यशोदानन्दन ने भी दो-चार बार इंकार करने के बाद काफ़ी की धुन में एक ठुमरी छेड़ दी। उनका गला मंजा हुआ था, इस कला में निपुण थे, ऐसा मस्त होकर गाया कि सुनने वाले झूम-झूम गए। उनकी सुरीली तान साज में मिल जाती थी। वज्रधर ने तो वाह-वाह का तार बांध दिया। झिनकू के भी छक्के छूट गए। मजा यह कि साथ-ही-साथ सितार भी बजाते थे। आसपास के लोग आकर जमा हो गए। समां बंध गया। चक्रधर ने यह आवाज सुनी तो दिल में कहा, यह महाशय भी उसी टुकरी के लोगों में हैं, उसी रंग में रंगे हुए। अब झेंप जाती रही। बाहर आकर बैठ गए।

वज्रधर ने कहा— भाई साहब, आपने तो कमाल कर दिया। बहुत दिनों से ऐसा गाना न सुना था। कैसी रही, झिनकू?

झिनकू—हुजूर. कुछ न पूछिए, सिर धुन रहा हूं। मेरी तो अब गाने की हिम्मत ही नहीं पड़ती। आपने हम सबों का रंग फीका कर दिया। पुराने जमाने के रईसों की क्या बातें हैं।

यशोदानन्दन—कभी-कभी जी बहला लिया करता हूं, वह भी लुक-छिपकर। लड़के सुनते हैं तो कानों पर हाथ रख लेते हैं। मैं समझता हूं, जिसमें यह रस नहीं, वह किसी सोहबत में बैठने लायक नहीं। क्यों बाबू चक्रधर, आपको तो शौक होगा?

वज्रधर—जी छू नहीं गया। बस, अपने लड़कों का हाल समझिए।

चक्रधर ने झेंपते हुए कहा—मैं गाने को बुरा नहीं समझता। हां, इतना जरूर चाहता हूं कि शरीफ लोग शरीफों में ही गाएं-बजाएं।

यशोदानन्दन—गुणियों की जात-पांत नहीं देखी जाती। हमने तो बरसों एक अंधे फकीर की गुलामी की, तब जाके सितार बजाना आया।

आधी रात के करीब गाना बंद हुआ। लोगों ने भोजन किया। जब मुंशी यशोदानन्दन बाहर आकर बैठे, तो वज्रधर ने पूछा—आपसे कुछ बातचीत हुई?

यशोदानन्दन—जी हां, हुई लेकिन साफ नहीं खुले।

वज्रधर—विवाह के नाम से चिढ़ता है।

यशोदानन्दन—अब शायद राजी हो जाएं।

वज्रधर—अजी, सैकड़ों आदमी आ-आकर लौट गए। कई आदमी तो दस-दस हजार तक देने को तैयार थे। एक साहब तो अपनी रियासत ही लिखे देते थे; लेकिन इसने हामी न भरी।

दोनों आदमी सोए। प्रातःकाल यशोदानन्दन ने चक्रधर से पूछा—क्यों बेटा, एक दिन के लिए मेरे साथ आगरे चलोगे?

चक्रधर—मुझे तो आप इस जंजाल में न फंसाएं तो बहुत अच्छा हो।

यशोदानन्दन—तुम्हें जंजाल में नहीं फंसाता बेटा, तुम्हें ऐसा सच्चा मंत्री, ऐसा सच्चा सहायक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और ऐसा सच्चा मित्र दे रहा हूं, जो तुम्हारे उद्देश्यों को पूरा करना अपने जीवन का मुख्य कर्त्तव्य समझेगी। मैं स्वार्थवश ऐसा नहीं कह रहा हूं। मैं स्वयं आगरे की हिन्दू-सभा का मंत्री हूं और सेवा-कार्य का महत्त्व समझता हूं। अगर मैं समझता कि यह संबंध आपके काम में बाधक होगा, तो कभी आग्रह न करता। मैं चाहता हूं कि आप एक बार अहिल्या से मिल लें। यों मैं मन से आपको अपना दामाद बना चुका; पर अहिल्या की अनुमति ले लेनी आवश्यक समझता हूं! आप भी शायद यह पसन्द न करेंगे कि मैं इस विषय में स्वेच्छा से काम लूं। आप शरमाएं नहीं, यों समझ लीजिए कि आप मेरे दामाद हो चुके; केवल मेरे साथ सैर करने चल रहे हैं। आपको देखकर आपकी सास, साले—सभी खुश होंगे।

चक्रधर बड़े संकट में पड़े। सिद्धांत-रूप से वह विवाह के विषय में स्त्रियों को पूरी स्वाधीनता देने के पक्ष में थे; पर इस समय आगरे जाते हुए बड़ा संकोच हो रहा था, कहीं उसकी इच्छा न हुई तो? कौन बड़ा सजीला जवान हूं, बातचीत करने में भी तो चतुर नहीं और उसके सामने तो शायद मेरा मुंह ही न खुले। कहीं उसने मन फीका कर लिया, तो मेरे लिए डूब मरने की जगह न होगी। फिर कपड़े-लत्ते भी नहीं हैं; बस, यह दो कुर्तों की पूंजी है। बहुत हैस-वैस के बाद बोले—मैं आपसे सच कहता हूं, मैं अपने को ऐसी....ऐसी सुयोग्य स्त्री के योग्य नहीं समझता।

यशोदानन्दन—इन हीलों से मैं आपका दामन छोड़ने वाला नहीं हूं। मैं आपके मनोभावों को समझ रहा हूं। आप संकोच के कारण ऐसा कह रहे हैं; पर अहिल्या उन चंचल लड़कियों में नहीं है, जिसके सामने जाते हुए आपको शरमाना पड़े। आप उसकी सरलता देखकर प्रसन्न होंगे। हां, मैं इतना कर सकता हूं कि आपकी खातिर से पहले यह कहूं कि आप परदेशी आदमी हैं, यहां सैर करने आए हैं। स्टेशन पर होटल पूछ रहे थे। मैंने समझा, सीधे आदमी हैं, होटल में लुट जाएंगे, साथ लेता आया। क्यों, कैसी रहेगी?

चक्रधर ने अपनी प्रसन्नता को छिपाकर कहा—क्या यह नहीं हो सकता कि मैं और किसी समय आ जाऊं?

यशोदानन्दन—नहीं, मैं इस काम में विलम्ब नहीं करना चाहता। मैं तो उसी को लाकर दो-चार दिन के लिए यहां ठहरा सकता हूं; पर शायद आपके घर के लोग यह पसन्द न करेंगे।

चक्रधर ने सोचा, अगर मैंने और ज्यादा टालमटोल की, तो कहीं यह महाशय सचमुच ही अहिल्या को यहां न पहुंचा दें। तब तो सारा पर्दा ही खुल जाएगा। घर की दशा देखकर अवश्य ही उनका दिल फिर जाएगा। एक तो जरा-सा घर, कहीं बैठने की जगह नहीं, उस पर न कोई साज, न सामान। विवाह हो जाने के बाद दूसरी बात हो जाती है। लड़की कितने ही बड़े घराने की हो, समझ लेती है, अब तो यही मेरा घर है—अच्छा हो या बुरा। दो-चार दिन अपनी तकदीर को रोकर शांत हो जाती है। बोले—जी हां, यह मुनासिब नहीं मालूम होता। मैं ही चला चलूंगा।

घर में विद्या का प्रचार होने से प्राय: सभी प्राणी कुछ-न-कुछ उदार हो जाते हैं। निर्मला तो खुशी से राजी हो गई। हां, मुंशी वज्रधर को कुछ संकोच हुआ; लेकिन यह समझकर कि यह महाशय लड़के पर लट्टू हो रहे हैं, कोई अच्छी रकम दे मरेंगे, उन्होंने भी कोई आपत्ति न की। अब केवल ठाकुर हरिसेवकसिंह को सूचना देनी थी। चक्रधर यों तो तीसरे पहर पढ़ाने जाया करते थे, पर आज नौ बजते-बजते जा पहुंचे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ठाकुर साहब इस वक्त अपनी प्राणेश्वरी लौंगी से कुछ बातें कर रहे थे। मनोरमा की माता का देहान्त हो चुका था। लौंगी उस वक्त लौंडी थी। उसने इतनी कुशलता से घर संभाला कि ठाकुर साहब उस पर रीझ गए और उसे गृहिणी के रिक्त स्थान पर अभिषिक्त कर दिया। नाम और गुण में इतना प्रत्यक्ष विरोध बहुत कम होगा। लोग कहते हैं, पहले वह इतनी दुबली थी कि फूंक दो तो उड़ जाए; पर गृहिणी का पद पाते ही उसकी प्रतिमा स्थूल रूप धारण करने लगी।

क्षीण जलधारा बरसात की नदी की भांति बढ़ने लगी और इस समय तो स्थूल प्रतिमा की विशाल मूर्ति थी, अचल और अपार। बरसाती नदी का जल गड़हों और गड़हियों में भर गया था। बस, जल-ही-जल दिखाई देता था। न आंखों का पता था, न नाक का, न मुंह का, सभी जगह स्थूलता व्याप्त हो रही थी; पर बाहर की स्थूलता ने अंदर की कोमलता को अक्षुण्ण रखा था। सरल, सदय, हंसमुख, सहनशील स्त्री थी, जिसने सारे घर को वशीभूत कर लिया था। यह उसी की सज्जनता थी, जो नौकरों को वेतन न मिलने पर भी जाने न देती। मनोरमा पर तो वह प्राण देती थी। ईर्ष्या, क्रोध, मत्सर उसे छू भी न गया था। वह उदार न हो पर कृपण न थी। ठाकुर साहब कभी-कभी उस पर भी बिगड़ जाते थे, मारने दौड़ते थे, दो-एक बार मारा भी था; पर उसके माथे पर जरा भी बल न आता। ठाकुर साहब का सिर भी दुखे, तो उसकी जान निकल जाती थी। वह उसकी स्नेहमयी सेवा ही थी, जिसने ऐसे हिंसक जीव को जकड़ रखा था।

इस वक्त दोनों प्राणियों में कोई बहस छिड़ी हुई थी। ठाकुर साहब झल्ला-झल्ला कर बोल रहे थे और लौंगी अपराधियों की भांति सिर झुकाए खड़ी थी कि मनोरमा ने आकर कहा—बाबूजी आए हैं, आपसे कुछ कहना चाहते हैं।

ठाकुर साहब की भौंहें तन गईं। बोले—कहना क्या चाहते होंगे, रुपये मांगने आए होंगे। अच्छा, जाकर कह दो कि आते हैं, बैठिए।

लौंगी—इनके रुपये दे क्यों नहीं देते? बेचारे गरीब आदमी हैं; संकोच के मारे नहीं मांगते, कई महीने तो चढ़ गए?

ठाकुर—यह भी तुम्हारी मूर्खता थी, जिसकी बदौलत मुझे यह तावान देना पड़ता है। कहता था कि कोई ईसाइन रख लो; दो-चार रुपये में काम चल जाएगा। तुमने कहा—नहीं, कोई लायक आदमी होना चाहिए। इनके लायक होने में शक नहीं; पर यह तो बुरा मालूम होता है कि जब देखो, रुपये के लिए सिर पर सवार। अभी कल कह दिया कि घबराइए नहीं, दस-पांच दिनों में मिल जाएंगे तब फिर भूत की तरह सवार हो गए।

लौंगी—कोई ऐसी ही जरूरत आ पड़ी होगी, तभी आए होंगे। एक सौ बीस रुपये हुए न? मैं लाए देती हूं।

ठाकुर—हां, संदूक खोलकर लाना तो कोई कठिन काम नहीं। अखर तो उसे होती है, जिसे कुआं खोदना पड़ता है।

लौंगी—वही कुआं तो उन्होंने भी खोदा है। तुम्हें चार महीने तक कुछ न मिले, तो क्या हाल होगा, सोचो। मुझे तो बेचारे पर दया आती है।

यह कहकर लौंगी गई और रुपये लाकर ठाकुर साहब से बोली—लो, दे आओ। सुन लेना, शायद कुछ कहना भी चाहते हों।

ठाकुर—लाई भी तो रुपये, नोट न थे क्या?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लौंगी—जैसे नोट वैसे रुपये, इसमें भी कुछ भेद है?

ठाकुर—अब तुमसे क्या कहूं। अच्छा रख दो, जाता हूं। पानी तो नहीं बरस रहा है कि भीग रहे होंगे।

ठाकुर साहब ने झुंझलाकर रुपये उठा लिए और बाहर चले, लेकिन रास्ते में क्रोध शांत हो गया। चक्रधर के पास पहुंचे, तो विनय के देवता बने हुए थे।

चक्रधर—आपको कष्ट देने...

ठाकुर—नहीं-नहीं, मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। मैंने आपसे दस-पांच दिन में देने का वादा किया था। मेरे पास रुपये न थे; पर स्त्रियों को तो आप जानते हैं, कितनी चतुर होती हैं। घर में रुपये निकल आए। यह लीजिए।

चक्रधर—मैं इस वक्त एक दूसरे ही काम से आया हूं। मुझे एक काम से आगरे जाना है। शायद दो-तीन दिन लगेंगे। इसके लिए क्षमा चाहता हूं।

ठाकुर—हां-हां, शौक से जाइए, मुझसे पूछने की जरूरत न थी।

ठाकुर साहब अंदर चले गए तब मनोरमा ने पूछा—आप आगरे क्या करने जा रहे हैं?

चक्रधर—एक जरूरी काम से जाता हूं।

मनोरमा—कोई बीमारी है क्या?

चक्रधर—नहीं, बीमारी कोई नहीं है।

मनोरमा—फिर क्या काम है, बताते क्यों नहीं? जब तक न बतलाइएगा, मैं जाने न दूंगी।

चक्रधर—लौटकर बता दूंगा।

मनोरमा—आप मुस्करा रहे हैं ! मैं समझ गई, नौकरी की तलाश में जाते हैं।

चक्रधर—नहीं मनोरमा, यह बात नहीं है। मेरी नौकरी करने की इच्छा नहीं है।

मनोरमा—तो क्या आप हमेशा इसी तरह देहातों में घूमा करेंगे?

चक्रधर—विचार तो ऐसा ही है, फिर जैसी ईश्वर की इच्छा !

मनोरमा—आप रुपये कहां से लाएंगे? उन कामों के लिए भी तो रुपयों की जरूरत होती होगी?

चक्रधर—भिक्षा मांगूंगा। पुण्य-कार्य भिक्षा पर ही चलते हैं।

मनोरमा—तो आजकल भी आप भिक्षा मांगते होंगे?

चक्रधर—हां, मांगता क्यों नहीं। न मांगू, तो काम कैसे चले !

मनोरमा—मुझसे तो आपने नहीं मांगा।

चक्रधर—तुम्हारे ऊपर तो विश्वास है कि जब मांगूंगा, तब दे दोगी; इसीलिए कोई विशेष काम आ पड़ने पर मांगूंगा।

मनोरमा—और जो उस वक्त मेरे पास न हुए तो?

चक्रधर—तो फिर कभी मांगूगा !

मनोरमा—तो आप मुझसे अभी मांग लीजिए, अभी मेरे पास रुपये हैं, दे दूंगी। फिर आप न जाने किस वक्त मांग बैठें?

यह कहकर मनोरमा अंदर गई और कल वाले एक सौ बीस रुपये लाकर चक्रधर के सामने रख दिए।

चक्रधर—इस वक्त तो मुझे जरूरत नहीं। फिर कभी ले लूंगा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मनोरमा—जी नहीं, लेते जाइए। मेरे पास खर्च हो जाएंगे। एक दफे भी बाजार गई तो यह गायब हो जाएंगे। इसी डर के मारे मैं बाजार नहीं जाती।

चक्रधर—तुमने ठाकुर साहब से पूछ लिया है?

मनोरमा—उनसे क्यों पूंछू? गुड़िया लाती हूं, तो उनसे नहीं पूछती; तो फिर इसके लिए उनसे क्यों पूछूं?

चक्रधर—तो फिर यों मैं न लूंगा। यह स्थिति और ही है। यह खयाल हो सकता है कि मैंने तुमसे रुपये ठग लिए। तुम्हीं सोचो, हो सकता है या नहीं?

मनोरमा—अच्छा, आप अमानत समझकर अपने पास रखे रहिए।

इतने में सामने से मुश्की घोड़ों की फिटन जाती हुई दिखाई दी। घोड़ों के साजों पर गंगाजमुनी काम किया हुआ था। चार सवार भाले उठाए पीछे दौड़ते चले आते थे।

चक्रधर—कोई रानी मालूम होती हैं।

मनोरमा—जगदीश:पुर की महारानी हैं। जब उनके यहां जाती हूं, मुझे एक गिनी देती हैं। ये आठों गिनियां उन्हीं की दी हुई हैं। न जाने क्यों मुझे बहुत मानती हैं।

चक्रधर—इनकी कोठी दुर्गाकुंड की तरफ है न ! मैं एक दिन इनके यहां भिक्षा मांगने जाऊंगा।

मनोरमा—मैं जगदीशपुर की रानी होती, तो आपको बिना मांगे ही बहुत-सा धन दे देती।

चक्रधर ने मुस्कराकर कहा—तब भूल जातीं।

मनोरमा—जी नहीं; मैं कभी न भूलती।

चक्रधर—अच्छा, कभी याद दिलाऊंगा। इस वक्त यह रुपये अपने ही पास रहने दो।

मनोरमा—आपको इन्हें लेते संकोच क्यों होता है? रुपये मेरे हैं, महारानी ने मुझे दिए हैं। मैं इन्हें पानी में डाल सकती हूं, किसी को मुझे रोकने का क्या अधिकार है ! आप न लेंगे तो मैं सच कहती हूं, आज ही जाकर इन्हें गंगा में फेंक आऊंगी।

चक्रधर ने धर्म-संकट में पडकर कहा—तुम इतना आग्रह करती हो, तो मैं लिए लेता हूं लेकिन इसे अमानत समझूंगा।

मनोरमा प्रसन्न होकर बोली—हां, अमानत ही समझ लीजिए।

चक्रधर—तो मैं जाता हूं। किताब देखती रहना।

मनोरमा—आप अगर मुझसे बिना बताए चले जाएंगे, तो मैं कुछ न पढूंगी।

चक्रधर—यह तो बड़ी टेढ़ी शर्त है। बतला ही दूं। अच्छा, हंसना मत। तुम जरा भी मुस्कराईं और मैं चला।

मनोरमा—मैं दोनों हाथों से मुंह बंद किए लेती हूं।

चक्रधर ने झेंपते हुए कहा—मेरे विवाह की कुछ बातचीत है। मेरी तो इच्छा नहीं है, पर एक महाशय जबरदस्ती खींचे लिए चले जाते हैं।

यह कहकर चक्रधर उठ खड़े हुए। मनोरमा भी उनके साथ-साथ आई। जब वह बरामदे से नीचे उतरे, तो प्रणाम किया और तुरंत अपने कमरे में लौट आई। उसकी आंखें डबडबाई हुई थीं और बार-बार रुलाई आती थी; मानो चक्रधर किसी दूर देश जा रहे हों।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पांच

संध्या समय जब रेलगाड़ी बनारस से चली तो यशोदानन्दन ने चक्रधर से पूछा—क्यों भैया, तुम्हारी राय में झूठ बोलना किसी दशा में क्षम्य है या नहीं?

चक्रधर ने विस्मित होकर कहा—मैं तो समझता हूं, नहीं?

यशोदानन्दन—किसी भी दशा में नहीं?

चक्रधर—मैं तो यही कहूंगा कि किसी दशा में भी नहीं, हालांकि कुछ लोग परोपकार के लिए असत्य को क्षम्य समझते हैं।

यशोदानन्दन—मैं भी उन्हीं लोगों में हूं। मेरा ख्याल है कि पूरा वृत्तांत सुनकर शायद आप भी मुझसे सहमत हो जाएं। मैंने अहिल्या के विषय में आपसे झूठी बातें कही हैं। वह वास्तव में मेरी लड़की नहीं है। उसके माता-पिता का हमें कुछ भी पता नहीं।

चक्रधर ने आंखें बड़ी-बड़ी करके कहा—तो फिर आपके यहां कैसे आई?

यशोदानन्दन—विचित्र कथा है। पंद्रह वर्ष हुए एक बार सूर्यग्रहण लगा था। मैं उन दिनों कॉलेज में था। हमारी एक सेवा-समिति थी। हम लोग उसी स्नान के अवसर पर यात्रियों की सेवा करने प्रयाग आए थे। तुम तो उस वक्त बहुत छोटे-से रहे होंगे। इतना बड़ा मेला फिर नहीं लगा। वहीं हमें यह लड़की एक नाली में पड़ी रोती मिली। न जाने उसके मां-बाप नदी में डूब गए या भीड़ में कुचल गए। बहुत खोज की; पर उनका कुछ पता न लगा। विवश होकर उसे साथ लेते गए। चार-पांच वर्ष तक तो उसे अनाथालय में रखा; लेकिन जब कार्यकर्त्ताओं की फूट के कारण अनाथालय बंद हो गया, तो अपने ही घर में उसका पालन-पोषण करने लगा। जन्म से न हो, पर संस्कारों से वह हमारी लड़की है। उसके कुलीन होने में संदेह नहीं। उसका शील, स्वभाव और चातुर्य देखकर अच्छे-अच्छे घरों की स्त्रियां चकित रह जाती हैं। मैं इधर एक साल से उसके लिए योग्य वर की तलाश में था। ऐसा आदमी चाहता था, जो स्थिति को जानकर उसे सहर्ष स्वीकार करे और पाकर अपने को धन्य समझे। पत्रों में आपके लेख देखकर और आपके सेवा-कार्य की प्रशंसा सुनकर मेरी धारणा हो गई कि आप ही उसके लिए सबसे योग्य हैं। यह निश्चय करके आपके यहां आया। मैंने आपसे सारा वृत्तांत कह दिया। अब आपको अख्तियार है, उसे अपनाएं या त्यागें। हां, इतना कह सकता हूं कि ऐसा रत्न आप फिर न पाएंगे। मैं यह जानता हूं कि आपके पिताजी को यह बात असह्य होगी; पर यह भी जानता हूं कि वीरात्माएं सत्कार्य में विरोध की परवाह नहीं करतीं और अंत में उस पर विजय ही पाती हैं।

चक्रधर गहरे विचार में पड़ गए। एक तरफ अहिल्या का अनुपम सौंदर्य और उज्ज्वल चरित्र था, दूसरी ओर माता-पिता का विरोध और लोकनिंदा का भय; मन में तर्क-संग्राम होने लगा। यशोदानन्दन ने उन्हें असमंजस में पड़े देखकर कहा—आप चिंतित देख पड़ते हैं और चिंता की बात भी है; लेकिन जब आप जैसे सुशिक्षित और उदार पुरुष विरोध और भय के कारण कर्त्तव्य और न्याय से मुंह मोड़ें, तो फिर हमारा उद्धार हो चुका ! मैं आपसे सच कहता हूं, यदि मेरे दो पुत्रों में से एक भी क्वांरा होता और अहिल्या उसे स्वीकार करती तो मैं बड़े हर्ष से उसका विवाह उससे कर देता। आपके सामाजिक विचारों की स्वतंत्रता का परिचय पाकर ही मैंने आपके ऊपर इस बालिका के उद्धार का भार रखा और यदि आपने कर्त्तव्य को न समझा, तो मैं नहीं कह सकता, उस अबला

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की क्या दशा होगी !

चक्रधर रूप-लावण्य की ओर से तो आंखें बन्द कर सकते थे; लेकिन उद्धार के भाव को दबाना उनके लिए असंभव था। वह स्वतंत्रता के उपासक थे और निर्भीकता स्वतंत्रता की पहली सीढ़ी है। उनके मन ने कहा, क्या यह काम ऐसा है कि समाज हंसे? समाज को इसकी प्रशंसा करनी चाहिए। अगर ऐसे काम के लिए कोई मेरा तिरस्कार करे, तो मैं तृण बराबर भी उसकी परवाह न करूंगा। चाहे वह मेरे माता-पिता ही हों। दृढ़ भाव से बोले--मेरी ओर से आप जरा भी शंका न करें। मैं इतना भीरु नहीं हूं कि ऐसे कामों में समाज-निंदा से डरूं। माता-पिता को प्रसन्न रखना मेरा धर्म है; लेकिन कर्त्तव्य और न्याय की हत्या करके नहीं। कर्त्तव्य के सामने माता-पिता की इच्छा का मूल्य नहीं है।

यशोदानन्दन ने चक्रधर को गले लगाते हुए कहा--भैया, तुमसे ऐसी ही आशा थी।

यह कहकर यशोदानन्दन ने अपना सितार उठा लिया और बजाने लगे। चक्रधर को कभी सितार की ध्वनि इतनी प्रिय, इतनी मधुर न लगी थी। और न चांदनी कभी इतनी सुहृदय और विहंसित। दाएं-बाएं चांदनी छिटकी हुई थी और उसकी मंद छटा में अहिल्या रेलगाड़ी के साथ, अगणित रूप धारण किए दौड़ती चली जाती थी। कभी वह उछलकर आकाश में जा पहुंची थी, कभी नदियों की चंद्रचंचल तरंगों में। यशोदानन्दन को न कभी इतना उल्लास हुआ था, न चक्रधर को कभी इतना गर्व। दोनों आनंद-कल्पना में डूबे हुए थे।

गाड़ी आगरे पहुंची तो दिन निकल आया था। सुनहरा नगर हरे-भरे कुंजों के बीच में विश्राम कर रहा था, मानो बालक माता की गोद में सोया हो।

इस नगर को देखते ही चक्रधर को कितनी ही ऐतिहासिक घटनाएं याद आ गईं। सारा नगर किसी उजड़े हुए घर की भांति श्रीहीन हो रहा था।

मुंशी यशोदानन्दन अभी कुलियों को पुकार रहे थे कि उनकी निगाह पुलिस के सिपाहियों पर पड़ी। चारों तरफ पहरा था। मुसाफिरों के बिस्तरे, संदूक खोल-खोलकर देखे जाने लगे। एक थानेदार ने यशोदानन्दन का भी असबाब देखना शुरू किया।

यशोदानन्दन ने आश्चर्य से पूछा-क्यों साहब, आज यह सख्ती क्यों है?

थानेदार--आप लोगों ने जो कांटे बोए हैं, उन्हीं का फल है। शहर में फसाद हो गया है।

यशोदानन्दन--अभी तीन दिन पहले तो अमन का राज्य था, यह भूत कहां से उठ खड़ा हुआ?

इतने में समिति का एक सेवक दौड़ता हुआ आ पहुंचा। यशोदानन्दन ने आगे बढ़ कर पूछा--क्यों राधा मोहन, यह क्या मामला हो गया? अभी जिस दिन मैं गया हूं, उस दिन तक तो दंगे का कोई लक्षण न था।

राधा--जिस दिन आप गये, उसी दिन पंजाब से मौलवी दीनमुहम्मद साहब का आगमन हुआ। खुले मैदान में मुसलमानों का एक बड़ा जलसा हुआ। उसमें मौलाना साहब ने न जाने क्या जहर उगला कि तभी से मुसलमानों को कुरबानी की धुन सवार है। इधर हिन्दुओं को भी यह जिद है कि चाहे खून की नदी बह जाए, पर कुरबानी न होने पाएगी। दोनों तरफ से तैयारियां हो रही हैं; हम लोग तो समझाकर हार गए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

यशोदानन्दन ने पूछा--ख्वाजा महमूद कुछ न बोले?

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राधा—वही तो उस जलसे के प्रधान थे।

यशोदानन्दन आंखें फाड़कर बोले—ख्वाजा महमूद !

राधा—जी हां, ख्वाजा महमूद ! आप उन्हें फरिश्ता समझें। असल में वे रंगे सियार हैं। हम लोग हमेशा से कहते आए हैं कि इनसे होशियार रहिए, लेकिन आपको न जाने क्यों उन पर इतना विश्वास था।

यशोदानन्दन ने आत्मग्लानि से पीड़ित होकर कहा—जिस आदमी को आज पचीस बरसों से देखता आया हूं, जिसके साथ कॉलेज में पढ़ा, जो इसी समिति का किसी जमाने में मेंबर था उस पर क्योंकर विश्वास न करता? दुनिया कुछ कहे, पर मुझे ख्वाजा महमूद पर कभी शक न होगा।

राधा—आपको अख्तियार है कि उन्हें देवता समझें, मगर अभी-अभी आप देखेंगे कि वे कितनी मुस्तैदी से कुरबानी की तैयारी कर रहे हैं। उन्होंने देहातों से लठैत बुलाए हैं, उन्हींने गोएं मोल ली हैं और उन्हीं के द्वार पर कुरबानी होने जा रही है।

यशोदानन्दन—ख्वाजा महमूद के द्वार पर कुर्बानी होगी? उनके द्वार पर इसके पहले या तो मेरी कुर्बानी हो जाएगी या ख्वाजा महमूद की। तांगेवाले को बुलाओ।

राधा—बहुत अच्छा हो, यदि आप इस समय यहीं ठहर जाएं।

यशोदानन्दन—वाह-वाह ! शहर में आग लगी हुई है और तुम कहते हो, मैं यहीं रह जाऊं। जो औरों पर बीतेगी, वही मुझ पर भी बीतेगी, इससे क्या भागना। तुम लोगों ने बड़ी भूल की कि मुझे पहले से सूचना न दी।

राधा—कल दोपहर तक तो हमें खुद ही न मालूम था कि क्या गुल खिल रहा है। ख्वाजा साहब के पास गए तो उन्होंने विश्वास दिलाया कि कुर्बानी न होने पाएगी, आप लोग इत्मीनान रखें। हमसे तो यह कहा, उधर शाम ही को लठैत आ पहुंचे और मुसलमानों का डेपुटेशन सिटी मैजिस्ट्रेट के पास कुर्बानी की सूचना देने पहुंच गया।

यशोदानन्दन—महमूद भी डेपुटेशन में थे?

राधा—वही तो उसके कर्ता-धर्ता थे, भला वही क्यों न होते? हमारा तो विचार है कि वही इस फिसाद की जड़ हैं।

यशोदानन्दन—अगर महमूद में सचमुच यह कायापलट हो गया है, तो मैं यही कहूंगा कि धर्म से ज्यादा द्वेष पैदा करने वाली वस्तु संसार में नहीं; और कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो महमूद में द्वेष के भाव पैदा कर सके। चलो पहले उन्हीं से बातें होंगी। मेरे द्वार पर तो इस वक्त बड़ा जमाव होगा।

राधा—जी हां, इधर आपके द्वार पर जमाव है, उधर ख्वाजा साहब के ! बीच में थोड़ी-सी जगह खाली है।

तीनों आदमी तांगे पर बैठकर चले। सड़कों पर पुलिस के जवान चक्कर लगा रहे थे। मुसाफिरों की छड़ियां छीन ली जाती थीं। दो-चार आदमी भी साथ न खड़े होने पाते थे। सिपाही तुरंत ललकारता था। दुकानें सब बंद थीं, कुंजड़े भी साग बेचते न नजर आते थे। हां, गलियों में लोग जमा होकर बातें कर रहे थे।

कुछ दूर तक तीनों आदमी मौन धारण किए बैठे रहे। चक्रधर शंकित होकर इधर-उधर ताक रहे थे। जरा भी घोड़ा रुक जाता तो उनका दिल धड़कने लगता कि किसी ने तांगा रोक तो नहीं लिया, लेकिन यशोदानन्दन के मुख पर ग्लानि का गहरा चिह्न दिखाई दे रहा था। उनके मुहल्ले में आज

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तक कभी कुरबानी न हुइ थी। हिन्दू और मुसलमान का भेद ही न मालूम होता था। उन्हें आश्चर्य होता था कि और शहरों में कैसे हिन्दू-मुसलमानों में झगड़े हो जाते हैं। और तीन ही दिन में यह नौबत आ गई।

सहसा उन्होंने उत्तेजित होकर कहा—राधामोहन देखो, मैं तो यहीं उतर जाता हूं! जरा महमूद से मिलूंगा। तुम इन बाबू साहब को लेकर घर जाओ। आप मेरे एक मित्र के लड़के हैं, यहां सैर करने आए हैं। बैठक में आपकी चारपाई डलवा देना और देखो, अगर दैव संयोग से मैं लौटकर न आ सकूं, तो घबराने की बात नहीं। जब लोग खून-खच्चर करने पर तुले हुए हैं तो सब कुछ सम्भव है और मैं उन आदमियों में नहीं हूं कि गौ की हत्या होता देखूं और शांत खड़ा रहूं। अगर मैं लौटकर न आ सकूं, तो तुम घर में कहला देना कि अहिल्या का पाणिग्रहण आप ही के साथ कर दिया जाए।

यह कहकर उन्होंने कोचवान से तांगा रोकने को कहा।

चक्रधर—मैं भी आपके साथ ही रहना चाहता हूं।

यशोदानन्दन—नहीं भैया, तुम मेरे मेहमान हो, तुम्हें मेरे साथ रहने की जरूरत नहीं; तुम चलो, मैं भी अभी आता हूं।

चक्रधर-क्या आप समझते हैं कि गौ-रक्षा आप ही का धर्म है, मेरा धर्म नहीं?

यशोदानन्दन—नहीं, यह बात नहीं है, बेटा! तुम मेरे मेहमान हो और तुम्हारी रक्षा करना मेरा धर्म है।

इस वक्त तांगा धीरे-धीरे ख्वाजा महमूद के मकान के सामने आ पहुंचा। हजारों आदमियों का जमाव था। यद्यपि किसी के हाथ में लाठी या डंडे न थे; पर उनके मुख जिहाद के जोश से तमतमाए हुए थे। यशोदानन्दन को देखते ही कई आदमी उनकी तरफ लपके; लेकिन जब उन्होंने जोर से कहा—मैं तुमसे लड़ने नहीं आया हूं। कहां हैं ख्वाजा महमूद? मुमकिन हो तो जरा उन्हें बुला लो, तो लोग हट गए।

जरा देर में एक लम्बा-सा आदमी गाढ़े की अचकन पहने, आकर खड़ा हो गया। भरा हुआ बदन था, लम्बी दाढ़ी, जिसके कुछ बाल खिचड़ी हो गए थे और गोरा रंग। मुख से शिष्टता झलक रही थी। यही ख्वाजा महमूद थे।

यशोदानन्दन ने त्यौरियां बदलकर कहा—क्यों ख्वाजा साहब, आपको याद है, इस मुहल्ले में कभी कुरबानी हुई है?

महमूद—जी नहीं, जहां तक मेरा ख्याल है, यहां कभी कुर्बानी नहीं हुई।

यशोदानन्दन—तो फिर आज आप यहां कुर्बानी करने की नयी रस्म क्यों निकाल रहे हैं?

महमूद—इसलिए कि कुरबानी करना हमारा हक है। अब तक हम आपके जजबात का लिहाज करते थे, अपने माने हुए हक भूल गए थे। लेकिन जब आप लोग अपने हकों के सामने हमारे जजबात की परवाह नहीं करते, तो कोई वजह नहीं कि हम अपने हकों के सामने आपके जजबात की परवाह करें। मुसलमानों की शुद्धि करने का आपको पूरा हक हासिल है, लेकिन कम से कम पांच सौ बरसों में आपके यहां शुद्धि की कोई मिसाल नहीं मिलती। आप लोगों ने एक मुर्दा हक को जिंदा किया है। इसलिए न, कि मुसलमानों की ताकत और असर कम हो जाए? जब आप हमें जेर करने के लिए नए-नए हथियार निकाल रहे हैं, तो हमारे लिए इसके सिवा और क्या चारा है कि अपने हथियारों को दूनी ताकत से चलाएं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यशोदा—इसके यह मानी हैं कि कल आप हमारे द्वारों पर, हमारे मंदिरों के सामने कुरबानी करें और हम चुपचाप देखा करें! आप यहां हरगिज कुरबानी नहीं कर सकते और करेंगे तो इसकी जिम्मेदारी आपके सिर होगी।

यह कहकर यशोदानन्दन फिर तांगे पर बैठे। दस-पांच आदमियों ने तांगे को रोकना चाहा; पर कोचवान ने घोड़ा तेज कर दिया। दम के दम तांगा उड़ता हुआ यशोदानन्दन के द्वार पर पहुंच गया, जहां हजारों आदमी खड़े थे। इन्हें देखते ही चारों तरफ हलचल मच गई। लोगों ने चारों तरफ से आकर उन्हें घेर लिया। अभी तक फौज का अफसर न था, फौज दुविधा में पड़ी हुई थी, समझ में न आता था कि क्या करें। सेनापति के आते ही सिपाहियों में जान-सी पड़ गई, जैसे सूखे धान में पानी पड़ जाए।

यशोदानन्दन तांगे से उतर पड़े और ललकारकर बोले—क्यों भाइयो, क्या विचार है? यह कुरबानी होगी? आप जानते हैं, इस मुहल्ले में आज तक कभी कुरबानी नहीं हुई। अगर आज हम यहां कुरबानी करने देंगे, तो कौन कह सकता है कि कल को हमारे मंदिर के सामने गौहत्या न होगी।

कई आवाजें एक साथ आईं—हम मर मिटेंगे, पर यहां कुरबानी न होने देंगे।

यशोदानन्दन—खूब सोच लो, क्या करने जा रहे हो। वह लोग सब तरह से लैस हैं। ऐसा न हो कि तुम लाठियों के पहले ही वार में वहां से भाग खड़े हो?

कई आवाजें एक साथ आईं—भाइयो, सुन लो; अगर कोई पीछे कदम हटाएगा, तो उसे गौहत्या का पाप लगेगा।

एक सिक्ख जवान—अजी देखिए, छक्के छुड़ा देंगे।

एक पंजाबी हिन्दू—एक-एक की गर्दन तोड़ के रख दूंगा।

आदमियों को यों उत्तेजित करके यशोदानन्दन आगे बढ़े और जनता 'महावीर' और 'श्रीरामचन्द्र' की जयध्वनि से वायुमंडल को कंपायमान करती हुई उनके पीछे चली। उधर मुसलमानों ने भी डंडे संभाले। करीब था कि दोनों दलों में मुठभेड़ हो जाए कि एकाएक चक्रधर आगे बढ़कर यशोदानन्दन के सामने खड़े हो गए और विनीत किंतु दृढ़ भाव से बोले—आप अगर उधर जाते हैं, तो मेरी छाती पर पांव रखकर जाइए। मेरे देखते यह अनर्थ न होने पाएगा।

यशोदानन्दन ने चिढ़कर कहा—हट जाओ। अगर एक क्षण की भी देर हुई, तो फिर पछताने के सिवा और कुछ हाथ न आएगा।

चक्रधर—आप लोग वहां जाकर करेंगे क्या?

यशोदानन्दन—हम इन जालिमों से गौ को छीन लेंगे।

चक्रधर—अहिंसा का नियम गौओं ही के लिए नहीं, मनुष्यों के लिए भी तो है।

यशोदानन्दन—कैसी बातें करते हो, जी! क्या यहां खड़े होकर अपनी आंखों से गौ की हत्या होते देखें।

चक्रधर—अगर आप एक बार दिल थामकर देख लेंगे, तो यकीन है कि फिर आपको कभी यह दृश्य न देखना पड़े।

यशोदानन्दन—हम इतने उदार नहीं हैं।

चक्रधर—ऐसे अवसर पर भी?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यशोदानन्दन—हम महान् से महान उद्देश्य के लिए भी यह मूल्य नहीं दे सकते। इन दामों स्वर्ग भी मंहगा है।

चक्रधर—मित्रो, जरा विचार से काम लो।

कई आवाजें—विचार से काम लेना कायरों का काम है।

एक सिक्ख जवान—जब डंडे से काम लेने का मौका आए, तो विचार को बंद करके रख देना चाहिए।

चक्रधर—तो फिर जाइए; लेकिन उस गौ को बचाने के लिए आपको अपने एक भाई का खून करना पड़ेगा।

सहसा एक पत्थर किसी की तरफ से आकर चक्रधर के सिर में लगा। खून की धारा बह निकली; चक्रधर अपनी जगह से हिले नहीं। सिर थामकर बोले—अगर मेरे रक्त से आपकी क्रोधाग्नि शांत होती हो, तो यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है। अगर मेरा खून और कई जानों की रक्षा कर सके, तो इससे उत्तम कौन मृत्यु होगी?

फिर दूसरा पत्थर आया; पर अबकी चक्रधर को चोट न लगी। पत्थर कानों के पास से निकल गया।

यशोदानन्दन गरजकर बोले—यह कौन पत्थर फेंक रहा है? सामने क्यों नहीं आता? क्या वह समझता है कि उसी ने गौ-रक्षा का ठेका ले लिया है? अगर वह बड़ा वीर है, तो क्यों नहीं चंद कदम आगे आकर अपनी वीरता दिखाता? पीछे खड़ा पत्थर क्यों फेंकता है !

एक आवाज—धर्मद्रोहियों को मारना अधर्म नहीं है।

यशोदानन्दन—जिसे तुम धर्म का द्रोही समझते हो, वह तुमसे कहीं सच्चा हिन्दू है !

एक आवाज—सच्चे हिन्दू वही तो होते हैं, जो मौके पर बगलें झांकने लगें और शहर छोड़कर दो-चार दिन के लिए खिसक जाएं।

कई आदमी—यह कौन मंत्री पर आक्षेप कर रहा है? कोई उसकी जबान पकड कर क्यों नहीं खींच लेता?

यशोदानन्दन—आप लोग सुन रहे हैं, मुझ पर कैसे-कैसे दोष लगाए जा रहे हैं। मैं सच्चा हिन्दू नहीं; मैं मौका पड़ने पर बगलें झांकता हूं और जान बचाने के लिए शहर से भाग जाता हूं। ऐसा आदमी आपका मंत्री बनने के योग्य नहीं है। आप उस आदमी को अपना मंत्री बनाएं, जिसे आप सच्चा हिन्दू समझते हों। मैं धर्म से पहले अपने आत्मगौरव की रक्षा करना चाहता हूं।

कई आदमी—महाशय, आपको ऐसे मुंहफट आदमियों की बात का खयाल न करना चाहिए।

यशोदानन्दन—यह मेरी पच्चीस बरसों की सेवा का उपहार है; जिस सेवा का फल अपमान हो, उसे दूर ही से मरा सलाम है।

यह कहते हुए मुंशी यशोदानन्दन घर की तरफ चले। कई आदमियों ने उन्हें रोकना चाहा, कई आदमी उनके पैरों पड़ने लगे; लेकिन उन्होंने एक न मानी। वह तेजस्वी आदमी थे। अपनी संस्था पर स्वेच्छाचारी राजाओं की भांति शासन करना चाहते थे। आलोचनाओं को सहन करने की उनमें सामर्थ्य ही न थी।

उनके जाते ही यहां आपस में 'तू-तू, मैं-मैं' होने लगी। एक दूसरे पर आक्षेप करने लगे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गालियों की नौबत आई, यहां तक कि दो-चार आदमियों से हाथापाई भी हो गई।

चक्रधर ने जब देखा कि इधर से अब कोई शंका नहीं है, तो वह लपककर मुसलमानों के सामने आ पहुंचे और उच्च स्वर में बोले—हजरात, मैं कुछ अर्ज करने की इजाजत चाहता हूं।

एक आदमी—सुनो-सुनो, यही तो अभी हिन्दुओं के सामने खड़ा था।

दूसरा आदमी—दुश्मनों के कदम उखड़ गए। सब भागे जा रहे हैं।

तीसरा—इसी ने शायद उन्हें समझा-बुझाकर हटा दिया है। देखो क्या कहता है?

चक्रधर—अगर इस गाय की कुरबानी करना आप अपना मजहबी फर्ज समझते हों , तो शौक से कीजिए। मैं आपके मजहबी मामले में दखल नहीं दे रहा हूं। लेकिन क्या यह लाजिमी है कि इसी जगह कुरबानी की जाए?

एक आदमी—हमारी खुशी है; जहां चाहेंगे, कुरबानी करेंगे, तुमसे मतलब?

चक्रधर—बेशक, मुझे बोलने का कोई हक नहीं है; लेकिन इस्लाम की जो इज्जत मेरे दिल में है, वह मुझे बोलने के लिए मजबूर कर रही है। इस्लाम ने कभी दूसरे मजहब वालों की दिलजारी नहीं की। उसने हमेशा दूसरों के जजबात का एहतराम किया है। बगदाद और रूस, स्पेन और मिस्र की तारीखें उस मजहबी आजादी की शाहिद हैं, जो इस्लाम ने उन्हें अदा की थीं। अगर आप हिन्दू जजबात का लिहाज करके किसी दूसरी जगह कुरबानी करें, तो यकीनन इस्लाम के वकार में फर्क न आएगा !

एक मौलवी ने जोर देकर कहा—ऐसी मीठी-मीठी बातें हमने बहुत सुनी हैं। कुरबानी यहीं होगी। जब दूसरे हमारे ऊपर जब्र करते हैं, तो हम उनके जजबात का क्यों लिहाज करें?

ख्वाजा महमूद बड़े गौर से चक्रधर की बातें सुन रहे थे। मौलवी साहब की उद्दण्डता पर चिढ़कर बोले—क्या शरीयत का हुक्म है कि कुरबानी यहीं हो? किसी दूसरी जगह नहीं की जा सकती?

मौलवी साहब ने ख्वाजा महमूद की तरफ अविश्वास की दृष्टि से देखकर कहा—मजहब के मामले में उलमा के सिवा और किसी को दखल देने का मजाज नहीं है।

ख्वाजा—बुरा न मानिएगा, मौलवी साहब ! अगर दस सिपाही यहां आकर खड़े हो जाएं तो बगलें झांकने लगिएगा !

मौलवी—किसकी मजाल है कि हमारे दीन-ओ-उमूर में मजाहमत करे?

ख्वाजा—आपको तो अपने हलवे-मांडे से काम है, जिम्मेदारी तो हमारे ऊपर आएगी, दूकानें तो हमारी लुटेंगी, आपके पास फटे बोरिए और फूटे बंधने के सिवा और क्या रखा है? जब वे लोग मसलहत देखकर किनारा कर गए तो हमें भी अपनी जिद से बाज आ जाना चाहिए। क्या आप समझते हैं कि वे लोग आपसे डरकर भागे? हमारे से दुगने आदमी अगर चढ़ आते, तो संभालना मुश्किल हो जाता।

मौलवी—जनाब, जिहाद करना कोई खालाजी का घर नहीं। आप दुनिया के बंदे हैं, दीन, हकीकत क्या समझें?

ख्वाजा—बजा है; आपकी शहादत तो कहीं नहीं गई है। जिल्लत तो हमारी है।

मौलवी—भाइयो, आप लोग ख्वाजा साहब की ज्यादती देख रहे हैं। आप ही फैसला कीजिए कि दीन मामलात में उलमा का फैसला वाजिब है या उमरा का?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक मोटे-ताजे दढ़ियल आदमी ने कहा-आप बिस्मिल्लाह कीजिए। उमरा को दीन से कोई सरोकार नहीं।

यह सुनते ही एक आदमी बड़ा-सा छुरा लेकर निकल पड़ा और कई आदमी गाय की सींगें पकड़ने लगे। गाय अब तक तो चुपचाप खड़ी थी। छुरा देखते ही वह छटपटाने लगी। चक्रधर यह दृश्य देखकर तिलमिला उठे। निराशा और क्रोध से कांपते हुए बोले—भाइयो, एक गरीब बेकस जानवर को मारना बहादुरी नहीं। खुदा बेकसों के खून से खुश नहीं होता। अगर जवांमर्दी दिखानी है, तो किसी शेर का शिकार करो, किसी चीते को मारो, किसी जंगली सूअर का पीछा करो। उसकी कुरबानी से, मुमकिन है, खुदा खुश हो। जब तक हिन्दू सामने खड़े थे, किसी की हिम्मत न पड़ी कि छुरा हाथ में लेता। जब वे चले गए तो आप लोग शेर हो गए?

एक आदमी—तो क्यों चले गए? मैदान में खड़े क्यों न रहे? गौ-रक्षा का जोश दिखाते। दुम दबाकर भाग क्यों खड़े हुए?

चक्रधर--भाग नहीं खड़े हुए और न लड़ने में वे आपसे कम ही हैं। उनकी समझ में यह बात आ गई कि जानवर की हिमायत में इंसान का खून बहाना इंसान को मुनासिब नहीं।

मौलवी—शुक्र है, उन्हें इतनी समझ तो आई !

चक्रधर—लेकिन आप अभी तक उनकी दिलजारी पर कमर बांधे हुए हैं। खैर आपको अख्तियार है, जो चाहें करें। मगर मैं यकीन के साथ कहता हूं कि यह दिलजारी एक दिन रंग लाएगी। यह न समझिए कि इस वक्त कोई हिन्दू मैदान में नहीं है। हर एक कुरबानी हिन्दुस्तान के इक्कीस करोड़ हिन्दुओं के दिलों में जख्म कर देती है, और इतनी बड़ी तादाद के दिलों को दुखाना बड़ी से बड़ी कौम के लिए भी एक दिन पछतावे का बाइस हो सकता है? अगर आपकी गिजा है, तो शौक से खाइए। लाखों गौएं रोज कत्ल होती हैं, हिन्दू सिर नहीं उठाते। फिर यह क्योंकर मुमकिन है कि वह आपके मजहबी मामले में दखलें दें? हिन्दुओं से ज्यादा बेतअस्सुब कौम दुनिया में नहीं है, लेकिन जब आप उनकी दिलजारी और महज दिलजारी के लिए कुरबानी करते हैं, तो उनको जरूर सदमा होता है। और उनके दिलों में जो शोला उठता है, उसका आप कयास नहीं कर सकते। अगर आपको यकीन न आए, तो देख लीजिए कि गाय के साथ ही एक हिन्दू कितनी ख़ुशी से अपनी जान दे देता है !

यह कहते हुए चक्रधर ने तेजी से लपककर गाय की गर्दन पकड़ ली और बोले—आज आपको इस गौ के साथ एक इंसान की भी कुरबानी करनी पड़ेगी।

सभी आदमी चकित हो-होकर चक्रधर की ओर ताकने लगे। मौलवी साहब ने क्रोध से उन्मत्त होकर कहा—कलाम पाक की कसम, हट जाओ, वरना गजब हो जाएगा।

चक्रधर—हो जाने दीजिए। खुदा की यही मरजी है कि आज गाय के साथ मेरी भी कुरबानी हो।

ख्वाजा महमूद—क्यों भई, तुम्हारा घर कहां है?

चक्रधर—परदेशी मुसाफिर हूं।

ख्वाजा—कसम खुदा की, तुम जैसा दिलेर आदमी नहीं देखा। नाम के लिए तो गाय को माता कहने वाले बहुत हैं, पर ऐसे विरले ही देखे, जो गौ के पीछे जान लड़ा दे। तुम कलमा क्यों नहीं पढ़ लेते?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चक्रधर—मैं एक खुदा का कायल हूं। वही सारे जहान का खालिक और मालिक है। फिर और किस पर ईमान लाऊं?

ख्वाजा—वल्लाह, तब तो तुम सच्चे मुसलमान हो। हमारे हजरत को अल्लाहताला का रसूल मानते हो?

चक्रधर—बेशक मानता हूं, उनकी इज्जत करता हूं और उनकी तौहीद का कायल हूं।

ख्वाजा—हमारे साथ खाने-पीने से परहेज तो नहीं करते?

चक्रधर—जरूर करता हूं, उसी तरह, जैसे किसी ब्राह्मण के साथ खाने से परहेज करता हूं, अगर वह पाक-साफ न हो।

ख्वाजा—काश, तुम जैसे समझदार तुम्हारे और भाई भी होते। मगर यहां तो लोग हमें मलिच्छ कहते हैं। यहां तक कि हमें कुत्तों से भी नजिस समझते हैं। उनकी थालियों में कुत्ते खाते हैं; पर मुसलमान उनके गिलास में पानी नहीं पी सकता। वल्लाह, आपसे मिलकर दिल खुश हो गया। अब कुछ-कुछ उम्मीद हो रही है कि शायद दोनों कौमों में इत्तफाक हो जाए। अब आप जाइए। मैं आपको यकीन दिलाता हूं, कुरबानी न होगी।

चक्रधर-और साहबों से तो पूछिए।

कई आवाजें—होती तो जरूर, लेकिन अब न होगी। आप वाकई दिलेर आदमी हैं।

ख्वाजा—यहां आप कहां ठहरे हुए हैं? मैं आपसे मिलूंगा।

चक्रधर—आप क्यों तकलीफ उठाएंगे, मैं खुद हाजिर हूंगा।

ख्वाजा महमूद ने चक्रधर को गले लगाकर रुखसत किया। इधर उसी वक्त गाय की पगहिया खोल दी गई। वह जान लेकर भागी। और लोग भी इस 'नौजवान' की 'हिम्मत' और 'जवांमर्दी' की तारीफ करते हुए चले।

चक्रधर को आते देखकर यशोदानन्दन अपने कमरे से निकल आए और उन्हें छाती से लगाते हुए बोले—भैया, आज तुम्हारा धैर्य और साहस देखकर मैं दंग रह गया। तुम्हें देखकर मुझे अपने ऊपर लज्जा आ रही है। तुमने आज हमारी लाज रख ली। अगर यहां कुरबानी हो जाती, तो हम मुंह दिखाने लायक भी न रहते।

एक बूढ़ा—आज तुमने वह काम कर दिखाया, जो सैकड़ों आदमियों के रक्तपात से भी न होता।

चक्रधर—मैंने कुछ भी नहीं किया। यह उन लोगों की शराफत थी कि उन्होंने अनुनय-विनय सुन ली।

यशोदानन्दन—अरे भाई, रोने का भी तो कोई ढंग होता है। अनुनय-विनय हमने भी सैकड़ों ही बार की, लेकिन हर दफे गुत्थी और उलझती ही गई। आइए, आपके घाव की मरहम-पट्टी तो हो जाए!

चक्रधर को कमरे में बैठाकर यशोदानन्दन ने घर में जाकर अपनी स्त्री वागीश्वरी से कहा—आज मेरे एक दोस्त की दावत करनी होगी। भोजन खूब दिल लगाकर बनाना। अहिल्या, आज तुम्हारी पाक-परीक्षा होगी।

अहिल्या—वह कौन आदमी था दादा, जिसने मुसलमानों के हाथों से गौ की रक्षा की?

यशोदानन्दन—वही तो मेरे दोस्त हैं, जिनकी दावत करने को कह रहा हूं। बेचारे रास्ते में मिल गए। यहां सैर करने आए हैं। मसूरी जाएंगे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अहिल्या—(वागीश्वरी से) अम्मां, जरा उन्हें अन्दर बुला लेना, तो दर्शन करेंगे। दादा, मैं कोठे पर बैठी सब तमाशा देख रही थी। जब हिन्दुओं ने उन पर पत्थर फेंकना शुरू किया, तो ऐसा क्रोध आता था कि वहीं से फटकारूं। बेचारे के सिर से खून निकलने लगा लेकिन वह जरा भी न बोले। जब वह मुसलमानों के सामने आकर खड़े हुए तो मेरा कलेजा धड़कने लगा कि कहीं सबके सब उन पर टूट न पड़ें। बड़े ही साहसी आदमी मालूम होते हैं। सिर में चोट आई है क्या?

यशोदानन्दन—हां, खून जम गया है; लेकिन उन्हें उसकी कुछ परवाह ही नहीं। डॉक्टर को बुला रहा हूं।

वागीश्वरी—खा-पी चुकें, तो जरा देर के लिए यहीं भेज देना। मेरे लड़कों की जोड़ी तो हैं?

यशोदानन्दन—अच्छी बात है। जरा सफाई कर लेना।

पड़ोस में एक डॉक्टर रहते थे। यशोदानन्दन ने उन्हें बुलाकर घाव पर पट्टी बंधवा दी। फिर देर तक बातें होती रहीं। धीरे-धीरे सारा मुहल्ला जमा हो गया। कई श्रद्धालु जनों ने तो चक्रधर के चरण छुए। आखिर भोजन का समय आया। जब लोग खाने बैठे, तो यशोदानन्दन ने कहा—भाई, बाबूजी से जो कुछ कहना हो, कह लो; फिर मुझसे शिकायत न करना कि तुम उन्हें नहीं लाए। बाबूजी, इस घर की तथा मुहल्ले की कई स्त्रियों की इच्छा है कि आपके दर्शन करें। आपको कोई आपत्ति तो नहीं है?

वागीश्वरी—हां बेटा, जरा देर के लिए चले आना; नहीं तो अपने घर जाके कहोगे न कि मैंने जिन लोगों के लिए जान लड़ा दी, उन्होंने बात भी न पूछी।

चक्रधर ने शरमाते हुए कहा—आप लोगों ने मेरी जो खातिर की है, वह कभी नहीं भूल सकता। उसके लिए मैं सदैव आपका एहसान मानता रहूंगा।

ज्यों ही लोग चौके से उठे, अहिल्या ने कमरे की सफाई करनी शुरू की। दीवार की तसवीरें साफ कीं, फर्श फिर से झाड़कर बिछाया, एक छोटी-सी मेज पर फूलों का गिलास रख दिया, एक कोने में अगरबत्ती जलाकर रख दी। पान बनाकर तश्तरी में रखे। इन कामों से फुर्सत पाकर उसने एकांत में बैठकर फूलों की माला गूंधनी शुरू की। मन में सोचती थी कि न जाने कौन है, स्वभाव कितना सरल है ! लजाने में तो औरतों से भी बढ़े हुए हैं। खाना खा चुके, पर सिर न उठाया। देखने में ब्राह्मण मालूम होते हैं। चेहरा देखकर तो कोई नहीं कह सकता कि वह इतने साहसी होंगे।

सहसा वागीश्वरी ने आकर कहा—बेटी, दोनों आदमी आ रहे हैं। साड़ी तो बदल लो।

अहिल्या 'ऊंह' करके रह गई। हां, उसकी छाती में धड़कन होने लगी। एक क्षण में यशोदानन्दनजी चक्रधर को लिये हुए कमरे में आए। वागीश्वरी और अहिल्या दोनों खड़ी हो गईं। यशोदानन्दन ने चक्रधर को कालीन पर बैठा दिया और खुद बाहर चले गए। वागीश्वरी पंखा झलने लगी; लेकिन अहिल्या मूर्ति की भांति खड़ी रही।

चक्रधर ने उड़ती हुई निगाहों से अहिल्या को देखा। ऐसा महसूस हुआ, मानो कोमल, स्निग्ध एवं सुगंधमय प्रकाश की लहर-सी आंखों में समा गई।

वागीश्वरी ने मिठाई की तश्तरी सामने रखते हुए कहा—कुछ जलपान कर लो भैया, तुमने कुछ खाना भी तो नहीं खाया। तुम जैसे वीरों को सवा सेर से कम न खाना चाहिए। धन्य है वह माता, जिसने ऐसे बालक को जन्म दिया। अहिल्या, जरा, गिलास में पानी तो ला। भैया, जब तुम मुसलमानों के सामने अकेले खड़े थे, तो यह ईश्वर से तुम्हारी कुशल मना रही थी। जाने कितनी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मनौतियां कर डालीं! कहां है वह माला, जो तूने गूंथी थी? अब पहनाती क्यों नहीं?

अहिल्या ने लजाते हुए कांपते हाथों से माला चक्रधर के गले में डाल दी और आहिस्ता से बोली—क्या सिर में ज्यादा चोट आई?

चक्रधर--नहीं तो; ख्वामख्वाह पट्टी बंधवा दी।

वागीश्वरी—जब तुम्हें चोट लगी, तब इसे इतना क्रोध आया था कि उस आदमी को पा जाती, तो मुंह नोच लेती। क्या करते हो बेटा?

चक्रधर—अभी तो कुछ नहीं करता, पड़े-पड़े खाया करता हूं, मगर जल्दी ही कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा। धन से तो मुझे बहुत प्रेम नहीं है और मिल भी जाए तो मुझे उसको भोगने के लिए दूसरों की मदद लेनी पड़े। हां , इतना अवश्य चाहता हूं कि किसी का आश्रित होकर न रहना पड़े।

वागीश्वरी—कोई सरकारी नौकरी नहीं मिलती क्या?

चक्रधर—नौकरी करने की तो मेरी इच्छा ही नहीं है। मैंने पक्का निश्चय कर लिया है कि नौकरी न करूंगा। न मुझे खाने का शौक है, न पहनने का, न ठाट-बाट का, मेरा निर्वाह बहुत थोड़े में हो सकता है।

वागीश्वरी-और जब विवाह हो जाएगा, तब क्या करोगे?

चक्रधर—उस वक्त सिर पर जो आएगी, देखी जाएगी। अभी से क्यों उसकी चिता करूं?

वागीश्वरी—जलपान तो कर लो, या मिठाई भी नहीं खाते?

चक्रधर मिठाइयां खाने लगे। इतने में महरी ने आकर कहा—बड़ी बहूजी, मेरे लाला को रात से खांसी आ रही है; तिल भर नहीं रुकती, दवाई दे दो।

वागीश्वरी दवा देने चली गई। अहिल्या अकेली रह गई, तो चक्रधर ने उसकी ओर देखकर कहा—आपको मेरे कारण बड़ा कष्ट हुआ। मैं तो इस उपहार के योग्य न था।

अहिल्या—यह उपहार नहीं, भक्त की भेंट है।

चक्रधर—मेरा परम सौभाग्य है कि बैठे-बैठाए इस पद को पहुंच गया।

अहिल्या—आपने आज इस शहर के हिन्दू मात्र की लाज रख ली। क्या और पानी दूं?

चक्रधर—तृप्त हो गया। आज मालूम हुआ कि जल में कितना स्वाद है? शायद अमृत में भी यह स्वाद न होगा।

वागीश्वरी ने आकर मुस्कराते हुए कहा—भैया, तुमने तो आधी भी मिठाइयां नहीं खाईं। क्या इसे देखकर भूख-प्यास बंद हो गई? यह मोहनी है, जरा इससे सचेत रहना।

अहिल्या—अम्मां, तुम छोटे-बड़े किसी का लिहाज नहीं करतीं।

वागीश्वरी—अच्छा बताओ, तुमने इनकी रक्षा के लिए कौन-कौन सी मनौतियां की थीं?

अहिल्या—मुझे आप दिक करेंगी, तो चली जाऊंगी।

चक्रधर यहां कोई घंटे भर-तक बैठे रहे। वागीश्वरी ने उनके घर का सारा वृत्तांत पूछा—कै भाई हैं, कै बहनें, पिताजी क्या करते हैं, बहनों का विवाह हुआ है या नहीं? चक्रधर को उनके व्यवहार में इतना मातृस्नेह भरा मालूम होता था, मानो उससे उनका परिचय है। चार बजते-बजते ख्वाजा महमूद के आने की खबर पाकर चक्रधर बाहर चले आए। और भी कितने ही आदमी मिलने आए थे। शाम तक उन लोगों से बातें होती रहीं। निश्चय हुआ कि एक पंचायत बनाई जाए और आपस के झगड़े उसी के द्वारा तय हुआ करें। चक्रधर को लोगों ने उस पंचायत का एक मेम्बर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बनाया। रात को जब अहिल्या और वागीश्वरी छत पर लेटीं, तो वागीश्वरी ने पूछा—अहिल्या, सो गई क्या?

अहिल्या—नहीं अम्मां, जाग तो रही हूं।

वागीश्वरी—हां, आज तुझे क्यों नींद आएगी। उनसे ब्याह करेगी?

अहिल्या—अम्मां, मुझे गालियां दोगी, तो मैं नीचे जाकर लेटूंगी, चाहे मच्छर भले ही नोच खाएं।

वागीश्वरी—अरे, तो मैं कौन-सी गाली दे रही हूं। क्या ब्याह न करेगी? ऐसा अच्छा वर तुझे और कहां मिलेगा?

अहिल्या—तुम न मानोगी, लो मैं जाती हूं।

वागीश्वरी—मैं दिल्लगी नहीं कर रही हूं, सचमुच पूछती हूं। तुम्हारी इच्छा हो, तो बातचीत की जाए, अपनी ही बिरादरी के हैं। कौन जाने, राजी हो जाएं।

अहिल्या—सब बातें जानकर भी?

वागीश्वरी—तुम्हारे बाबूजी ने सारी कथा पहले ही सुना दी है।

अहिल्या-जो कहीं न मानें?

वागीश्वरी—टालो मत, दिल की बात साफ-साफ कह दो।

अहिल्या—तुम मेरे दिल का हाल मुझसे अधिक जानती हो, फिर, मुझसे क्यों पूछती हो?

वागीश्वरी—वह धनी नहीं हैं, याद रखो।

अहिल्या—मैं धन की लौंडी कभी नहीं रही।

वागीश्वरी—तो अब तुम्हें संशय में क्यों रखूं। तुम्हारे बाबूजी तुमसे मिलाने ही के लिए इन्हें काशी से लाए हैं। उनके पास और कुछ हो या न हो, हृदय अवश्य है। और ऐसा हृदय, जो बहुत कम लोगों के हिस्सों में आता है। ऐसा स्वामी पाकर तुम्हारा जीवन सफल हो जाएगा।

अहिल्या ने डबडबाई हुई आंखों से वागीश्वरी को देखा, पर मुंह से कुछ न बोली। कृतज्ञता शब्दों में आकर शिष्टता का रूप धारण कर लेती है। उसका मौलिक रूप वही है, जो आंखों से बाहर निकलते हुए कांपता और लजाता है!

छः

मुंशी वज्रधर उन रेल के मुसाफिरों में थे, जो पहले तो गाड़ी में खड़े होने की जगह मांगते हैं, फिर बैठने की फिक्र करने लगते हैं और अंत में सोने की तैयारी कर देते हैं। चक्रधर एक बड़ी रियासत के दीवान की लड़की को पढ़ाएं और वह इस स्वर्ण-संयोग से लाभ न उठाएं! यह क्योंकर हो सकता था। दीवान साहब को सलाम करने आने-जाने लगे। बातें करने में तो निपुण थे ही, दो ही चार मुलाकातों में उनका सिक्का जम गया। इस परिचय ने शीघ्र ही मित्रता का रूप धारण किया। एक दिन दीवान साहब के साथ वह रानी जगदीशपुर के दरबार में पहुंचे और ऐसी लच्छेदार बातें कीं, अपनी तहसीलदारी की ऐसी डींग उड़ाई कि रानी जी मुग्ध हो गईं! कोई क्या तहसीलदारी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करेगा ! जिस इलाके में मैं था, वहां के आदमी आज तक मुझे याद करते हैं। डींग नहीं मारता, डींग मारने की मेरी आदत नहीं, लेकिन जिस इलाके में मुश्किल से पचास हजार वसूल होता था, उसी इलाके से साल के अंदर मैंने दो लाख वसूल करके दिखा दिया। और लुत्फ यह कि किसी को हिरासत में रखने या कुर्की करने की जरूरत नहीं पड़ी।

ऐसे कार्य-कुशल आदमी की सभी जगह जरूरत रहती है। रानी ने सोचा, इस आदमी को रख लूं, तो इलाके की आमदनी बढ़ जाए। ठाकुर साहब से सलाह की। यहां तो पहले ही से संसारी बातें सधी-बधी थीं। ठाकुर साहब ने रंग और भी चोखा कर दिया। उनके दोस्तों में यही ऐसे थे, जिस पर लौगी की असीम कृपादृष्टि थी। दूसरी ही सलामी में मुंशीजी को पच्चीस रुपये मासिक की तहसीलदारी मिल गई। मुंहमांगी मुराद पूरी हुई। सवारी के लिए घोड़ा भी मिल गया। सोने में सुहागा हो गया।

अब मुंशीजी की पांचों अंगुली घी में थीं। जहां महीने में एक बार भी महफिल न जमने पाती थी, वहां अब तीसों दिन जमघट होने लगा। इतने बड़े अहलकार के लिए शराब की क्या कमी; कभी इलाके पर चुपके से दस-बीस बोतलें खिंचवा लेते, कभी शहर के किसी कलवार पर घौंस जमाकर दो-चार बोतलें ऐंठ लेते। बिना हर्र-फिटकरी रंग चोखा हो जाता था। एक कहार भी नौकर रख लिया और ठाकुर साहब के घर से दो-चार कुर्सियां उठवा लाए। उनके हौसले बहुत ऊंचे न थे, केवल एक भले आदमी की भांति जीवन व्यतीत करना चाहते थे। इस नौकरी ने उनके हौसले को बहुत कुछ पूरा कर दिया, लेकिन वह जानते थे कि इस नौकरी का कोई ठिकाना नहीं। रईसों का मिजाज एक-सा नहीं रहता। मान लिया, रानी साहब के साथ निभ ही गई, तो कै दिन ! राजा साहब आते ही पुराने नौकरों को निकाल बाहर करेंगे। जब दीवान ही न रहेंगे, तो मेरी क्या हस्ती? इसलिए उन्होंने पहले ही से नए राजा साहब के यहां आना-जाना शुरू कर दिया था। इसका नाम ठाकुर विशालसिंह था। रा[illegible] ाहब के चचेरे देवर होते थे। उनके दादा दो भाई थे। बड़े भाई रियासत के मालिक थे। उन्हीं के वंशजों ने दो पीढ़ियों तक राज्य का आनंद भोगा था। अब रानी के निस्संतान होने के कारण विशालसिंह के भाग्य उदय हुए थे। दो-चार गांव थे, जो उनके दादा को गुजारे के लिए मिले थे, उन्हीं को रेहन-बय करके इन लोगों ने पचास वर्ष काट दिए थे—यहां तक कि विशालसिंह के पास अब इतनी भी संपत्ति न थी कि गुजर-बसर के लिए काफी होती। उस पर कुल-मर्यादा का पालन करना आवश्यक था। वह महारानी के पट्टीदार थे और इस हैसियत का निर्वाह करने के लिए उन्हें नौकर-चाकर, घोड़ा-गाड़ी सभी कुछ रखना पड़ता था। अभी तक परम्परा की नकल होती चली आती थी। दशहरे के दिन उत्सव जरूर मनाया जाता, जन्माष्टमी के दिन जरूर धूमधाम होती।

प्रातःकाल था, माघ की ठंड पड़ रही थी। मुंशीजी ने गर्म पानी से स्नान किया और चौकी से उतरे। मगर खड़ाऊं उलटे रखे हुए थे। कहार खड़ा था कि यह जाएं, तो धोती छांटूं ! मुंशीजी ने उलटे खड़ाऊं देखे, तो कहार को डांटा—तुमसे कितनी बार कह चुका कि खड़ाऊं सीधे रखा कर। तुझे याद क्यों नहीं रहता? बता, उलटे खड़ाऊं पर कैसे पैर रखूं? आज तो मैं छोड़ देता हूं, लेकिन कल जो तूने उलटे खड़ाऊं रखे, तो इतना पीटूंगा कि तू भी याद करेगा।

कहार ने कांपते हुए हाथ से खड़ाऊं सीधे कर दिए।

निर्मला ने हलवा बना रखा था। मुंशीजी आकर एक कुर्सी पर बैठ गए और जलता हुआ हलवा मुंह में डाल लिया। बारे किसी तरह उसे निगल गए और आंखों से पानी पोंछते हुए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बोले--तुम्हारा कोई काम ठीक नहीं होता। जलता हुआ हलवा सामने रख दिया। आखिर मेरा मुंह जलाने से तुम्हें कुछ मिल तो नहीं गया।

निर्मला--जरा हाथ से देख क्यों न लिया?

वज्रधर--वाह, उलटा चोर कोतवाल को डांटे। मुझी को उल्लू बनाती हो। तुम्हें खुद सोच लेना चाहिए था कि जलता हुआ हलवा खा गए, तो मुंह की क्या दशा होगी। लेकिन तुम्हें क्या परवाह ! लल्लू कहां है?

निर्मला—लल्लू मुझसे कहके कहां जाते हैं ! पहर रात रहे, न जाने किधर चले गए। जाने कहीं किसानों की सभा होने वाली है। वहीं गए हैं।

वज्रधर—वहां दिन भर भूखों मरेगा। न जाने इसके सिर से यह भूत कब उतरेगा? मुझसे कल दारोगाजी कहते थे, आप लड़के को संभालिए, नहीं तो धोखा खाइएगा। समझ में नहीं आता, क्या करूं! मेरे इलाके के आदमी भी इन सभाओं में अब जाने लगे हैं और मुझे खौफ हो रहा है कि कहीं रानी साहब के कानों में भनक पड़ गई, तो मेरे सिर हो जाएंगी ! मैं यह तो मानता हूं कि अहलकार लोग गरीबों को बहुत सताते हैं, मगर किया क्या जाए, सताए बगैर काम भी तो नहीं चलता। आखिर उनका गुजर-बसर कैसे हो ! किसानों को समझाना बुरा नहीं, लेकिन आग में कूदना तो बुरी बात है। मेरी तो सुनने की उसने कसम खा ली है, मगर तुम क्यों नहीं समझातीं?

निर्मला—जो आग में कूदेगा, आप जलेगा, मुझे क्या करना है। उससे बहस कौन करे ! आज सबेरे-सबेरे कहां जा रहे हो?

वज्रधर—जरा ठाकुर विशालसिंह के यहां जाता हूं।

निर्मला—दोपहर तक लौट आओगे न?

वज्रधर—हां, अगर उन्होंने छोड़ा। मुझे देखते ही टूट पड़ते हैं, तरह-तरह की खातिर करने लगते हैं, दूध लाओ, मेवे लाओ, जान ही नहीं छोड़ते। तीनों औरतों का किस्सा छेड़ देते हैं। बड़े मिलनसार आदमी हैं। मंगला क्या अभी तक सो रही है?

निर्मला—हां, जगा के हार गई, उठती ही नहीं।

वज्रधर—यह तो बुरी बात है। बहू-बेटियों का इतने दिन चढ़े तक सोना क्या मानी?

यह कहकर मुंशीजी ने लोटे का पानी उठाया और जाकर मंगला के ऊपर डाल दिया। निर्मला 'हां-हां' करती रह गई। पानी पड़ते ही मंगला हड़बड़ाकर उठी और यह समझकर कि वर्षा हो रही है, कोठरी में घुस गई। सरदी के मारे कांप रही थी।

निर्मला—सबेरे-सबेरे लेके नहला दिया !

वज्रधर—यह सब तुम्हारे लाड़-प्यार का फल है। खुद दोपहर तक सोती हो, वही आदतें लड़कों को भी सिखाती हो !

निर्मला—स्वभाव सबका अलग-अलग होता है। न कोई किसी के बनाने से बनता है, न बिगाड़ने से बिगड़ता है। मां-बाप को देखकर लड़कों का स्वभाव बदल जाता, तो लल्लू कुछ और ही होता। तुम्हें पिए बिना एक दिन भी चैन नहीं आता, उसे भी कभी पीते देखा है? यह सब कहने की बातें हैं कि लड़के मां-बाप की आदतें सीखते हैं।

वज्रधर ने इसका कुछ जवाब न दिया। कपड़े पहने, बाहर घोड़ा तैयार था, उस पर बैठे और शिवपुर चले।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जब वह ठाकुर साहब के मकान पर पहुंचे, तो आठ बज गए थे! ठाकुर साहब धूप में बैठे एक पत्र पढ़ रहे थे। बड़ा तेजस्वी मुख था। वह एक काला दुशाला ओढ़े हुए थे, जिस पर समय के अत्याचार के चिह्न न दिखाई दे रहे थे। इस दुशाले ने उनके गोरे रंग को और भी चमका दिया था।

मुंशीजी ने मोढ़े पर बैठते हुए कहा—सब कुशल-आनंद है न?

ठाकुर—जी हां, ईश्वर की दया है। कहिए, दरबार के क्या समाचार हैं?

यद्यपि ठाकुर साहब रानी के संबंध में कुछ पूछना ओछापन समझते थे, तथापि इस विषय से उन्हें इतना प्रेम था कि बिना पूछे रहा न जाता था।

मुंशीजी ने मुस्कराकर कहा—सब वही पुरानी बातें हैं। डॉक्टरों के पौ बारह हैं। दिन में तीन-तीन डॉक्टर आते हैं।

ठाकुर—क्या शिकायत है?

मुंशी—बुढ़ापे की शिकायत क्या कम है? यह तो असाध्य रोग है।

ठाकुर—उन्हें तो और मनाना चाहिए कि किसी तरह इस मायाजाल से छूट जाएं। दवा-दर्पन की अब क्या जरूरत है। इतने दिन राजसुख भोग चुकीं, पर अब भी जी नहीं भरा!

मुंशी—वह तो अभी अपने को मरने लायक नहीं समझतीं। रोज जगदीशपुर से सोलह कहार पालकी उठाने के लिए बेगार पकड़कर आते हैं। वैद्यजी को लाना और ले जाना उनका काम है।

ठाकुर—अंधेर है और कुछ नहीं। पुराने जमाने में तो खैर सस्ता समय था। जो दो-चार पैसे मजदूरों को मिल जाते थे, वही खाने भर को बहुत थे। आजकल तो एक आदमी का पेट भरने को एक रुपया चाहिए। यह महा अन्याय है। बेचारी प्रजा तबाह हुई जाती है। आप देखेंगे कि मैं इस प्रथा को क्योंकर जड़ से उठा देता हूं।

मुंशी—आपसे लोगों को बड़ी आशाएं हैं। चमारों पर भी यही आफत है! दस बारह चमार रोज साईसी करने के लिए पकड़ बुलाए जाते हैं। सुना है, इलाके भर के चमारों ने पंचायत की है कि जो साईसी करे, उसका हुक्का-पानी बंद कर दिया जाय। अब या तो चमारों को इलाका छोड़ना पड़ेगा या दीवान साहब को साईस नौकर रखने पड़ेंगे।

ठाकुर—चमारों को इलाके से निकालना दिल्लगी नहीं है। ये लोग समझते हैं कि अभी वही दुनिया है, जो बाबा आदम के जमाने में थी। चारों तरफ देखते हैं कि जमाना पलट गया, यहां तक कि किसान और मजदूर राज्य करने लगे, पर अब भी लोगों की आंखें नहीं खुलतीं। इस देश से न जाने कब यह प्रथा मिटेगी। प्रजा तबाह हुई जाती है। आप देखेंगे, मैं रियासत को क्या कर दिखाता हूं। कायापलट कर दूंगा। सुनता हूं, पुलिस आए दिन इलाके में तूफान मचाती रहती है। मैं पुलिस को यहां कदम न रखने दूंगा। जालिमों के हाथों प्रजा तबाह हुई जाती है।

मुंशी—सड़कें इतनी खराब हैं कि इक्के-गाड़ी का गुजर ही नहीं हो सकता।

ठाकुर—सड़कों को दुरुस्त करना मेरा पहला काम होगा। मोटर सर्विस जारी कर दूंगा, जिसमें मुसाफिरों को स्टेशन से जगदीशपुर जाने में सुविधा हो। इलाकों में लाखों बीघे ऊख बोई जाती है और उसका गुड़ या राब बनती है। मेरा इरादा है कि एक शक्कर की मिल खोल दूं और एक अंग्रेज को उसका मैनेजर बना दूं। मैं तो इन लोगों के सुप्रबंध का कायल हूं। हिन्दुस्तानियों पर कभी विश्वास न करें, भूलकर भी नहीं। ये इलाके को तबाह कर देते हैं। शेखी नहीं मारता, इलाके में एक बार रामराज्य स्थापित कर दूंगा, कंचन बरसने लगेगा। आपने किसी महाजन को ठीक किया?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुंशी—हां, कई आदमियों से मिला था और वे बड़ी खुशी से रुपये देने के लिए तैयार हैं, केवल यही चाहते हैं कि जमानत के तौर पर कोई गांव लिख दिया जाए।

ठाकुर—आपने हामी तो नहीं भर ली?

मुंशी—जी नहीं, हामी नहीं भरी; लेकिन बगैर जमानत के रुपये मिलना मुश्किल मालूम होता है।

ठाकुर—तो जाने दीजिए, कोई ऐसी जरूरत नहीं है, जो टाली न ज़ा सके। अगर कोई मेरे विश्वास पर रुपये दे, तो दे दे, लेकिन रियासत की इंच भर भी जमीन रेहन नहीं कर सकता। मैं फाके करूं; बिक जाऊं, लेकिन रियासत पर आंच न आने दूंगा। हां, इसका वादा करता हूं कि रियासत मिलने के साल भर बाद कौड़ी-कौड़ी सूद के साथ चुका दूंगा। सच्ची बात तो यह है कि मुझे पहले ही मालूम था कि इस शर्त पर कोई महाजन रुपये देने पर राजी न होगा। ये बला के चीमड़ होते हैं। मुझे तो इनके नाम से चिढ़ है। मेरा वश चले, तो आज इन सबों को तोप पर उड़ा दूं। जितना डर मुझे इनसे लगता है, उतना सांप से भी नहीं लगता। इन्हीं के हाथों आज मेरी यह दुर्गति हुई है, नहीं तो इस गई-बीती दशा में आदमी होता ! इन नर-पिशाचों ने सारा रक्त चूस लिया। पिताजी ने केवल पांच हजार लिए थे, जिनके पचास हजार हो गए। और मेरे तीन गांव, जो इस वक्त दो लाख को सस्ते थे, नीलाम हो गए। पिताजी का मुझे यह अंतिम उपदेश था कि कर्ज कभी मत लेना। इसी शोक में उन्होंने देह त्याग दी।

यहां अभी यह बातें हो रही थीं कि जनानखाने में से कलह-शब्द आने लगे। मालूम होता था, कई स्त्रियों में संग्राम छिड़ा हुआ है। ठाकुर साहब ये कर्कश शब्द सुनते ही विकल हो गए, उनके माथे पर बल पड़ गए, मुख तेजहीन हो गया। यही उनके जीवन की सबसे दारुण व्यथा थी। यही कांटा था, जो नित्य उनके हृदय में खटका करता था। उनकी बड़ी स्त्री का नाम वसुमती थी। वह अत्यंत गर्वशीला थी, नाक पर मक्खी भी न बैठने देतीं। उनकी तलवार सदैव म्यान से बाहर रहती थी। वह अपनी सपत्नियों पर उसी भाँति शासन करना चाहती थीं, जैसे कोई सास अपनी बहुओं पर करती है। वह यह भूल जाती थीं कि ये उनकी बहुएं नहीं, सपत्नियां हैं। जो उनकी 'हां में हां' मिलाता, उस पर प्राण देती थीं, किंतु उनकी इच्छा के विरुद्ध जरा भी कोई बात हो जाती, तो सिंहनी का-सा विकराल रूप धारण कर लेती थीं।

दूसरी स्त्री का नाम रामप्रिया था। यह रानी जगदीशपुर की सगी बहन थीं। उनके पिता पुराने खिलाड़ी थे, दो दस्ती झाड़ते थे, दोधारी तलवार से लड़ते थे। रामप्रिया दया और विनय की मूर्ति थीं, बड़ी विचारशील और वाक्मधुर। जितना कोमल अंग था, उतना कोमल हृदय भी था। वह घर में इस तरह रहती थीं, मानो थीं ही नहीं। उन्हें पुस्तकों से विशेष रुचि थी, हरदम कुछ न कुछ पढ़ा-लिखा करती थीं। सबसे अलग-विलग रहती थीं, न किसी के लेने में; न देने में; न किसी से बैर, न प्रेम।

तीसरी महिला का नाम रोहिणी थी। ठाकुर साहब का उन पर विशेष प्रेम था, और वह भी प्राणपण से उनकी सेवा करती थीं। इनमें प्रेम की मात्रा अधिक थी या माया की—इसका निर्णय करना कठिन था। उन्हें यह असह्य था कि ठाकुर साहब उनकी सौतों से बातचीत भी करें। वसुमती कर्कशा होने पर भी मलिन हृदय न थीं, जो कुछ मन में होता, वही मुख में। एक बार मुंह से बात निकाल डालने पर फिर उनके हृदय पर उसका कोई चिह्न न रहता था। रोहिणी द्वेष को पालती थीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जैसे चिड़िया अपने अंडे को सेती है। वह जितना मुंह से कहती थीं, उससे कहीं अधिक मन में रखती थीं।

ठाकुर साहब ने अंदर जाकर वसुमती से कहा—तुम घर में रहने दोगी या नहीं? जरा भी शरम-लिहाज नहीं कि बाहर कौन बैठा हुआ है। बस, जब देखो, संग्राम मचा रहता है। इस जिंदगी से तंग आ गया। सुनते-सुनते कलेजे में नासूर पड़ गए।

वसुमती—कर्म तो तुमने किए हैं, भोगेगा कौन?

ठाकुर—तो जहर दे दो। जला-जलाकर मारने से क्या फायदा !

वसुमती—क्या वह महारानी लड़ने के लिए कम थीं कि तुम उनका पक्ष लेकर आ दौड़े? पूछते क्यों नहीं, क्या हुआ, जो तीरों की बौछार करने लगे?

रोहिणी—आप चाहती हैं कि मैं कान पकड़कर उठाऊं या बैठाऊं, तो यहां कुछ आपके गांव में नहीं बसी हूं कि कोई आपसे थर-थर कांपा करे !

ठाकुर—आखिर कुछ मालूम भी तो हो, क्या बात हुई?

रोहिणी—वही हुई जो रोज होती है। मैंने हिरिया से कहा, जरा मेरे सिर में तेल डाल दे। मालकिन ने उसे तेल डालते देखा, तो आग हो गईं। तलवार खींचे हुए आ पहुंचीं और उसका हाथ पकड़कर खींच ले गईं। आज आप निश्चित कर दीजिए कि हिरिया उन्हीं की लौंड़ी है या मेरी भी। यह निश्चय किए बिना आप यहां से न जाने पाएंगे।

वसुमती—वह क्या निश्चय करेंगे, निश्चय मैं करूंगी। हिरिया मेरे साथ मेरे नैहर से आई है और मेरी लौंडी है। किसी दूसरे का उस पर कोई दावा नहीं है।

रोहिणी—सुना आपने? हिरिया पर किसी का दावा नहीं है, वह अकेली उन्हीं की लौंडी है।

ठाकुर—हिरिया इस घर में रहेगी, तो उसे सबका काम करना पड़ेगा।

वसुमती यह सुनकर जल उठीं। नागिन की भंति फुंफकारकर बोलीं—इस वक्त तो आपने चहेती रानी की ऐसी डिग्री कर दी, मानो यहां उन्हीं का राज्य है। ऐसे ही न्यायशील होते तो संतान का मुंह देखने को न तरसते !

ठाकुर साहब को ये शब्द बाण-से लगे। कुछ जवाब न दिया। बाहर आकर कई मिनट तक मर्माहत दशा में बैठे रहे। वसुमती इतनी मुंहफट है, यह उन्हें आज मालूम हुआ। सोचा, मैंने तो कोई ऐसी बात नहीं कही थी, जिस पर वह इतना झल्ला जाती। मैंने क्या बुरा कहा कि हिरिया को सबका काम करना पड़ेगा। अगर हिरिया केवल उसी का काम करती है, तो दो महरियां और रखनी पड़ती हैं। क्या वसुमती इतना भी नहीं समझती? ताना ही देना था, तो और कोई लगती हुई बात कह देती। यह तो कठोर से कठोर आघात है, जो वह मुझ पर कर सकती थी। ऐसी स्त्री का तो मुंह न देखना चाहिए।

सहसा उन्हें एक बात सूझी। मुंशीजी से बोले—ज्योतिष की भविष्यवाणी के विषय में आपके क्या विचार हैं? क्या यह हमेशा सच निकलती है?

मुंशीजी असमंजस में पड़े कि इसका क्या जवाब दूं। कैसा जवाब रुचिकर होगा—यही उनकी समझ में न आया। अंधेरे में टटोलते हुए बोले—यह तो उसी विद्या के विषय में कहा जा सकता है, जहां अनुमान से काम न लिया जाए। ज्योतिष में बहुत कुछ पूर्व अनुभव और अनुमान ही से काम लिया जाता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ठाकुर—बस, ठीक यही मेरा विचार है। अगर ज्योतिष मुझे धनी बतलाए, तो यह आवश्यक नहीं कि मैं धनी हो जाऊं। ज्योतिष के धनी कहने पर भी संभव है कि मैं जिंदगी भर कौड़ियों को मोहताज रहूं। इसी भांति ज्योतिष का दरिद्र लक्ष्मी का कृपापात्र भी हो सकता है, क्यों?

मुंशीजी को अब भी पांव जमाने को भूमि न मिली। संदिग्ध भाव से बोले—हां, ज्योतिष की धारणा जब मनुष्यों से बदली जा सकती है, तो उसे विधि का लेख क्यों समझा जाए?

ठाकुर साहब ने बड़ी उत्सुकता से पूछा--अनुष्ठानों पर आपका विश्वास है?

मुंशीजी को जमीन मिल गई, बोले—अवश्य !

विशालसिंह यह तो जानते थे कि अनुष्ठानों से शंकाओं का निवारण होता है। शनि, राहु आदि का शमन करने के अनुष्ठानों से परिचित थे। बहुत दिनों से मंगल का व्रत भी रखते थे, लेकिन इन अनुष्ठानों पर अब उन्हें विश्वास न था। वह कोई ऐसा अनुष्ठान करना चाहते थे, जो किसी तरह निष्फल ही न हो। बोले--यदि आप यहां के किसी विद्वान् ज्योतिषी से परिचित हों, तो कृपा करके उन्हें मेरे यहां भेज दीजिएगा। मुझे एक विषय में उनसे कुछ पूछना है।

मुंशी—आज ही लीजिए, यहां एक से एक बढ़कर ज्योतिषी पड़े हुए हैं। आप मुझे कोई गैर न समझिए। जब, जिस काम की इच्छा हो, मुझे कहला भेजिए। सिर के बल दौड़ा आऊंगा। बाजार से कोई अच्छी चीज मंगानी हो, मुझे हुक्म दीजिए। किसी वैद्य या हकीम की जरूरत हो, तो मुझे सूचना दीजिए। मैं तो जैसे महारानीजी को समझता हूं, वैसे ही आपको भी समझता हूं।

ठाकुर—मुझे आपसे ऐसी ही आशा है। जरा रानी साहब का कुशल-समाचार जल्द-जल्द भेजिएगा। वहां आपके सिवा मेरा और कोई नहीं है। आप ही के ऊपर मेरा भरोसा है। जरा देखिएगा, कोई चीज इधर-उधर न होने पाए, यार लोग नोंच-खसोट न शुरू कर दें।

मुंशी—आप इससे निश्चिंत रहें। मैं देखभाल करता रहूंगा।

ठाकुर—हो सके, तो जरा यह भी पता लगाइएगा कि रानी ने कहां-कहां से कितने रुपये कर्ज लिए हैं।

मुंशी—समझ गया, यह तो सहज ही में मालूम हो सकता है।

ठाकुर—जरा इसका भी पता लगाइएगा कि आजकल उनका भोजन कौन बनाता है। पहले तो उनके मैके ही की कोई स्त्री थी। मालूम नहीं, अब भी वही बनाती है या कोई दूसरा रसोइया रखा गया है।

वज्रधर ने ठाकुर साहब के मन का भाव ताड़कर दृढ़ता से कहा—महाराज, क्षमा कीजिएगा, मैं आपका सेवक हूं, पर रानीजी का भी सेवक हूं। उनका शत्रु नहीं हूं। आप और वह दोनों सिंह और सिंहनी की भांति लड़ सकते हैं। मैं गीदड़ की भांति अपने स्वार्थ के लिए बीच में कूदना अपमानजनक समझता हूं। मैं यहां तक तो सहर्ष आपकी सेवा कर सकता हूं, जहां तक रानीजी का अहित न हो। मैं तो दोनों ही द्वारों का भिक्षुक हूं।

ठाकुर साहब दिल में शरमाए, पर इसके साथ मुंशीजी पर उनका विश्वास और भी दृढ़ हो गया। बात बनाते हुए बोले—नहीं, नहीं, मेरा मतलब आपने गलत समझा ! छीः ! छीः ! मैं इतना नीच नहीं। मैं केवल इसलिए पूछता था कि नया रसोइया कुलीन है या नहीं। अगर वह सुपात्र है, तो वही मेरा भी भोजन बनाता रहेगा।

ठाकुर साहब ने यह बात तो बनाई, पर उन्हें स्वयं ज्ञात हो गया कि बात बनी नहीं। अपनी झेंप

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मिटाने को वह एक समाचार-पत्र देखने लगे, मानो उन्हें विश्वास हो गया कि मुंशीजी ने उनकी बात सच मान ली।

इतने में हिरिया ने आकर मुंशीजी से कहा—बाबा, मालकिन ने कहा है कि आप जाने लगें तो मुझसे मिल लीजिएगा।

ठाकुर साहब ने गरजकर कहा—ऐसी क्या बात है, जिसको कहने की इतनी जल्दी है। इन बेचारों को देर हो रही है, कुछ निठल्ले थोड़े ही हैं कि बैठे-बैठे औरतों का रोना सुना करें। जा, अंदर बैठ!

यह कहकर ठाकुर साहब उठ खड़े हुए मानो मुंशीजी को विदा कर रहे हैं। वह वसुमती को उनसे बातें करने का अवसर न देना चाहते थे। मुंशीजी को भी अब विवश होकर विदा मांगनी पड़ी।

मुंशीजी यहां से चले तो उनके दिल में एक शंका समाई हुई थी कि ठाकुर साहब कहीं मुझसे नाराज तो नहीं हो गए! हां, इतना संतोष था कि मैंने कोई बुरा काम नहीं किया। यदि वह सच्ची बात कहने के लिए नाराज हो जाते हैं, तो हो जाएं। मैं क्यों रानी साहब का बुरा चेतूं? बहुत होगा, राजा होने पर मुझे जवाब दे देंगे। इसकी क्या चिंता? इस विचार से मुंशीजी और अकड़कर बैठ गए। वह इतने खुश थे, मानो हवा में उड़े जा रहे हैं। उनकी आत्मा कभी इतनी गौरवोन्मत्त न हुई थी, चिंताओं को कभी उन्होंने इतना तुच्छ न समझा था।

सात

चक्रधर की कीर्ति उनसे पहले ही बनारस पहुंच चुकी थी। उनके मित्र और अन्य लोग उनसे मिलने के लिए उत्सुक हो रहे थे। बार-बार आते थे और पूछकर लौट जाते थे। जब वह पांचवें दिन घर पहुंचे, तो लोग मिलने और बधाई देने आ पहुंचे। नगर का सभ्य समाज मुक्त कंठ से उनकी तारीफ कर रहा था। यद्यपि चक्रधर गंभीर आदमी थे, पर अपनी कीर्ति की प्रशंसा से उन्हें सच्चा आनंद मिल रहा था। मुसलमानों की संख्या के विषय में किसी को भ्रम होता, तो वह तुरंत उसे ठीक कर देते थे—एक हजार! अजी, पूरे पांच हजार आदमी थे और सभी की त्यौरियां चढ़ी हुईं। मालूम होता था, मुझे खड़ा निगल जाएंगे। जान पर खेल गया और क्या कहूं। कुछ लोग ऐसे भी थे, जिन्हें चक्रधर की वह अनुनय-विनय अपमानजनक जान पड़ती थी। उनका ख्याल था कि इससे तो मुसलमान और भी शेर हो गए होंगे। इन लोगों से चक्रधर को घंटों बहस करनी पड़ी; पर वे कायल न हुए। मुसलमानों में भी चक्रधर की तारीफ हो रही थी। दो-चार आदमी मिलने भी आए, लेकिन हिन्दुओं का जमघट देखकर लौट गए।

और लोग तो तारीफ कर रहे थे, पर मुंशी वज्रधर लड़के की नादानी पर बिगड़ रहे थे—तुम्हीं को क्यों यह भूत सवार हो जाता है? क्या तुम्हारी ही जान सस्ती है। तुम्हीं को अपनी जान भारी पड़ी है? क्या वहां और लोग न थे, फिर तुम क्यों आग में कूदने गए।? मान लो, मुसलमानों ने हाथ चला दिया होता, तो क्या करते? फिर तो कोई साहब पास न फटकते! ये हजारों आदमी, जो आज खुशी के मारे फूले नहीं समाते, बात तक न पूछते।

निर्मला तो इतनी बिगड़ी कि चक्रधर से बात न करना चाहती थी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शाम को चक्रधर मनोरमा के घर गए। वह बगीचे में दौड़-दौड़कर हजारे से पौधों को सींच रही थी। पानी से कपड़े लथपथ हो गए थे। उन्हें देखते ही हजारा फेंककर दौड़ी और पास आकर बोली—आप कब आए, बाबूजी? मैं पत्रों में रोज वहां का समाचार देखती थी और सोचती थी कि आप यहां आएंगे, तो आपकी पूजा करूंगी। आप न होते तो वहां जरूर दंगा हो जाता। आपको बिगड़े हुए मुसलमानों के सामने अकेले जाते हुए जरा भी शंका न हुई?

चक्रधर ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा—जरा भी नहीं। मुझे तो यही धुन थी कि इस वक्त कुरबानी न होने दूंगा, इसके बिना दिल में और खयाल न था। अब सोचता हूं, तो आश्चर्य होता है कि मुझमें इतना बल और साहस कहां से आ गया था ! मैं तो यही कहूंगा कि मुसलमानों को लोग नाहक बदनाम करते हैं। फसाद से वे भी उतना ही डरते हैं, जितने हिन्दू। शांति की इच्छा भी उनमें हिन्दुओं से कम नहीं है। लोगों का यह खयाल कि मुसलमान लोग हिन्दुओं पर राज्य करने का स्वप्न देख रहे हैं, बिल्कुल गलत है। मुसलमानों को केवल यह शंका हो गई है कि हिन्दू उनसे पुराना बैर चुकाना चाहते हैं, और उनकी हस्ती को मिटा देने की फिक्र कर रहे हैं। इसी भय से वे जरा-जरा-सी बात पर तिनक उठते हैं और मरने-मारने पर आमादा हो जाते हैं।

मनोरमा—मैंने तो जब पढ़ा कि आप उन बौखलाए हुए आदमियों के सामने निःशंक भाव से खड़े थे, तो मेरे रोंगटे खड़े हो गए। आगे पढ़ने की हिम्मत न पड़ती थी कि कहीं कोई बुरी खबर न हो। क्षमा कीजिएगा, मैं उस समय वहां होती, तो आपको पकड़कर खींच लाती। आपको अपनी जान का जरा भी मोह नहीं है।

चक्रधर—(हंसकर) जान और है ही किसलिए? पेट पालने ही के लिए तो हम आदमी नहीं बनाए गए हैं ! हमारे जीवन का आदर्श कुछ तो ऊंचा होना चाहिए, विशेषकर उन लोगों का, जो सभ्य कहलाते हैं। ठाट से रहना ही सभ्यता नहीं।

मनोरमा—(मुस्कराकर) अच्छा, अगर इस वक्त आपको पांच लाख रुपये मिल जाएं तो आप लें या न लें?

चक्रधर—कह नहीं सकता, मनोरमा, उस वक्त दिल की क्या हालत हो। दान तो न लूंगा, पड़ा हुआ धन भी न लूंगा; लेकिन अगर किसी ऐसी विधि से मिले कि उसे लेने में आत्मा की हत्या न होती हो, तो शायद मैं प्रलोभन को रोक न सकूं, पर इतना अवश्य कह सकता हूं कि उसे भोग-विलास में न उड़ाऊंगा। धन की मैं निंदा नहीं करता, उससे मुझे डर लगता है। दूसरों का आश्रित बनना तो लज्जा की बात है; लेकिन जीवन को इतना सरल रखना चाहता हूं कि सारी शक्ति धन कमाने और अपनी जरूरतों को पूरा करने ही में न लगानी पड़े।

मनोरमा—धन के बिना परोपकार भी तो नहीं हो सकता।

चक्रधर—परोपकार मैं नहीं करना चाहता, मुझमें इतनी सामर्थ्य ही नहीं। यह तो वे ही लोग कर सकते हैं, जिन पर ईश्वर की कृपादृष्टि हो। मैं परोपकार के लिए अपने जीवन को सरल नहीं बनाना चाहता; बल्कि अपने उपकार के लिए, अपनी आत्मा के सुधार के लिए। मुझे अपने ऊपर इतना भरोसा नहीं है कि धन पाकर भी भोग में न पड़ जाऊं। इसलिए मैं उससे दूर ही रहता हूं।

मनोरमा—अच्छा, अब यह तो बताइए कि आपसे वधूजी ने क्या बातें कीं? (मुस्कराकर), मैं तो जानती हूं, आपने कोई बातचीत न की होगी, चुपचाप लजाए बैठे रहे होंगे। उसी तरह वह भी आपके सामने आकर खड़ी हो गई होंगी और खड़ी-खड़ी चली गई होंगी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चक्रधर शरम से सिर झुकाकर बोले—हां, मनोरमा, हुआ तो ऐसा ही। मेरी समझ में न आता था कि क्या करूं। उसने दो बार कुछ बोलने का साहस भी किया।

मनोरमा—आपको देखकर खुश तो हुई होंगी?

चक्रधर—(शरमाकर) किसी के मन का हाल मैं क्या जानूं!

मनोरमा ने अत्यंत सरल भाव से कहा—सब मालूम हो जाता है। आप मुझसे बता नहीं रहे। कम-से-कम उनकी इच्छा तो मालूम हो ही गई होगी। मैं तो समझती हूं, जो विवाह लड़की की इच्छा के विरुद्ध किया जाता है, वह विवाह ही नहीं है। आपका क्या विचार है?

चक्रधर बड़े असमंजस में पड़े। मनोरमा से ऐसी बातें करते उन्हें संकोच होता था। डरते थे कि कहीं ठाकुर साहब को खबर मिल जाए—सरला मनोरमा ही कह दे—तो वह समझेंगे, मैं इसके सामाजिक विचारों में क्रांति पैदा करना चाहता हूं। अब तक उन्हें ज्ञान न था कि ठाकुर साहब किन विचारों के आदमी हैं। हां, उनके गंगा-स्नान से यह आभास होता था कि वह सनातन धर्म के भक्त हैं। सिर झुकाकर बोले—मनोरमा, हमारे यहां विवाह का आधार प्रेम और इच्छा पर नहीं, धर्म और कर्त्तव्य पर रखा गया है। इच्छा चंचल है, क्षण-क्षण में बदलती रहती है। कर्त्तव्य स्थायी है, उसमें कभी परिवर्तन नहीं होता।

मनोरमा—अगर यह बात है, तो पुराने जमाने में स्वयंवर क्यों होते थे?

चक्रधर—स्वयंवर में कन्या की इच्छा ही सर्वप्रधान नहीं होती थी। वह वीरयुग था और वीरता ही मनुष्य का सबसे उज्ज्वल गुण समझा जाता था। लोग आजकल वैवाहिक प्रथा सुधारने का प्रयत्न तो कर रहे हैं।

मनोरमा—जानती हूं, लेकिन कहीं सुधार हो रहा है? माता-पिता धन देखकर लट्टू हो जाते हैं। इच्छा अस्थायी है, मानती हूं, लेकिन एक बार अनुमति देने के बाद फिर लड़की को पछताने के लिए कोई हीला नहीं रहता।

चक्रधर—अपने मन को समझाने के लिए तर्कों की कभी कमी नहीं रहती, मनोरमा! कर्त्तव्य ही ऐसा आदर्श है, जो कभी धोखा नहीं दे सकता।

मनोरमा—हां, लेकिन आदर्श आदर्श ही रहता है, यथार्थ नहीं हो सकता। (मुस्कराकर) यदि आप ही का विवाह किसी कानी, काली-कलूटी स्त्री से हो जाए तो क्या आपको दुःख न होगा? बोलिए! क्या आप समझते हैं कि लड़की का विवाह किसी खूसट से हो जाता है, तो उसे दुःख नहीं होता? उसका बस चले तो वह पति का मुंह तक न देखे। लेकिन इन बातों को जाने दीजिए। वधूजी बहुत सुंदर हैं?

चक्रधर ने बात टालने के लिए कहा—सुंदरता मनोभावों पर निर्भर होती है। माता अपने कुरूप बालक को भी सुंदर समझती है।

मनोरमा—आप तो ऐसी बातें कर रहे हैं, जैसे भागना चाहते हों। क्या माता किसी सुंदर बालक को देखकर यह नहीं सोचती कि मेरा भी बालक ऐसा ही होता!

चक्रधर ने लज्जित होकर कहा—मेरा आशय यह न था। मैं यही कहना चाहता था कि सुंदरता के विषय में सबकी राय एक-सी नहीं हो सकती।

मनोरमा—आप फिर भागने लगे। मैं जब आपसे यह प्रश्न करती हूं, तो उसका साफ मतलब यह है कि आप उन्हें सुंदर समझते हैं या नहीं?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चक्रधर लज्जा से सिर झुकाकर बोले—ऐसी बुरी तो नहीं है?

मनोरमा—तब तो आप उन्हें खूब प्यार करेंगे?

चक्रधर—प्रेम केवल रूप का भक्त नहीं होता!

सहसा घर के अंदर से किसी के कर्कश शब्द कान में आए, फिर लौंगी का रोना सुनाई दिया। चक्रधर ने पूछा—यह लौंगी रो रही है?

मनोरमा—जी हां! आपकी तो भाई साहब से भेंट नहीं हुई। गुरुसेवकसिंह नाम है। कई महीनों से देहात में जमींदारी का काम करते हैं। हैं तो सगे भाई और पढ़े-लिखे भी खूब हैं; लेकिन भलमनसी छू भी नहीं गई। जब आते हैं, लौंगी अम्मां से झूठमूठ तकरार करते हैं। न जाने उससे इन्हें क्या अदावत है।

इतने में गुरुसेवकसिंह लाल-लाल आंखें किए निकल आए और मनोरमा से बोले—बाबूजी कहां गए हैं? तुझे मालूम है कब तक आएंगे? मैं आज ही फैसला कर लेना चाहता हूं।

गुरुसेवकसिंह की उम्र पच्चीस वर्ष से अधिक न थी। लंबे, छरहरे एवं रूपवान् थे; आंखों पर ऐनक थी, मुंह में पान का बीड़ा, देह पर तनजेब का कुर्ता, मांग निकली हुई। बहुत शौकीन आदमी थे।

चक्रधर को बैठे देखकर वह कुछ झिझके और अंदर लौटना चाहते ही थे कि लौंगी रोती हुई आकर चक्रधर के पास खड़ी हो गई और बोली—बाबूजी, इन्हें समझाइएं कि मैं अब बुढ़ापे में कहां जाऊं? इतनी उम्र तो इस घर में कटी, अब किसके द्वार पर जाऊं? जहां इतने नौकरों-चाकरों के लिए खाने को रोटियां हैं, क्या वहां मेरे लिए एक टुकड़ा भी नहीं? बाबूजी, सच सकती हूं, मैंने इन्हें अपना दूध पिलाकर पाला है; मालकिन के दूध न होता था, और अब यह मुझे घर से निकालने पर तुले हुए हैं।

गुरुसेवक की इच्छा तो न थी कि चक्रधर से इस कलह के संबंध में कुछ कहें; लेकिन जब लौंगी ने उन्हें पंच बनाने में संकोच न किया, तो वह भी खुल पड़े। बोले—महाशय, इससे यह पूछिए कि अब यह बुढ़िया हुई, इसके मरने के दिन आए, क्यों नहीं किसी तीर्थ-स्थान में जाकर अपने कलुषित जीवन के बचे हुए दिन काटती? मैंने दादाजी से कहा था कि इसे वृन्दावन पहुंचा दीजिए और वह तैयार भी हो गए थे; पर इसने सैकड़ों बहाने किए और वहां न गई। आपसे तो अब कोई पर्दा नहीं है, इसके कारण मैंने यहां रहना छोड़ दिया। इसके साथ इस घर में रहते हुए मुझे लज्जा आती है। इसे इसकी जरा भी परवाह नहीं कि जो लोग सुनते होंगे, तो दिल में क्या कहते होंगे। हमें कहीं मुंह दिखाने की जगह नहीं रही। मनोरमा अब सयानी हुई। उसका विवाह करना है या नहीं? इसके घर में रहते हुए हम किस भले आदमी के द्वार पर जा सकते हैं? मगर इसे इन बातों की बिल्कुल चिंता नहीं। बस, मरते दम तक घर की स्वामिनी बनी रहना चाहती है। दादाजी भी सठिया गए हैं, उन्हें मानापमान की जरा भी फिक्र नहीं। इसने उन पर जाने क्या मोहिनी डाल दी है कि इसके पीछे मुझसे लड़ने पर तैयार रहते हैं। आज मैं निश्चय करके आया हूं कि इसे घर के बाहर निकालकर ही छोड़ूंगा। या तो यह किसी दूसरे मकान में रहे या किसी तीर्थ-स्थान को प्रस्थान करे।

लौंगी—तो बच्चा, सुनो, जब तक मालिक जीता है, लौंगी इसी घर में रहेगी और इसी तरह रहेगी। जब वह न रहेगा, तो जो कुछ सिर पर पड़ेगी, झेल लूंगी। जो तुम चाहो कि लौंगी गली-गली ठोकरें खाए तो यह न होगा! मैं लौंडी नहीं हूं कि घर से बाहर जाकर रहूं। तुम्हें यह कहते लज्जा नहीं आती? चार भांवरें फिर जाने से ही विवाह नहीं हो जाता। मैंने अपने मालिक की जितनी सेवा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की है और करने को तैयार हूं, उतनी कौन ब्याहता करेगी? लाए तो हो बहू, कभी उठकर एक लुटिया पानी भी देती है? खाई है कभी उसकी बनाई हुई कोई चीज? नाम से कोई ब्याहता नहीं होती, सेवा और प्रेम से होती है।

गुरुसेवकसिंह—यह तो मैं जानता हूं कि तुझे बातें बहुत करनी आती हैं; पर अपने मुंह से जो चाहे बने, मैं तुझे लौंडी ही समझता हूं!

लौंगी—तुम्हारे समझने से क्या होता है, अभी तो मेरा मालिक जीता है। भगवान उसे अमर करें! जब तक जीती हूं, इसी तरह रहूंगी, चाहे तुम्हें अच्छा लगे या बुरा। जिसने जवानी में बांह पकड़ी, वह क्या अब छोड़ देगा? भगवान् को कौन मुंह दिखाएगा?

यह कहती हुई लौंगी घर में चली गई। मनोरमा चुपचाप सिर झुकाए दोनों की बातें सुन रही थी। उसे लौंगी से सच्चा प्रेम था। मातृस्नेह का जो कुछ सुख उसे मिला था, लौंगी से ही मिला था। उसकी माता तो उसे गोद में छोड़कर परलोक सिधारी थी। उस एहसान को वह कभी न भूल सकती थी। अब भी लौंगी उस पर प्राण देती थी। इसलिए गुरुसेवकसिंह की यह निर्दयता उसे बहुत बुरी मालूम होती थी।

लौंगी के जाते ही गुरुसेवकसिंह बड़े शांत भाव से एक कुर्सी पर बैठ गए और चक्रधर से बोले—महाशय, आपसे मिलने की इच्छा हो रही थी और इस समय मेरे यहां आने का एक कारण यह भी था। आपने आगरे की समस्या जिस बुद्धिमानी से हल की, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, कम है।

चक्रधर—वह तो मेरा कर्त्तव्य ही था।

गुरुसेवक—इसीलिए कि आपके कर्त्तव्य का आदर्श बहुत ऊंचा है। सौ में निन्यानबे आदमी तो ऐसे अवसर पर लड़ जाना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं। मुश्किल से एक आदमी ऐसा निकलता है, जो धैर्य से काम ले। शांति के लिए आत्मसमर्पण करने वाला तो लाख-दो-लाख में एक होता है। आप विलक्षण धैर्य और साहस के मनुष्य हैं। मैंने भी अपने इलाके में कुछ लड़कों का खेल-सा कर रखा है। वहां पठानों के कई बड़े-बड़े गांव हैं; उन्हीं से मिले हुए ठाकुरों के भी कई गांव हैं। पहले पठानों और ठाकुरों में इतना मेल था कि शादी, गमी, तीज-त्योहार में एक-दूसरे के साथ शरीक होते थे; लेकिन अब तो यह हाल है कि कोई त्योहार ऐसा नहीं जाता, जिसमें खून-खच्चर या कम-से-कम मारपीट न हो। आप अगर दो-एक दिन के लिए वहां चलें, तो आपस में बहुत कुछ सफाई हो जाए। मुसलमानों ने अपने पत्रों में आपका जिक्र देखा है और शौक से आपका स्वागत करेंगे। आपके उपदेशों का बहुत कुछ असर पड़ सकता है।

चक्रधर—बातों में असर डालना तो ईश्वर की इच्छा के अधीन है। हां, मैं आपके साथ चलने को तैयार हूं। मुझसे जो सेवा हो सकेगी, वह उठा न रखूंगा। कब चलने का इरादा है?

गुरुसेवक—चलता तो इसी गाड़ी से; लेकिन मैं इस कुलटा को अबकी निकाल बाहर किए बगैर नहीं जाना चाहता। दादाजी ने रोक-टोक की, तो मनोरमा को लेता जाऊंगा और फिर इस घर में कदम न रखूंगा। सोचिए तो, कितनी बड़ी बदनामी है!

चक्रधर बड़े संकट में पड़ गए। विरोध की कटुता को मिटाने के लिए मुस्कराते हुए बोले—मैं और आपके सामाजिक विचारों में बड़ा अंतर है। मैं बिल्कुल भ्रष्ट हो गया हूं।

गुरुसेवक—क्या आप लौंगी का यहां रहना अनुचित नहीं समझते?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चक्रधर--जी नहीं, खानदान की बदनामी अवश्य है; लेकिन मैं बदनामी के भय से अन्याय करने की सलाह नहीं दे सकता। क्षमा कीजिएगा, मैं बड़ी निर्भीकता से अपना मत प्रकट कर रहा हूं।

गुरुसेवक--नहीं-नहीं, मैं बुरा नहीं मान रहा हूं। (मुस्कराकर) इतना उजड्ड नहीं हूं कि किसी मित्र की सच्ची राय न सुन सकूं। अगर आप मुझे समझा दें कि उसका यहां रहना उचित है, तो मैं आपका बहुत अनुग्रहीत हूंगा। मैं खुद नहीं चाहता कि मेरे हाथों किसी को अकारण कष्ट पहुंचे।

चक्रधर--जब किसी पुरुष का एक स्त्री के साथ पति-पत्नी का संबंध हो जाए, तो पुरुष का धर्म है कि जब तक स्त्री की ओर से कोई विरुद्ध आचरण न देखे, उस संबंध को निबाहे।

गुरुसेवक--चाहे स्त्री कितनी ही नीच जाति की हो?

चक्रधर--हां, चाहे किसी भी जाति की हो !

मनोरमा यह जवाब सुनकर गर्व से फूल उठी। वह आवेश में उठ खड़ी हुई और पुलकित होकर खिड़की के बाहर झांकने लगी। गुरुसेवकसिंह वहां न होते तो वह जरूर कह उठती--आप मेरे मुंह से बात ले गए।

एकाएक फिटन की आवाज आई और ठाकुर साहब उतरकर अंदर गए। गुरुसेवकसिंह भी उनके पीछे-पीछे चले। वह डर रहे थे कि लौंगी अवसर पाकर कहीं उनके कान न भर दे।

जब वह चले गए, तो मनोरमा बोली--आपने मेरे मन को बात कही। बहुत-सी बातों में मेरे विचार आपके विचारों से मिलते हैं।

चक्रधर--उन्हें बुरा तो जरूर लगा होगा !

मनोरमा--वह फिर आपसे बहस करने आते होंगे। अगर आज मौका न मिलेगा तो कल करेंगे। अबकी वह शास्त्रों के प्रमाण पेश करेंगे, देख लीजिएगा।

चक्रधर--खैर, यह तो बताओ कि तुमने इन चार-पांच दिनों में क्या काम किया?

मनोरमा--मैंने तो किताब तक नहीं खोली। बस, समाचार पढ़ती थी और वही बातें सोचती थी। आप नहीं रहते तो मेरा किसी काम में जी नहीं लगता। आप अब कभी बाहर न जाइएगा।

चक्रधर ने मनोरमा की ओर देखा, तो उसकी आंखें सजल हो गई थीं। सोचने लगे। बालिका का हृदय कितना सरल, कितना उदार, कितना कोमल और कितना भावमय है।

आठ

जगदीशपुर की रानी देवप्रिया का जीवन केवल दो शब्दों में समाप्त हो जाता था--विनोद और विलास। इस वृद्धावस्था में भी उनकी विलास वृत्ति अणुमात्र भी कम न हुई थी। हमारी कर्मेन्द्रियां भले ही जर्जर हो जाएं, चेष्टाएं तो वृद्ध नहीं होतीं ! कहते हैं, बुढ़ापा मरी हुई अभिलाषाओं की समाधि है या पुराने पापों का पश्चात्ताप; पर रानी देवप्रिया का बुढ़ापा अतृप्त तृष्णा थी और अपूर्ण विलासाराधना। वह दान-पुण्य बहुत करती थीं; साल में दो-चार यज्ञ भी कर लिया करती थीं, साधु-संतों पर उनकी असीम श्रद्धा थी और धर्मनिष्ठा में उनका ऐहिक स्वार्थ छिपा होता था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परलोक की उन्हें कभी भूलकर भी याद न आती थी। वह भूल गई थीं कि इस जीवन के बाद भी कुछ है। उनके दान और स्नान का मुख्य उद्देश्य था—शारीरिक विकारों से निवृत्ति, विलास में रत रहने की परम योग्यता। यदि वह किसी देवता को प्रसन्न कर सकतीं, तो कदाचित् उससे यही वरदान मांगतीं कि वह कभी बूढ़ी न हों। इस पूजा और व्रत के सिवा वह इस महान् उद्देश्य को पूरा करने के लिए भांति-भांति के रसों और पुष्टिकारक औषधियों का सेवन करती रहती थीं। झुर्रियां मिटाने और रंग को चमकाने के लिए कितने ही प्रकार के पाउडरों, उबटनों और तेलों से काम लिया जाता था। वृद्धावस्था उनके लिए नरक से कम भयंकर न थी। चिंता को तो वह अपने पास न फटकने देती थीं। रियासत उनके भोग-विलास का साधन मात्र थी। प्रजा को क्या कष्ट होता है, उन पर कैसे-कैसे अत्याचार होते हैं, सूखे-झूरे की विपत्ति क्योंकर उनका सर्वनाश कर देती है, इन बातों की ओर कभी उनका ध्यान न जाता था। उन्हें जिस समय जितने धन की जरूरत हो, उतना तुरंत देना मैनेजर का काम था। वह ऋण लेकर दे, चोरी करे या प्रजा का गला काटे, इससे उन्हें कोई प्रयोजन न था।

यों तो रानी साहब को हर एक प्रकार के विनोद से समान प्रेम था। चाहे वह थियेटर हो, या पहलवानों का दंगल या अंगरेजी नाच, पर उनके जीवन की सबसे आनंदमय घड़ियां वे होती थीं, जब वह युवकों और युवतियों के साथ प्रेम क्रीड़ा करती थीं। इस मंडली में बैठकर उन्हें आत्म-प्रवंचना का सबसे अच्छा अवसर मिलता था। वह भूल जाती थीं कि मेरा यौवन काल बीत चुका है। अपने बुझे हुए यौवन-दीपक को युवा की प्रज्वलित स्फूर्ति से जलाना चाहती थीं; किंतु इस धुन में वह कितने ही अन्य विलासांध प्राणियों की भांति नीचों को मुंह न लगाती थीं। काशी आनेवाले राजकुमारों और राजकुमारियों ही से उनका सहवास रहता था। आनेवालों की कमी न थी। एक-न-एक हमेशा ही आता रहता था। रानी की अतिथिशाला हमेशा आबाद रहती थी। उन्हें युवकों की आंखों में खुब जाने की सनक-सी थी। वह चाहती थीं कि मेरे सौंदर्य-दीपक पर युवक पतंगे की भांति आकर गिरें। उनकी रसमयी कल्पना प्रेम के आघात-प्रत्याघात से एक विशेष स्फूर्ति का अनुभव करती थी।

एक दिन ठाकुर हरिसेवकसिंह मनोरमा को रानी साहब के पास ले गए। रानी उसे देखकर मोहित हो गईं। तब से दिन में एक बार उससे जरूर मिलतीं। वह किसी कारण से न आती, तो उसे बुला भेजतीं। उसका मधुर गाना सुनकर वह मुग्ध हो जाती थीं। हरिसेवकसिंह का उद्देश्य कदाचित् यही था कि वहां मनोरमा को रईसों और राजकुमारों को आकर्षित करने का मौका मिलेगा।

भादों की अंधेरी रात थी। मूसलाधार वर्षा हो रही थी। रानी साहब को आज कुछ ज्वर था, चेष्टा गिरी हुई थी, सिर उठाने को जी न चाहता था; पर पड़े रहने का अवसर न था। हर्षपुर के राजकुमार को आज उन्होंने निमंत्रित किया था। उनके आदर-सत्कार का काम करना जरूरी था। उनके सहवास के सुख से वह अपने को वंचित न कर सकती थीं। उनके आने का समय भी निकट था। रानी ने बड़ी मुश्किल से उठकर आईने में अपनी सूरत देखी। उनके हृदय पर आघात-सा हुआ। मुख प्रभात-चंद्र की भांति मंद हो रहा था।

रानी ने सोचा, अभी राजकुमार आते होंगे। क्या मैं उनसे इसी दशा में मिलूंगी? संसार में क्या कोई ऐसी संजीवनी नहीं है जो काल के कुटिल चिह्न को मिटा दे? ऐसी वस्तु कहीं मिल जाती, तो मैं अपना सारा राज्य बेचकर उसे ले लेती। जब भोगने की सामर्थ्य ही न हो, तो राज्य से और सुख

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ही क्या ! हा निर्दयी काल ! तूने मेरा कोई प्रयत्न सफल न होने दिया।

राजकुमार अब आते होंगे, मुझे तैयार हो जाना चाहिए। ज्वर है, कोई परवाह नहीं। मालूम नहीं, जीवन में फिर ऐसा अवसर मिले या न मिले।

सामने मेज पर एक अलबम रखा था। रानी ने राजकुमार का चित्र निकालकर देखा। कितना सहास मुख था, कितना तपस्वी स्वरूप, कितनी सुधामयी छवि !

रानी एक आरामकुर्सी पर लेटकर सोचने लगीं—यह चित्र न जाने क्यों मेरे चित्त को इतने जोर से खींच रहा है। मेरा चित्त कभी इतना चंचल न हुआ था। इसी अलबम में और भी कई चित्र हैं, जो इससे कहीं सुंदर हैं; लेकिन उन नवयुवकों को मैंने कठपुतलियों की तरह नचाकर छोड़ा। यह एक ऐसा चित्र है, जो मेरे हृदय में भूली हुई बातों की याद दिला रहा है, जिसके सामने ताकते हुए मुझे लज्जा-सी आती है !

रानी ने घड़ी की ओर आतुर नेत्रों से देखा। नौ बज रहे थे। अब वह लेटी न रह सकी; संभलकर उठीं; आलमारी में से एक शीशी निकाली। उसमें से कई बूंदें एक प्याली में डालीं और आंखें बंद करके पी गईं। इसका चमत्कारिक असर हुआ, मानो कोई कुम्हलाया फूल ताजा हो जाए; कोई सूखी पत्ती हरी हो जाए। उनके मुखमंडल पर आभा दौड़ गई। आंखों में चंचल सजीवता का विकास हो गया, शरीर में नए रक्त का प्रवाह-सा होने लगा। उन्होंने फिर आईने की ओर देखा और उनके अधरों पर एक मृदुल हास्य की झलक दिखाई दी। उनके उठने की आहट पाकर लौंडी कमरे में आकर खड़ी हो गई। यह उनकी नाइन थी। गुजराती नाम था।

रानी—समय बहुत थोड़ा है, जल्दी कर।

गुजराती—रानियों को कैसी जल्दी ! जिसे मिलना होगा, वह स्वयं आएगा और बैठा रहेगा !

रानी—नहीं, आज ऐसा ही अवसर है।

नाइन बड़ी निपुण थी, तुरंत शृंगारदान खोलकर बैठ गई और रानी का शृंगार करने लगी, मानो कोई चित्रकार तसवीर में रंग भर रहा हो। आध घंटा भी न गुजरा था कि उसने रानी के केश गूंथकर नागिन की-सी लटें डाल दीं। कपोलों पर एक ऐसा रंग भरा कि झुर्रियां गायब हो गईं और मुख पर मनोहर आभा झलकने लगी। ऐसा मालूम होने लगा, मानो कोई सुंदरी युवती सोकर उठी है। वही अलसाया हुआ अंग था, वही मतवाली आंखें। रानी ने आईने की ओर देखा और प्रसन्न होकर बोलीं—गुजराती, तेरे हाथ में कोई जादू है। मैं तुझे अपने साथ स्वर्ग में ले चलूंगी। वहां तो देवता लोग होंगे, तेरी मदद की और भी जरूरत होगी।

गुजराती—आप कभी इनाम तो देतीं नहीं। बस, बखान करके रह जाती हैं !

रानी—अच्छा, बता क्या लेगी?

गुजराती—मैं लूंगी तो वही लूंगी, जा कई बार मांग चुकी हूं। रुपये-पैसे लेकर मुझे क्या करना है !

यह एक दीवारगीर पर रखी हुई मदन की छोटी-सी मूर्ति थी। चतुर मूर्तिकार ने इस पर कुछ ऐसी कारीगरी की थी जिससे कि दिन के साथ उसका भी रंग बदलता रहता था।

गुजराती—अच्छा, तो न दीजिए, लेकिन फिर मुझसे कभी न पूछिएगा कि क्या लेगी?

रानी—क्या मुझसे नाराज हो गई? (चौंककर) वह रोशनी दिखाई दी? कुंवर साहब आ गए ! मैं झूलाघर में जाती हूं। वहीं लाना।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह कहकर रानी ने फिर वही शीशी निकाली और दुगुनी मात्रा में दवा पीकर झूलाघर की ओर चलीं। यह एक विशाल भवन था, बहुत ऊंचा और इतना लंबा-चौड़ा कि झूले पर बैठकर खूब पेंगें ली जा सकती थीं। रेशम की डोरियों में पड़ा हुआ एक पटरा छत से लटक रहा था; पर चित्रकारों ने ऐसी कारीगरी की थी कि मालूम होता था, किसी वृक्ष की डाल में पड़ा हुआ है। पौधों, झाड़ियों और लताओं ने उसे यमुना-तट का कुंज-सा बना दिया था। कई हिरन और मोर इधर-उधर विचरा करते थे। रात को उस भवन में पहुंचकर सहसा यह ज्ञान न होता था कि यह कोई भवन है। पानी का रिमझिम बरसना, ऊपर से हल्की-हल्की फुहारों का पड़ना, हौज में जल-पक्षियों का क्रीड़ा करना—यह सब किसी उण्वन की शोभा दर्शाता था।

रानी झूले की डोरी पकड़कर खड़ी हो गईं और एक हिरन के बच्चे को बुलाकर उसका मुंह सहलाने लगीं। सहसा कदमों की आहट हुई। रानी मेहमान का स्वागत करने के लिए द्वार पर आईं, पर यह राजकुमार न थे, मनोरमा थी। रानी को कुछ निराशा तो हुई; किंतु मनोरमा भी आज के अभिनय की पात्री थी। उन्होंने उसे बुलवा भेजा था।

रानी—बड़ी देर लगाई ! तेरी राह देखते-देखते आंखें थक गईं।

मनोरमा—पानी के मारे घर से निकलने की हिम्मत ही न पड़ती थी।

रानी—राजकुमार ने न जाने क्यों देर की। आ, तब तक कोई गीत सुना।

यहीं हौज के किनारे एक संगमरमर का चबूतरा था। दोनों जाकर उस पर बैठ गईं।

रानी—क्या मैं बहुत बुरी लगती हूं।

मनोरमा—आप तो सौंदर्य की देवी मालूम होती हैं !

रानी—चल, झूठी। मुझसे अपना रूप बदलेगी?

मनोरमा—मैं तो आपकी लौंडी की तरह भी नहीं हूं। मुझे आपके साथ बैठते शरम आती है।

रानी—अच्छा बता, संसार में सबसे अमूल्य रत्न कौन-सा है?

मनोरमा—कोहनूर हीरा होगा, और क्या?

रानी—दुत् पगली ! संसार की सबसे उत्तम, देव-दुर्लभ वस्तु यौवन है। बता, तूने किसी से प्रेम किया है?

मनोरमा—जाइए, मैं आपसे नहीं बोलती।

रानी—आह ! तूने तीर मार दिया। यही बिगड़ना तो पुरुषों पर जादू का काम करता है। काश, मेरे मुंह से ऐसी बातें निकलतीं। सच बता, तूने किसी युवक से कभी प्रेम किया है? अच्छा आ, आज मैं सिखा दूं।

मनोरमा—आप मुझे छेड़ेंगी, तो मैं चली जाऊंगी।

रानी—ऐं, तो इतना चिढ़ती क्यों है? ऐसी कोई बालिका तो नहीं। देख, सबसे पहली बात है, कटाक्ष करने की कला में निपुण होना। जिसे यह कला आती है, वह चाहे चन्द्रमुखी न हो; फिर भी पुरुष का हृदय छीन सकती है। सौंदर्य स्वयं कुछ नहीं कर सकता, उसी तरह जैसे कोई सिपाही शस्त्रों से कुछ नहीं कर सकता, जब तक वह उन्हें चलाना न जानता हो। चतुर खिलाड़ी एक बांस की छड़ी से वह काम कर सकता है, जो दूसरे संगीन और बंदूक से भी नहीं कर सकते। मान ले, मैं तेरा प्रेमी हूं। बता, मेरी ओर कैसे ताकेगी?

मनोरमा ने लज्जा से सिर झुका लिया। उसे रानी की रसिकता पर कुतूहल हो रहा था। वह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कितनी ही बार यहां आई थी; पर रानी को कभी इतना मदमत्त न पाया था।

रानी ने उसकी ठुड्डी पकड़कर मुंह उठा दिया और बोली—पगली, इस भांति सिर झुकाने से क्या होगा ! पुरुष समझेगा, यह कुछ जानती ही नहीं। अच्छा, समझ ले कि तू पुरुष है; देख, मैं तेरी ओर कैसे ताकती हूं। सिर उठाकर मेरी ओर देख। कहती हूं सिर उठा, नहीं तो मैं चुटकी काट लूंगी। हां, इस तरह।

यह कहकर रानी ने मनोरमा को भ्रकुटि-विलास और लोचन-कटाक्ष का ऐसा कौशल दिखाया कि मनोरमा का अज्ञात मन भी एक क्षण के लिए चंचल हो उठा। कटाक्ष में कितनी उत्तेजक शक्ति है, इसका कुछ अनुमान हो गया।

रानी—तुझे कुछ मालूम हुआ?

मनोरमा—मुझे तो तीर-सा लगा। आप मोहिनी मंत्र जानती होंगी।

रानी—तू युवक होती, तो इस समय छाती पर हाथ धरे आहतों की भांति खड़ी होती; यह तो कटाक्ष हुआ। आ, अब तुझे बताऊं कि आंखों से प्रेम की बातें कैसे की जाती हैं। मेरी ओर देख !

यह कहते-कहते रानी को फिर शिथिलता का अनुभव हुआ। 'सुधाविंदु' का प्रकाश मंद होने लगा। विकल होकर पूछा—क्यों री, देख तो मेरा मुख कुछ उतरा जाता है?

मनोरमा ने चौंककर कहा—आपको यह क्या हो गया? मुख बिल्कुल पीला पड़ गया है। क्या आप बीमार हैं?

रानी—हां बेटी, बीमार हूं। राजकुमार अब भी नहीं आए? तू जाकर गुजराती से 'सुधाविंदु' की शीशी और प्याला मांग ला। जल्द आना, नहीं तो मैं गिर पडूंगी !

मनोरमा दवा लाने गई, तो राजकुमार इन्द्रविक्रम को मोटर से उतरते देखा। कोई तीस वर्ष की अवस्था थी। मुख से संयम, तेज और संकल्प झलक रहा था। ऊंचा कद था, गोरा रंग, चौड़ी छाती, ऊंचा मस्तक, आंखों में इतनी चमक और तेजी थी कि हृदय में चुभ जाती थी। वह केवल एक पीले रंग का रेशमी कुर्ता पहने हुए थे और गले में सफेद चादर डाल ली थी। मनोरमा ने किसी देव ऋषि का एक चित्र देखा था। मालूम होता था, इन्हीं को देखकर वह चित्र खींचा गया था।

उनके मोटर से उतरते ही चपरासी ने सलाम किया और लाकर दीवानखाने में बैठा दिया। इधर मनोरमा ने गुजराती से शीशी ली और जाकर रानी से यह समाचार कहा। रानी चबूतरे पर लेटी हुई थीं। सुनते ही उठ बैठीं और मनोरमा के हाथ से शीशी ले, प्याली में बिना गिने कई बूंद निकाल, पी गईं।

दवा ने जाते ही अपना असर दिखाया। रानी के मुखमंडल पर फिर वही मनोरम छवि, अंगों में फिर वही चपलता, वाणी में फिर वही सरसता, आंखों में फिर वही मधुर हास्य, कपोलों पर वही अरुण ज्योति शोभा देने लगी। वह उठकर झूले पर जा बैठीं। झूला धीरे-धीरे झूलने लगा। रानी का अंचल हवा से उड़ने लगा और केश बिखर गए। यही मोहिनी छवि वह राजकुमार को दिखाना चाहती थीं।

एक क्षण में राजकुमार ने झूलाघर में प्रवेश किया। रानी झूले से उतरना ही चाहती थीं कि वह उनके पास आ गए और बोले—क्या मधुर कल्पना स्वप्न-साम्राज्य में विहार कर रही हैं?

रानी—जी नहीं, प्रतीक्षा नैराश्य की गोद में विश्राम कर रही है। इतनी देर क्यों राह दिखाई?

राजकुमार—मेरा अपराध नहीं। मैं आ ही रहा था कि विश्वविद्यालय के कई छात्र आ पहुंचे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और मुझे एक गंभीर विषय पर व्याख्यान देने के लिए घसीट ले गए। बहुत हीले-हवाले किए, लेकिन उन सबों ने एक न सुनी।

रानी—मैं तो आपसे शिकायत कब करती हूं? आप आ गए, यही क्या कम अनुग्रह है? न आते तो मैं क्या कर लेती? लेकिन इसका प्रायश्चित करना पड़ेगा, याद रखिए। आज रात भर कैद रखूंगी।

राजकुमार—अगर प्रेम के कारावास में प्रायश्चित है, तो मैं उसमें जीवन पर्यंत रहने को तैयार हूं।

रानी—आप बातें बनाने में निपुण मालूम होते हैं। इन निर्दयी केशों को जरा संभाल दीजिए, बार-बार मुख पर आ जाते हैं।

राजकुमार—मेरे कठोर हाथ उन्हें स्पर्श करने योग्य नहीं हैं।

रानी ने कनखियों से—मर्मभेदी कनखियों से—राजकुमार को देखा। यह असाधारण जवाब था। उन कोमल, सुगंधित, लहराते हुए केशों के स्पर्श का अवसर पाकर ऐसा कौन था, जो अपना धन्य भाग न समझता ! रानी दिल में कटकर रह गईं। उन्होंने पुरुष को सदैव विलास की एक वस्तु समझा था। प्रेम से उनका हृदय कभी आंदोलित न हुआ था। वह लालसा ही को प्रेम समझती थीं। उस प्रेम से, जिसमें त्याग और भक्ति है, वह वंचित थीं, लेकिन इस समय उन्हें इसी प्रेम का अनुभव हो रहा था। उन्होंने दिल को बहुत संभालकर राजकुमार से इतनी बातें की थीं। उनका अंत:करण उन्हें राजकुमार से यह वासनामय व्यवहार करने पर धिक्कार रहा था। राजकुमार का देव स्वरूप ही उनकी वासना-वृत्ति को लज्जित कर रहा था। सिर नीचा करके कहा—यदि हाथों की भांति हृदय भी कठोर है, तो वहां प्रेम का प्रवेश कैसे होगा?

राजकुमार—बिना प्रेम के तो कोई उपासक देवी के सम्मुख नहीं जाता। प्यास के बिना भी आपने किसी को सागर की ओर जाते देखा है?

रानी अब झूले पर न रह सकीं। इन शब्दों में निर्मल प्रेम झलक रहा था। जीवन में यह पहला ही अवसर था कि देवप्रिया के कानों में ऐसे सच्चे अनुराग में डूबे हुए शब्द पड़े। उन्हें ऐसा मालूम हो रहा था कि इनकी आंखें मेरे मर्मस्थल में चुभी जा रही हैं। वह उन तीव्र नेत्रों से बचना चाहती थीं। झूले से उतरकर रानी ने अपने केश समेट लिए और घूंघट से माथा छिपाती हुई बोलीं—श्रद्धा देवताओं को भी खींच लाती है। भक्त के पास सागर भी उमड़ता चला आता है।

यह कहकर वह हौज के किनारे जा बैठीं और फौवारे को घुमाकर खोला, तो राजकुमार पर गुलाब जल की फुहारें पड़ने लगीं। उन्होंने मुस्कराकर कहा—गुलाब से सिंचा हुआ पौधा लू के झोंके न सह सकेगा। इसका खयाल रखिएगा।

रानी ने प्रेम सजल नेत्रों से ताकते हुए कहा—अभी गुलाब से सींचती हूं, फिर अपने प्राण-जल से सींचूंगी, पर उसका फल खाना मेरे भाग्य में है या नहीं, कौन जाने ! उस वस्तु की आशा कैसे करूं, जिसे मैं जानती हूं कि मेरे लिए दुर्लभ है।

देवप्रिया ने यह कहते-कहते एक लंबी सांस ली और आकाश की ओर देखने लगी। उसके मन में एक शंका हो उठी, क्या यह दुर्लभ वस्तु मुझे मिल सकती है? मेरा यह मुंह कहां?

राजकुमार ने करुण स्वर में कहा—जिस वस्तु को आप दुर्लभ समझ रही हैं, वह आज से बहुत पहले आपको भेंट हो चुकी है। आप मुझे नहीं जानतीं; पर मैं आपको जानता हूं—बहुत दिनों से जानता हूं! अब आपके मुंह से केवल यह सुनना चाहता हूं कि आपने मेरी भेंट स्वीकार कर ली?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रानी –उस रत्न को ग्रहण करने की मुझमें सामर्थ्य नहीं है। आपकी दया के योग्य हूं, प्रेम के योग्य नहीं।

राजकुमार—कोई ऐसा धब्बा नहीं है, जो प्रेम के जल से छूट न जाए।

रानी—समय के चिह्न को कौन मिटा सकता है? हाय ! आपने मेरा असली रूप नहीं देखा। यह मोहिनी छवि, जो आप देख रहे हैं, बहुत दिन हुए, मेरा साथ छोड़ चुकी। अब मैं अपने यौवन-काल का चित्र-मात्र हूं। आप मेरी असली सूरत देखेंगे, तो कदाचित् घृणा से मुंह फेर लेंगे।

यह कहते-कहते रानी को अपनी देह शिथिल होती हुई जान पड़ी। 'सुधाविंदु' का असर मिटने लगा। उनका चेहरा पीला पड़ गया, झुर्रियां दिखाई देने लगीं। उन्होंने लज्जा से मुंह छिपा लिया और यह सोचकर कि शीघ्र ही यह प्रेमाभिनय समाप्त हो जाएगा, वह फूट-फूटकर रोने लगीं। राजकुमार ने धीरे से उनका हाथ पकड़ लिया और प्रेम-मधुर-स्वर में बोले—प्रिये, मैं तुम्हारे इसी रूप पर मुग्ध हूं, उस बने हुए रूप पर नहीं। मैं वह वस्तु चाहता हूं, जो इस पर्दे के पीछे छिपी हुई है। वह बहुत दिनों से मेरी थी; हां, इधर कुछ दिनों से उस पर मेरा अधिकार न था। मेरी तरफ ध्यान से देखो, मुझे पहचानती हो? कभी देखा है?

रानी ने हैरत में आकर राजकुमार के मुंह पर नजर डाली। ऐसा मालूम हुआ, मानो आंखों के सामने से पर्दा हट गया। याद आया, मैंने इन्हें कहीं देखा है। जरूर देखा है। वह सोचने लगीं, मैंने इन्हें कहां देखा है? याद न आया। बोलीं—मैंने आपको कहीं पहले देखा है।

राजकुमार—खूब याद है कि आपने मुझे देखा है? भ्रम तो नहीं हो रहा है?

रानी—नहीं, मैंने आपको अवश्य देखा है। संभव है, कभी रेलगाड़ी में देखा हो; मगर मुझे ऐसा मालूम होता है कि आप और मैं कभी बहुत दिनों एक ही जगह रहे हैं। मुझे तो याद नहीं आता। आप ही बताइए।

राजकुमार—खूब याद कर लिया?

रानी—(सोचकर) हां, कुछ ठीक याद नहीं आता। शायद तब आपकी उम्र कुछ कम थी; मगर थे आप ही।

राजकुमार ने गंभीर भाव से कहा—हां प्रिये, मैं ही था। तुमने मुझे अवश्य देखा है, हम और तुम एक साथ रहे हैं और इसी घर में। यही मेरा घर था। तुम स्त्री थीं मैं पुरुष था। तुम्हें याद है, हम और तुम इसी जगह, हौज के किनारे शाम को बैठा करते थे? अब पहचाना?

देवप्रिया की आंखें फिर राजकुमार की ओर उठीं। आईने की गर्द साफ हो गई। बोलीं—प्राणेश ! तुम्हीं हो इस रूप में?

यह कहते-कहते वह मूर्च्छित हो गईं।

नौ

रानी देवप्रिया का सिर राजकुमार के पैरों पर था और आंखों से आंसू बह रहे थे। उनकी ओर ताकते हुए विचित्र भय हो रहा था। उसे कुछ-कुछ संदेह हो रहा था कि मैं सो तो नहीं रही हूं। कोई मनुष्य

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

माया के दुर्भेद्य अंधकार को चीर र फता है? जीवन और मृत्यु के मध्यवर्ती अपार विस्मृत सागर को पार कर सकता है? जिसमें यह सामर्थ्य हो, वह मनुष्य नहीं, प्रेत योनि का जीव है। विचार आते ही रानी का सारा शरीर कांप उठा, पर इस भय के साथ ही उसके मन में उत्कंठा हो रही थी कि उन्हीं चरणों में लिपटी हुई इसी क्षण प्राण त्याग दूं। राजकुमार उसके पति हैं, इसमें तो संदेह न था, संदेह केवल यह था कि मेरे साथ यह कोई प्रेतलीला तो नहीं कर रहे हैं? वह रह-रहकर छिपी हुई निगाहों से उनके मुख की ओर ताकती थी, मानो निश्चय कर रही हो कि पति ही हैं या मुझे भ्रम हो रहा है।

सहसा राजकुमार ने उसे उठाकर बैठा दिया और उसके मनोभावों को शांत करते हुए बोले--हां प्रिये! मैं तुम्हारा वही चिरसंगी हूं, जो अपनी प्रेमाभिलाषाओं को लिए हुए कुछ दिनों को तुमसे जुदा हो गया था। मुझे तो ऐसा मालूम हो रहा है कि कोई यात्रा करके लौटा आ रहा हूं। जिसे हम मृत्यु कहते हैं, और जिसके भय से संसार कांपता है, वह केवल एक यात्रा है। उस यात्रा में भी मुझे तुम्हारी याद आती रहती थी। विकल होकर आकाश में इधर-उधर दौड़ा करता था। प्राय: सभी प्राणियों की यही दशा थी। कोई अपने संचित धन का अपव्यय देख-देखकर कुढ़ता था, कोई अपने बाल-बच्चों को ठोकरें खाते देखकर रोता था। वे दृश्य इस मृर्त्यलोक के दृश्यों से कहीं करुणाजनक, कहीं दु:खमय थे। कितने ही ऐसे जीव दिखाई दिए, जिनके सामने यहां सम्मान से मस्तक झुकता था, वहां उनका नग्न स्वरूप देखकर उनसे घृणा होती थी। यह कर्मलोक है, वहां भोगलोक; और कर्म का दंड कर्म से कहीं भयंकर होता है। मैं भी उन्हीं अभागों में था। देखता था कि मेरे प्रेम सिंचित उद्यान को भांति-भांति के पशु कुचल रहे हैं, मेरे प्रणय के पवित्र सागर में हिंसक जल-जंतु दौड़ रहे हैं, और देख-देखकर क्रोध से विह्वल हो जाता था। अगर मुझमें वज्र गिराने की सामर्थ्य होती, तो गिराकर उन पशुओं का अंत कर देता। मुझे यही जलन थी। कितने दिनों मेरी यह अवस्था रही, इसका कुछ निश्चय नहीं कर सकता, क्योंकि वहां समय का बोध कराने वाली मात्राएं न थीं; पर मुझे तो ऐसा जान पड़ता था कि इस दशा में पड़े हुए मुझे कई युग बीत गए। रोज नई-नई सूरतें आतीं और पुरानी सूरतें लुप्त होती रहती थीं। सहसा एक दिन मैं लुप्त हो गया। कैसे लुप्त हुआ, यह याद नहीं; पर होश आया, तो मैंने अपने को बालक के रूप में पाया। मैंने राजा हर्षपुर के घर में जन्म लिया था।

इस नए घर में मेरा लालन-पालन होने लगा। ज्यों-ज्यों बढ़ता था स्मृति पर पर्दा-सा पड़ता जाता था। पिछली बातें भूलता जाता था, यहां तक कि जब बोलने की सामर्थ्य हुई, तो माया अपना काम पूरा कर चुकी थी। बहुत दिनों तक अध्यापकों से पढ़ता रहा। मुझे विज्ञान में विशेष रुचि थी। भारतवर्ष में विज्ञान की कोई अच्छी प्रयोगशाला न होने के कारण मुझे यूरोप जाना पड़ा। वहां मैं कई वैज्ञानिक परीक्षाएं करता रहा। जितना ही रहस्यों का ज्ञान बढ़ता था, उतनी ही ज्ञान-पिपासा भी बढ़ती थी; किंतु इन परीक्षाओं का फल मुझे लक्ष्य से दूर लिए जाता था। मैंने सोचा था, विज्ञान द्वारा जीव का तत्त्व निकाल लूंगा; पर सात वर्षों तक अनवरत परिश्रम करने पर भी मनोरथ न पूरा हुआ।

एक दिन मैं बर्लिन की प्रधान प्रयोगशाला में बैठा हुआ यही सोच रहा था कि एक तिब्बती भिक्षु आ निकला। मुझे चिंतित देखकर वह एक क्षण मेरी ओर ताकता रहा फिर बोला -बालू से मोती नहीं निकलते, भौतिक ज्ञान से आत्मा का ज्ञान नहीं प्राप्त होता।

मैंने चकित होकर पूछा—आपको मेरे मन की बात कैसे मालूम हुई?

भिक्षु ने हंसकर कहा—आपके मन की इच्छा तो आपके मुख पर लिखी हुई है। जड़ से चेतन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का ज्ञान नहीं होता। यह क्रिया ही उल्टी है। उन महात्माओं के पास जाओ, जिन्होंने आत्माज्ञान प्राप्त किया है। वही तुम्हें वह मार्ग दिखाएंगे।

मैंने पूछा—ऐसे महात्माओं के दर्शन कहां होंगे? मेरा तो अनुमान है कि वह विद्या ही लोप हो गई और उसके जानने का जो दावा करते हैं, वे बने हुए महात्मा हैं।

भिक्षु—यथार्थ कहते हो; लेकिन अब भी खोजने से ऐसे महात्मा मिल जाएंगे। तिब्बत की तपोभूमि में आज भी ऐसी महान् आत्माएं हैं, जो माया का रहस्य खोल सकती हैं। हां, जिज्ञासा की सच्ची लगन चाहिए।

मेरे मन में बात बैठ गई। तिब्बत की चर्चा बहुत दिनों से सुनता आता था। भिक्षु से वहां की कितनी ही बातें पूछता रहा। अंत में उसी के साथ तिब्बत चलने की ठहरी। मेरे मित्रों को यह बात मालूम हुई तो वे भी मेरे साथ चलने पर तैयार हो गए। हमारी एक समिति बनाई गई, जिसमें दो अंग्रेज, दो फ्रेंच और दो जर्मन थे। अपने साथ नाना प्रकार के यंत्र लेकर हम लोग अपने मिशन पर चले। मार्ग में किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, वहां कैसे पहुंचे, विहारों में क्या-क्या दृश्य देखे, इसकी चर्चा करने लगूं तो कई दिन लग जाएंगे। कई बार तो हम लोग मरते-मरते बचे, लेकिन वहां चित्त को जो शांति मिली, उसके लिए हम मर भी जाते, तो दुःख न होता। अंग्रेजों को तो सफलता न हुई, क्योंकि वे तिब्बत की सैनिक स्थिति का निरीक्षण करने आए थे और भिक्षुओं ने उनकी नीयत भांप ली थी। लेकिन शेष चारों मित्रों ने तो पाली और संस्कृत के ऐसे-ऐसे ग्रंथ खोज निकाले कि उन्हें यहां से ले जाना कठिन हो गया। जर्मन तो ऐसे प्रसन्न थे, मानो उन्हें कोई प्रदेश हाथ आ गया हो।

शरद-ऋतु थी; जलाशय हिम से ढक गए थे। चारों ओर बर्फ दिखाई देती थी। मेरे मित्र लोग तो पहले ही चले गए थे। अकेला मैं ही रह गया था। एक दिन संध्या समय मैं इधर-उधर विचरता हुआ एक शिला पर जाकर खड़ा हो गया। सामने का दृश्य अत्यंत मनोरम था, मानो स्वर्ग का द्वार खुला हुआ है। उसका बखान करना उसका अपमान करना है। मनुष्य की वाणी में न इतनी शक्ति है, न शब्दों में इतना चित्र्य ! इतना ही कह देना काफी है कि वह दृश्य अलौकिक था, स्वर्गोपम था। विशाल दृश्यों के सामने हम मंत्र-मुग्ध-से हो जाते हैं, अवाक् होकर ताकते हैं, कुछ कह नहीं सकते। मौन आश्चर्य की दशा में खड़ा ताक ही रहा था कि सहसा मैंने एक वृद्ध पुरुष को सामने की गुफा से निकलकर पर्वत-शिखर की ओर जाते देखा। जिन शिलाओं पर कल्पना के भी पांव डगमगा जाएं, उन पर वह इतनी सुगमता से चले जाते थे कि विस्मय होता था। बड़े-बड़े दर्रों को इस भांति फांद जाते थे, मानो छोटी-छोटी नालियां हैं। मनुष्य की यह शक्ति कि वह, उस हिम से ढके हुए दुर्गम श्रृंग पर इतनी चपलता से चला जाए ! और मनुष्य भी वह, जिसके सिर के बाल सन की भांति सफेद हो गए थे !

मुझे ख्याल आया कि इतना पुरुषार्थ प्राप्त करना किसी सिद्ध ही का काम है। मेरे मन में उनके दर्शन की तीव्र उत्कण्ठा हुई, पर मेरे लिए ऊपर चढ़ना असाध्य था। वह न जाने फिर कब तक उतरें, कब तक वहां खड़ा रहना पड़े। उधर अंधेरा बढ़ता जाता था। आखिर मैंने निश्चय किया कि आज चलूं, कल से रोज दिन भर यहीं बैठा रहूंगा; कभी न कभी तो दर्शन होंगे ही। मेरा मन कह रहा था कि इन्हीं से तुझे आत्मज्ञान प्राप्त होगा। दूसरे दिन मैं प्रातःकाल वहां आकर बैठ गया और सारे दिन शिखर की ओर टकटकी लगाए देखता रहा; पर चिड़िया का पूत भी न दिखाई दिया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक महीने तक यही मेरा नित्य का नियम रहा ! रात भर विहार में पड़ा रहता, दिनभर शिला पर बैठा रहता। पर महात्माजी न जाने कहां गायब हो गए थे। उनकी झलक तक न दिखाई देती थी। मैंने कई बार ऊपर चढ़ने का प्रयत्न किया, पर सौ गज से आगे न जा सका। कील-कांटे ठोंकते, शिलाओं पर रास्ता बनाते कई महीनों में शिखर पर पहुंचना संभव था; पर यह अकेले आदमी का काम न था, अन्य भिक्षुओं से पूछता तो हंसकर कहते—उनके दर्शन हमें दुर्लभ हैं, तुम्हें क्या होंगे? बरसों में कभी एक बार दिखाई दे जाते हैं। कहां रहते हैं, कोई नहीं जानता; किंतु अधीर न होना। वह यदि तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हो गए, तो तुम्हारी मनोकामना पूरी हो जाएगी। यह भी सुनने में आया कि कई भिक्षु उनके दर्शनों की चेष्टा में प्राणों से हाथ धो बैठे हैं। उनमें इतना विद्युत्तेज है कि साधारण मनुष्य उनके सम्मुख खड़ा ही नहीं हो सकता। उनकी नेत्रज्योति बिजली की तरह हृत्स्थल में लगती है। जिसने यह आघात सह लिया, उसकी तो कुशल है; जो नहीं सह सकता, वह वहीं खड़ा-खड़ा भस्म हो जाता है। कोई योगी ही उनसे साक्षात् कर सकता है।

यह बातें सुन-सुनकर मेरी भक्ति और भी दृढ़ होती चली जाती थी। मरूं या जिऊं; पर उनके दर्शन अवश्य करूंगा, यह धारणा मन में जम गई। योगी की क्रियाएं तो पहले ही करने लगा था, इसलिए मुझे विश्वास था कि मैं उनके तेज का सामना कर सकता हूं। दिव्यज्ञान प्राप्त करने के प्रयत्न में मर जाना भी श्रेय की बात होगी। क्या था, क्या हूंगा? कहां से मैं आया हूं, कहां जाऊंगा? इन प्रश्नों का उत्तर किसी ने आज तक न दिया और न दे सकता है। वह तो अपने अनुभव की बात है। हम उसका अनुभव ही कर सकते हैं, किसी को बता नहीं सकते। इस महान उद्योग में मर जाना भी मनुष्य के लिए गौरव की बात है।

एक वर्ष गुजर गया और महात्माजी के दर्शन न हुए। न जाने कहां जाकर अंतर्धान हो गए। वहां से न किसी को पत्र लिख सकता था, न संसार की कुछ खबर मिलती थी। कभी-कभी जी ऐसा घबराता था कि चलकर अन्य सांसारिक प्राणियों की भांति जीवन का सुख भोगूं। इसमें रखा ही क्या है कि मैं क्या था और क्या हूंगा। पहले तो यही निश्चित नहीं कि मुझे यह ज्ञान प्राप्त भी होगा और हो भी गया, तो उससे मेरा या संसार का क्या उपकार होगा। बिना इन रहस्यों के जाने भी जीवन को उच्च्व और पवित्र बनाया जा सकता है। वहां की सुरम्यता अजीर्ण हो गई, वह कमनीय प्राकृतिक छटा आंखों में खटकने लगी। विवश होकर स्वर्ग में भी रहना पड़े तो वह नरक-तुल्य हो जाए।

अंत में एक दिन मैंने निश्चय किया कि अव जो होना हो सो हो; इस पर्वत-शृंग पर अवश्य चढूंगा। यह निश्चय करके मैंने चढ़ना शुरू किया; लेकिन दिन गुजर गया और मैं सौ गज से आगे न जा सका। मेरी चढ़ाई उन विज्ञान के खोजियों की-सी न थी, जो सभी साधनों से लैस होते हैं। मैं अकेला था; न कोई यंत्र, न मंत्र, न कोई रक्षक, न प्रदर्शक; भोजन का भी ठिकाना नहीं, प्राणों पर खेलना था। करता क्या ! ज्ञान के मार्ग में यंत्रों का जिक्र ही क्या ! आत्मसमर्पण तो उसकी पहली क्रिया है। जानता था कि मर जाऊंगा; किंतु पड़े-पड़े मरने से उद्योग करते हुए मरना अच्छा था।

पहली रात मैंने एक चट्टान पर बैठकर काटी। बार-बार झपकियां आती थीं; पर चौंक-चौंक पड़ता था। जरा चूका और रसातल पहुंचा। इतनी कुशल थी कि गर्मी के दिन आ गए थे। हिम का गिरना बंद था; पर जहां इतना आराम था, वहां पिघली हुई हिम-शिलाओं के गिरने से क्षणमात्र में जीवन से हाथ धोने की शंका भी थी। वह भयंकर निशा, यह भयंकर जंतुओं की गरज और तड़प याद करता हूं, तो आज भी रोमांच हो जाता है। बार-बार पूर्व दिशा की ओर ताकता था; पर निर्दयी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सूर्य उदय होने का नाम न लेता था। खैर, किसी तरह रात कटी, सबेरे फिर चला। आज की चढ़ाई इतनी सीधी न थी, और पचास गज से आगे न जा सका। रास्ते में एक दर्रा पड़ गया, जिसे पार करना असंभव था। इधर-उधर बहुत निगाह दौड़ाई; पर ऐसा कोई उतार न दिखाई दिया, जहां से उतरकर दर्रे को पार कर सकता। इधर भी सीधी दीवार थी, उधर भी। संयोग से एक जगह दोनों ओर दो छोटे-छोटे वृक्ष दिखाई दिए। मेरी जेब में पतली रस्सी का एक टुकड़ा पड़ा हुआ था। अगर किसी तरह इस रस्सी को दोनों वृक्षों में बांध सकूं तो समस्या हल हो जाय, लेकिन उस पार रस्सी को पेड़ में कौन बांधे? आखिर मैंने रस्सी के एक सिरे में पत्थर का एक भारी टुकड़ा खूब कसकर बांधा और उसको लंगर की भांति उस पारवाले वृक्ष पर फेंकने लगा कि किसी डाल में फंस जाय, तो पार हो जाऊं। बार-बार पूरा जोर लगाकर लंगर फेंकता था; पर लंगर वहां तक न पहुंचता था। सारा दिन इसी लंगरबाजी में कट गया, रात आ गई। शिलाओं पर सोना जान-जोखिम था। इसलिए वह रात मैंने वृक्ष ही पर काटने की ठानी। मैं उस पर चढ़ गया और दो डालों में रस्सी फंसा-फंसाकर एक छोटी-सी खाट बना ली। आधी रात गुजरी थी कि बड़े जोर से धमाका हुआ। उस अथाह खोह में कई मिनट तक उसकी आवाज गूंजती रही। सबेरे देखा तो बर्फ की एक बड़ी शिला ऊपर से पिघलकर गिर पड़ी थी और उस दर्रे पर उसका एक पुल-सा बन गया था। मैं खुशी के मारे फूला न समाया। जो मेरे किए कभी न हो सकता था, वह प्रकृति ने अपने आप ही कर दिया। यद्यपि उस पुल पर से दर्रे को पार करना प्राणों से खेलना था—मृत्यु के मुख में पांव रखना था; पर दूसरा कोई उपाय न था। मैंने ईश्वर को स्मरण किया और संभल-संभलकर उस हिम राशि पर पांव रखता हुआ खाई को पार कर गया। इस असाध्य साधना में सफल होने से मेरे मन में यह धारणा होने लगी कि मर नहीं सकता। कोई अज्ञात शक्ति मेरी रक्षा कर रही है। किसी कठिन कार्य में सफल हो जाना आत्मविश्वास के लिए संजीवनी के समान है। मुझे पक्का विश्वास हो गया कि मेरा मनोरथ अवश्य पूरा होगा।

उस पार पहुंचते ही सीधी चट्टान मिली। दर्रे के किनारे और चट्टान में केवल एक बालिश्त, और कहीं-कहीं एक हाथ का अंतर था। उस पतले रास्ते पर चलना तलवार की धार पर पैर रखना था। चट्टान से चिमट-चिमटकर चलता हुआ, दो-तीन घंटों के बाद मैं एक ऐसे स्थान पर जा पहुंचा, जहां चट्टान की तेजी बहुत कम हो गई थी। मैं लेटकर ऊपर को रेंगने लगा। संभव था, मैं संध्या तक इस तरह रेंगता रहता, पर संयोग से एक समतल शिला मिल गई और उसे देखते ही मुझे जोर की थकान मालूम होने लगी। जानता था कि यहां सोकर फिर उठने की नौबत न आएगी, पर जरा-से लेट जाने के लोभ को मैं किसी तरह संवरण न कर सका। नींद को दूर रखने के लिए एक गीत गाने लगा। लेकिन न जाने कब आंखें झपक गईं।

कह नहीं सकता कि कितनी देर तक सोया, जब नींद खुली और चाहा कि उठूं, तो ऐसा मालूम हुआ कि ऊपर मानो बोझ रखा हुआ था। सब अंग जकड़े हुए थे। कितना ही जोर मारता था, पर अपनी जगह से हिल न सकता था, चेतना किसी डूबते हुए नक्षत्र की भांति डूबती जाती थी। समझ गया कि जीवन से इतने दिनों तक का साथ था। पूर्व स्मृतियां चेतना की अंतिम जागृति की भांति जागृत हो गईं। अपनी मूर्खता पर पछताने लगा। व्यर्थ प्राण खोए। इतना जानने ही से तो उद्धार न होगा कि मैं पूर्वजन्म में क्या था। यह ज्ञान न रखते हुए भी संसार में एक से एक ज्ञानी, एक से एक प्रणवीर, एक से एक धर्मात्मा हो गए। क्या उनका जीवन सार्थक हुआ? यही सोचते-सोचते न जाने कब मेरी चेतना का अपहरण हो गया। जब मेरी आंख खुली तो देखा कि एक छोटी-सी कुटी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में मृगचर्म पर कंबल ओढ़े पड़ा हुआ हूं और एक पुरुष बैठा मेरे मुख की ओर वात्सल्य-दृष्टि से देख रहा है। मैंने इन्हें पहचान लिया। यह वही महात्मा थे, जिनके दर्शनों के लिए मैं लालायित हो रहा था। मुझे आंखें खोलते देखकर वह सदय भाव से मुस्कराए और बोले—हिम-शय्या कितनी प्रिय वस्तु है! पुष्प-शय्या पर तुम्हें कभी इतना सुख मिला था?

मैं उठ बैठा और महात्मा के चरणों पर सिर रखकर बोला—आपके दर्शनों से जीवन सफल हो गया। आपकी दया न होती, तो शायद वहीं मेरा अंत हो जाता।

महात्मा—अंत कभी किसी का नहीं होता। जीव अनंत है। हां, अज्ञानवश हम ऐसा समझ लेते हैं।

मैं—मुझे आपके दर्शनों की बड़ी इच्छा थी। आपमें अमानुषीय शक्ति है।

महात्मा—इसीलिए ऐसा समझते हो कि तुमने मुझे शिलाओं पर चढ़ते देखा है? यह तो अमानुषीय शक्ति नहीं है। यह तो साधारण मनुष्य भी अभ्यास से कर सकता है।

मैं—आपने योग द्वारा ही यह बल प्राप्त किया होगा!

महात्मा—नहीं, मैं योगी नहीं; प्रयोगी हूं। आपने डारविन का नाम सुना होगा। पूर्व जन्म में मेरा ही नाम डारविन था।

मैंने विस्मित होकर कहा—आप ही डारविन थे?

महात्मा—हां, उन दिनों मैं प्राणिशास्त्र का प्रेमी था। अब प्राणशास्त्र का खोजी हूं।

सहसा मुझे अपनी देह में एक अद्भुत शक्ति का संचालन होता हुआ मालूम हुआ। नाड़ी की गति तीव्र हो गई, आंखों से ज्योति की रेखाएं-सी निकलने लगीं। वाणी में ऐसा विकास हुआ, मानो कोई कली खिल गई हो। मैं फुर्ती से उठ बैठा और महात्माजी के चरणों पर झुकने लगा; किंतु उन्होंने मुझे रोककर कहा—तुम मुझे शिलाओं पर चलते देख विस्मित हो गए, पर वह समय आ रहा है, जब आने वाली जाति जल, स्थल और आकाश में समान रीति से चल सकेगी। यह मेरा विश्वास है। पृथ्वी का क्षेत्र उन्हें छोटा मालूम होगा। वह पृथ्वी से अन्य पिंडों में उतनी सुगमता से आ-जा सकेंगे, जैसे एक देश से दूसरे देश में।

मैं—आपको अपने पूर्व जन्म का ज्ञान योग द्वारा ही हुआ होगा?

महात्मा—नहीं, मैं पहले ही कह चुका कि मैं योगी नहीं, प्रयोगी हूं। तुमने तो विज्ञान पढ़ा है, क्या तुम्हें मालूम नहीं कि सम्पूर्ण ब्रह्मांड विद्युत का अपार सागर है। जब हम विज्ञान द्वारा मन के गुप्त रहस्य जान सकते हैं, तो क्या अपने पूर्व संस्कार न जान सकेंगे? केवल स्मृति को जगा देने ही से पूर्व जन्म का ज्ञान हो जाता है।

मैं—मुझे भी वह ज्ञान प्राप्त हो सकता है?

महात्मा—मुझे हो सकता है, तो आपको क्यों न हो सकेगा! अभी तो आप थके हुए हैं। कुछ भोजन करके स्वस्थ हो जाइए, तो मैं आपको अपनी प्रयोगशाला की सैर कराऊं।

मैं—क्या आपकी प्रयोगशाला भी यहीं है?

महात्मा—हां, इसी कमरे से मिली हुई है। आप क्या भोजन करना चाहते हैं?

मैं—उसके लिए आप कोई चिंता न करें। आपका जूठन मैं भी खा लूंगा।

महात्मा—(हंसकर) अभी नहीं खा सकते। अभी तुम्हारी पाचन-शक्ति इतनी बलवान नहीं है। तुम जिन पदार्थों को खाद्य समझते हो, उन्हें मैंने बरसों से नहीं खाया। मेरे लिए उदर को स्थूल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वस्तुओं से भरना वैसा ही अवैज्ञानिक है, जैसे इन वायुयान के दिनों में बैलगाड़ी पर चलना। भोजन का उद्देश्य केवल संचालन शक्ति को उत्पन्न करना है। जब वह शक्ति हमें भोजन करने की अपेक्षा कहीं आसानी से मिल सकती है तो उदर को क्यों अनावश्यक वस्तुओं से भरें? वास्तव में आने वाली जाति उदरविहीन होगी।

यह कहकर उन्होंने मुझे थोड़े से फल खिलाए, जिनका स्वाद आज तक याद करता हूं। भोजन करते ही मेरी आंखें खुल-सी गईं। ऐसे फल न जाने किस बाग में पैदा होते होंगे। यहां की विद्युत्मय वायु ने पहले ही आश्चर्यजनक स्फूर्ति उत्पन्न कर दी थी। यह भोजन करके तो मुझे ऐसा मालूम होने लगा कि मैं आकाश में उड़ सकता हूं! वह चढ़ाई, जिसे मैं असाध्य समझ रहा था, अब तुच्छ मालूम होती थी।

अब महात्माजी मुझे अपनी प्रयोगशाला की सैर कराने चले। यह एक विशाल गुफा थी, जिसके विस्तार का अनुमान करना कठिन था। उसकी चौड़ाई पांच सौ हाथ से कम न रही होगी। लंबाई उसकी चौगुनी थी। ऊंची इतनी कि हमारे ऊंचे-ऊंचे मीनार भी उसके पेट में समा सकते थे। बौद्ध मूर्तिकारों की अद्‌भुत चित्रकला यहां भी विद्यमान थी। यह पुराने समय का कोई विहार था। महात्माजी ने उसे प्रयोगशाला बना लिया था।

प्रयोगशाला में कदम रखते ही मैं एक दूसरी ही दुनिया में पहुंच गया। जेनेवा नगर आंखों के सामने था और एक भवन में राष्ट्रों के मंत्री बैठे हुए किसी राजनीतिक विषय पर बहस कर रहे थे। उनकी आंखों के इशारे, ओठों का हिलना और हाथों का उठना साफ दिखाई देता था। उनके मुख से निकला हुआ एक-एक शब्द साफ-साफ कानों में आता था। एक क्षण के लिए मैं धोखे में आ गया कि जेनेवा ही में बैठा हूं। जरा और आगे बढ़ा तो संगीत की ध्वनि कानों में आई। मैंने यूरप में यह आवाज सुनी थी। पहचान गया, पैड्रोस्की की आवाज थी। मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। जिन आविष्कारों का बड़े-बड़े विद्वानों को आभास मात्र था, वे सब यहां अपने समुन्नत, पूर्ण रूप में दिखाई दे रहे थे। इस निर्जन स्थान में, आबादी से कोसों दूर, इतनी ऊंचाई पर कैसे इन प्रयोगों में सफलता हुई, ईश्वर ही जान सकते हैं। महात्मा लोग तो योग की क्रियाओं ही में कुशल होते हैं। अध्यात्म उनका क्षेत्र है। विज्ञान पर उन्होंने कैसे आधिपत्य जमाया !

महात्माजी मेरी ओर देखकर मुस्कराए और बोले—विज्ञान अंतःकरण को भी गुप्त नहीं छोड़ता। तुम्हें इन बातों से आश्चर्य हो रहा है, पर यथार्थ यह है कि विज्ञान ने योग को बहुत सरल कर दिया है। वह बहिर्जगत् से अब धीरे-धीरे अंतर्जगत् में प्रवेश कर रहा है। मनोयोग की जटिल क्रियाओं द्वारा जो सिद्धि बरसों में प्राप्त होती थी, वह अब क्षणों में हो जाती है। कदाचित् वह समय दूर नहीं कि हम विज्ञान द्वारा मोक्ष भी प्राप्त कर सकेंगे।

मैंने पूछा—क्या पूर्व समय का ज्ञान भी किसी प्रयोग द्वारा हो सकता है?

महात्मा—हो सकता है; लेकिन उससे किसी उपकार की आशा नहीं। विज्ञान अगर प्राणियों का उपकार न करे, तो उसका मिट जाना ही अच्छा। केवल जिज्ञासा को शांत करने, विलास में योग देने, या यथार्थ की सहायता करने के लिए योग करना उसका दुरुपयोग करना है। मैं चाहूं तो अभी एक क्षण में यूरप के बड़े-से-बड़े नगर को नष्ट-भ्रष्ट कर दूं, लेकिन विज्ञान प्राण-रक्षा के लिए है, वध करने के लिए नहीं।

मुझे निराशा तो हुई, पर आग्रह न कर सका। शाम तक प्रयोगशाला के यंत्रों को देखता रहा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किंतु उनमें अब मन न लगता था। यही धुन सवार थी कि क्योंकर यह दुस्तर कार्य सिद्ध करूं। आखिर उन्हें किसी तरह पसीजते न देखकर मैंने उसी, हिकमत से काम लिया, जो निरुपायों का आधार है। बोला--भगवन्, आपने वह सब कर दिखाया जिसका संसार के विज्ञानवेत्ता अभी केवल स्वप्न देख रहे हैं।

महात्माजी पर इन शब्दों का वही असर पड़ा, जो मैं चाहता था। यद्यपि मैंने यथार्थ ही कहा था, लेकिन कभी-कभी यथार्थ भी खुशामद का काम कर जाता है। प्रसन्न होकर बोले—मैं गर्व तो नहीं करता; पर ऐसी प्रयोगशाला संसार में दूसरी नहीं है।

मैं—यूरपवालों को खबर मिल जाय, तो आपको आराम से बैंठना मुश्किल हो जाय।

महात्मा—मैंने कितनी ही नई-नई बातें खोज निकालीं, पर उनका गौरव आज दूसरों को प्राप्त है। लेकिन इसकी क्या चिंता ! मैं विज्ञान का उपासक हूं, अपनी ख्याति और गौरव का नहीं।

मैं—आपने इस देश का मुख उज्ज्वल कर दिया।

महात्मा—मेरा यान आकाश में जितनी ऊंचाई तक पहुंच सकता है, उसकी यूरपवाले कल्पना भी नहीं कर सकते। मुझे विश्वास है कि शीघ्र ही मेरी चन्द्रलोक की यात्रा सफल होगी। यूरप के वैज्ञानिकों की तैयारियां देख-देखकर मुझे हंसी आती है। जब तक हमको वहां की प्राकृतिक स्थिति का ज्ञान न हो, हमारी यात्रा सफल नहीं हो सकती। सबसे पहले विचारधाराओं को वहां ले जाना होगा। विद्वान् लोग भी कभी-कभी बालकों की-सी कल्पनाएं करने लगते हैं।

मैं—वह दिन हमारे लिए सौभाग्य और गर्व का होगा।

महात्मा—प्राचीन काल में ऋषिगण योग-बल से त्रिकाल-दृष्टि प्राप्त किया करते थे। पर उसमें बहुधा भ्रम हो जाता था। उसकी सहायता का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण न होता था। मैंने वैज्ञानिक परीक्षाओं से उस कार्य को सिद्ध किया है। प्रण तो मैंने यही किया था कि किसी को यह रहस्य न बताऊंगा, लेकिन तुम्हारी तपस्या देखकर दया आ रही है ! मेरे साथ आओ।

मैं महात्माजी के पीछे-पीछे एक ऐसी गुफा में पहुंचा, जहां केवल एक छोटी-सी चौकी रखी हुई थी। महात्माजी ने गंभीर मुख से कहा—तुम्हें यह बात गुप्त रखनी होगी।

मैंने कहा—जैसी आज्ञा।

महात्मा—तुम इसका वचन देते हो?

मैं—आप इसकी किंचित् मात्र भी चिंता न करें।

महात्मा—अगर किसी यश और धन के इच्छुक को यह खबर मिल गई, तो वह संसार में एक महान् क्रांति उपस्थित कर देगा और कदाचित् मुझे प्राणों से हाथ धोना पड़े। मैं मर जाऊंगा, किंतु इस गुप्त ज्ञान का प्रचार न करूंगा। तुम इस चौकी पर लेट जाओ और आंखें बंद कर लो।

चौकी पर लेटते ही मेरी आंखें झपक गईं और पूर्व जन्म के दृश्य आंखों के सामने आ गए। हां प्रिये, मेरा अतीत जीवित हो गया। यही भवन था; यही माता-पिता थे, जिनकी तसवीरें दीवानखाने में लगी हुई हैं। मैं लड़कों के साथ बाग में गेंद खेल रहा था। फिर दूसरा दृश्य सामने आया। मैं गुरु की सेवा में बैठा हुआ पढ़ रहा था। यह वही गुरुजी थे, जिनकी तसवीर तुम्हारे कमरे में है, एक तिल का भी अंतर नहीं है। इसके बाद युवावस्था का दृश्य आया। मैं तुम्हारे साथ एक नौका पर बैठा हुआ नदी में जल-क्रीड़ा कर रहा था। याद है वह दृश्य, जब हवा वेग से चलने लगी थी और तुम डर कर मेरे हृदय से चिपट गई थीं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देवप्रिया—खूब याद है, प्राणेश ! खूब याद है।

राजकुमार—वह दृश्य याद है, जब मैं लता-कुंज में घास पर बैठा हुआ तुम्हें पुष्पाभूषणों से अलंकृत कर रहा था?

देवप्रिया—हां प्राणनाथ ! खूब याद है। यही तो स्थान है।

राजकुमार—पांचवां दृश्य वह था, जब मैं मृत्यु-शय्या पर पड़ा हुआ था। माता-पिता सिरहाने खड़े थे और तुम मेरे पैरों पर सिर रखे रो रही थीं ! याद है?

देवप्रिया—हाय प्राणनाथ ! वह दिन भूल सकती हूं?

राजकुमार—एक क्षण में मेरी आंखें खुल गईं। पर जो कुछ देखा था, वह सब आंखों में फिर रहा था, मानो बचपन की बातें हों। मैंने महात्मा से पूछा—मेरे माता-पिता जीवित हैं? उन्होंने एक क्षण आंखें बंद करके सोचने के बाद कहा—उनका देहावसान हो गया है। तुम्हारे शोक में दोनों घुल-घुलकर मर गए।

मैं—और मेरी स्त्री?

महात्मा—वह अभी जीवित है।

मैं—किस नगर में है?

महात्मा—काशी के समीप जगदीशपुर में। किंतु तुम्हारा वहां जाना उचित नहीं, यह ईश्वरी इच्छा के विरुद्ध होगा और संस्कारों के क्रम को पलटना अनिष्ट का मूल है।

मैंने उस समय तो कुछ न कहा, पर उसी क्षण मैंने तुमसे मिलने का दृढ़ संकल्प कर लिया। मुझे अब वहां एक-एक क्षण एक-एक युग हो गया। दो दिन तो मैं किसी तरह रहा, तीसरे दिन मैंने महात्माजी से विदा होकर प्रस्थान कर दिया। महात्माजी बड़े प्रेम से मुझसे गले मिले और चलते-चलते ऐसी क्रिया बतलाई, जिसके द्वारा हम अपनी आयु और बल को इच्छानुसार बढ़ा सकते हैं। तब मुझे गले से लगाकर एक यान पर बैठा दिया। यान मुझे हरिद्वार पहुंचाकर आप-ही-आप लौट गया। यह उनके यानों की विशेषता है। हरिद्वार से मैं सीधा हर्षपुर पहुंचा और एक सप्ताह तक माता-पिता की सेवा में रहकर यहां आ पहुंचा। तुसमे मिलने के पहले मैं कई बार इधर निकला। यहां की हर एक वस्तु मेरी जानी-पहचानी मालूम होती थी। दो-चार पुराने दोस्त भी दिखलाई दिए; पर उनसे मैं बोला नहीं। एक दिन जगदीशपुर की सैर भी कर आया। ऐसा मालूम होता था कि मेरी बाल्यावस्था वहीं गुजरी हो। तुमसे मिलने के पहले कई दिन गहरी चिंता में पड़ा रहा। एक विचित्र शंका होती थी। अकस्मात् तुमसे पार्क में मुलाकात हो गई। कह नहीं सकता, तुम्हें देखकर मेरे चित्त की क्या दशा हुई। ऐसा जी चाहता था, दौड़कर हृदय से लगा लूं। महात्मा के अंतिम शब्द भूल गए और मैं वहां तुमसे मिल गया।

देवप्रिया ने रोते हुए कहा—प्राणनाथ, आपके दर्शन पाते ही मेरा हृदय गद्गद हो गया। ऐसा मालूम हुआ, मानो आपसे मेरा पुराना परिचय है, मानो मैंने आपको कहीं देखा है। आपने एक दृष्टि में मेरे मन के उन भावों को जागृत कर दिया, जिन्हें मेरी विलासिता ने कुचल-कुचलकर शिथिल कर दिया था। स्वामी ! मैं आपके चरणों को स्पर्श करने योग्य नहीं हूं। लेकिन जब तक जीऊंगी, तब तक आपकी स्मृति को हृदय में संचित रखूंगी।

राजकुमार—प्रिये, तुम्हें मालूम है, विवाह का संबंध देह से नहीं, आत्मा से है। क्या आत्मा अनंत और अमर नहीं?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देवप्रिया ने इसका कोई उत्तर न दिया। प्रश्नसूचक नेत्रों से राजकुमार की ओर ताकने लगी।

राजकुमार—तो अब तुम्हें मेरे साथ चलने में कोई आपत्ति नहीं है?

देवप्रिया ने रुंधे हुए कंठ से कहा—प्राणनाथ, आप मुझसे यह प्रश्न क्यों करते हैं? आप मेरा उद्धार कर रहे हैं, आपको छोड़कर और किसकी शरण जाऊंगी? अब तो मुझे आप मार-मारकर भी भगाएं, तो आपका दामन न छोड़ूंगी। आह स्वामी ! यह शुभ अवसर जीते-जी मिलेगा, इसकी तो स्वप्न में भी आशा न थी। मेरा सौभाग्य सूर्य इतने दिनों के बाद फिर उदय होगा, यह तो कदाचित् मेरे देवताओं को भी न मालूम होगा। न जाने किसके पुण्य-प्रताप से मुझे यह दिन देखना नसीब हुआ है। कौन स्त्री इतनी सौभाग्यवती हुई है? आपको पाकर मैं सब कुछ पा गई। अब मुझे किसी बात की अभिलाषा नहीं रही। आपकी चेरी हूं—वही चेरी, जो एक बार आपके ऊपर अपना सर्वस्व अर्पण कर चुकी है।

राजकुमार ने रानी को कंठ से लगाकर कहा—यह हमारा पुनर्संयोग है !

देवप्रिया—नहीं प्राणनाथ, मैं इसे प्रेम-मिलन समझती हूं।

यह कहते-कहते रानी चुप हो गई। उसे याद आ गया कि मुझ जैसी वृद्धा ऐसे देवरूप पुरुष के योग्य नहीं है। अभी दया के वशीभूत होकर यह मेरा उद्धार कर देंगे, पर दया कब तक प्रेम का पार्ट खेलेगी? संभव है, इनकी दया-दृष्टि मुझ पर सदैव बनी रहे, लेकिन मैं रनिवास की युवतियों को कौन मुंह दिखाऊंगी, जनता के सामने कैसे निकलूंगी? उस दशा में तो दया मेरी रक्षा न कर सकेगी। यह अवस्था तो असह्य हो जाएगी।

राजकुमार ने उसके मनोभावों को ताड़कर कहा—प्रिये, तुम्हारे मन में शंकाओं का उठना स्वाभाविक है, लेकिन उन्हें निकाल डालो। मैं विलास का दास होता. तो तुम्हारे पास आता ही नहीं ! मेरे चित्त की वृत्ति वासना की ओर नहीं है। मैं रूप-सौंदर्य का मूल्य जानता हूं और उनका मुझ पर कोई आकर्षण नहीं हो सकता। मेरे लिए तो तुम इस रूप में भी उतनी ही प्रिय हो। हां, तुम्हारे संतोष के लिए मुझे वह क्रियाएं करनी पड़ेंगी, जो महात्माजी ने चलते-चलते बताई थीं। जिसके द्वारा मैंने मायान्धकार पर विजय पाई, उसके द्वारा काल की गति को भी पलट सकूंगा। मुझे पूरा विश्वास है कि मुरझाया हुआ फूल एक बार फिर हरा हो जाएगा—वही छवि, वही सौरभ, वही कोमलता फिर इसकी बलाएं लेंगी। लेकिन तुम्हें भी मेरे लिए बड़े-बड़े त्याग करने पड़ेंगे। संभव है, तुम्हें राजभवन के बदले किसी वन में वृक्षों के नीचे रहना पड़े, रत्न-जटित आभूषणों के बदले वन्य पुष्पों पर ही संतोष करना पड़े। क्या तुम उन कष्टों को सह सकोगी?

देवप्रिया—आपको पाकर अब मुझे किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं रही। विलास सच्चे सुख की छाया मात्र है। जिसे सच्चा सुख मयस्सर हो, वह विलास की तृष्णा क्यों करे?

रानी मुंह से तो ये बातें कह रही थीं, किंतु इस विचार से उनका चित्त प्रफुल्लित हो रहा था कि मेरा यौवन-पुष्प फिर खिलेगा और सौंदर्य दीपक फिर जलेगा।

राजकुमार—तो अब मैं जा रहा हूं। कल संध्या समय फिर आऊंगा। इसी बीच में तुम यात्रा की तैयारी कर लेना।

देवप्रिया ने राजकुमार का हाथ पकड़कर कहा—मैं आपके साथ चलूंगी। मुझे न जाने कैसी शंकाएं हो रही हैं। मैं अब एक क्षण के लिए भी आपको न छोड़ूंगी।

राजकुमार—यों चलने से लोगों के मन में भांति-भांति की शंकाएं होंगी। मेरे पुनर्जन्म का किसी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को विश्वास न आएगा; लोग समझेंगे कि ऐब को छिपाने के लिए यह कथा गढ़ ली गई है, केवल कुत्सित प्रेम को छिपाने के लिए यह कौशल किया गया है। इसलिए तुम किसी तीर्थयात्रा....

रानी ने दांत काटकर कहा—मुझे अब लोकनिंदा का भय नहीं है। मैं यह कहने को तैयार हूं कि अपने प्राणपति के साथ जा रही हूं।

राजकुमार ने मुस्कराकर कहा—अगर मैं तुमसे दगा करूं, तो?

रानी ने भयातुर होकर कहा—प्राणनाथ, ऐसी बातें न करो। मैं अपने को तुम्हारे चरणों पर अर्पण कर चुकी, लेकिन कुसंस्कारों से मुक्त नहीं हूं। यदि कोई आदमी कभी आकर मुझसे कहे कि इन्द्रजाल का खेल कर रहे हैं, तो मैं नहीं कह सकती कि मेरी क्या दशा होगी। अलौकिक बातों को समझने के लिए अलौकिक बुद्धि चाहिए और मैं इससे वंचित हूं। मैं निष्कपट भाव से अपने मन की दुर्बलताएं प्रकट कर रही हूं। मुझे क्षमा कीजिएगा। अभी बहुत दिन गुजरेंगे, जब मैं इस स्वप्न को यथार्थ समझूंगी। इस स्वप्न को भंग न कीजिए। इस वक्त यहीं आराम कीजिए, रात बहुत बीत गई है। मैं तब तक कुंवर विशालसिंह को सूचना दे दूं कि वह आकर अपना राज्य संभालें। कल मैं प्रातःकाल आपके साथ चलने को तैयार हो जाऊंगी।

यह कहकर रानी ने राजकुमार के लिए भोजन लाने की आज्ञा दी। जब वह भोजन करने लगे, तो आप ही खड़ी होकर उन्हें पंखा झलने लगी ! ऐसा स्वर्गीय आनंद उसे प्राप्त न हुआ था। उसके मर्मस्थल में प्रेम और उल्लास की तरंगें उठ रही थीं; जी चाहता था कि इसी क्षण इनके चरणों पर गिरकर प्राण त्याग दूं।

कुंवर साहब लेटने गए, तो रानी ने विशालसिंह के नाम पत्र लिखा :

'कुंवर विशालसिंहजी,

इतने दिनों तक मायाजाल में फंसे रहने के बाद मेरा चित्त संसार से विरक्त हो गया है। मैं तीर्थयात्रा करने जा रही हूं और शायद फिर न लौटूंगी। किसी तीर्थस्थान में ही अपने जीवन के शेष दिन काटूंगी। आपको उचित है कि आकर अपने राज्य का भार संभालें। मुझे खेद है कि मेरे कारण आपको बड़े-बड़े कष्ट भोगने पड़े। आपने मेरे साथ जो अनीति की, उसे भी मैं क्षमा करती हूं। मायान्ध होकर हम सभी ऐसा करते हैं। मेरी आपसे इतनी ही प्रार्थना है कि मेरी लौंडियों और सेवकों पर दया कीजिएगा। मैं अपने साथ कोई चीज नहीं ले जा रही हूं। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि वह आपको सद्‌बुद्धि दे और आपकी कीर्ति देश-देशांतरों में फैलाए ! मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि मेरे लिए इससे बढ़कर आनंद की और कोई बात न होगी।

आपकी—देवप्रिया'

यह पत्र लिखकर रानी ने मेज पर रखा ही था कि उन्हें खयाल आया, मैं अपना राज्य क्यों छोड़ूं? मैं हर्षपुर से भी तो इसकी देखभाल कर सकती हूं? साल में महीने-दो महीने के लिए यहां आना कौन मुश्किल है? चलकर प्राणनाथ से पूछूं, उन्हें इसमें कोई आपत्ति तो न होगी ! वह राजकुमार के कमरे के द्वार तक गई; पर अंदर कदम न रख सकीं। खयाल आया, समझेंगे अभी तक इसकी तृष्णा बनी हुई है। उल्टे पांव लौट आई।

रात के दो बज गए थे। देवप्रिया यात्रा की तैयारियां कर रही थी। उसके मन में प्रश्न हो रहा था, कौन-कौन-सी चीजें साथ ले जाऊं? पहले वह अपने वस्त्रागार में गई। शीशे की अलमारियों में एक-से-एक अपूर्व वस्त्र चुने हुए रखे थे। इस समूह में से उसने खोजकर अपनी सोहाग की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साड़ी निकाल ली, जिसे पहने आज पच्चीस वर्ष हो गए। आज उसकी शोभा और सभी साड़ियों से बढ़ी हुई थी। उसके सामने सभी कपड़े फीके जंचते थे।

फिर वह अपने आभूषणों की कोठरी में गई। इन आभूषणों पर वह जान देती थी। ये उसे अपने राज्य से भी प्रिय थे। लेकिन इस समय इनको छूते हुए उसे ऐसा भय हो रहा था, मानो चोरी कर रही है। उसने बहुत साहस करके रत्नों का वह संदूकचा निकाला, जिस पर इन पच्चीस ब्ररसों में उसने लाखों रुपये खर्च किए थे और उसे अंचल में छिपाए हुए बाहर निकली। इस लोभ को वह संवरण न कर सकी।

वह अपने कमरे में आकर बैठी ही थी कि गुजराती आकर खड़ी हो गई। देवप्रिया ने पूछा—सोई नहीं?

गुजराती—सरकार नहीं सोईं, तो मैं कैसे सोती?

''मैं तो कल तीर्थयात्रा करने जा रही हूं?''

''मुझे भी साथ ले चलिएगा?''

''नहीं, मैं अकेली जाऊंगी?''

''सरकार लौटेंगी कब तक?''

''कह नहीं सकती। बहुत दिन लगेंगे। बता, तुझे क्या उपहार दूं?''

''मैं तो एक बार मांग चुकी। लूंगी तो वही लूंगी।''

''मैं तुझे नौलखा हार दूंगी।''

''उसकी मुझे इच्छा नहीं।''

''जड़ाऊ कंगन लेगी?''

''जी नहीं!''

''वह रत्न लेगी, जो बड़ी-बड़ी रानियों को भी मयस्सर नहीं?''

''जी नहीं, वह आप ही को शोभा देगा।''

''पागल है क्या! एक रत्न के दाम एक लाख से कम न होंगे!''

''वह आप ही को मुबारक हो!''

रानी ने रत्नों का संदूकचा खोलकर गुजराती के सामने रख दिया और बोली—इनमें से जो चाहे, निकाल ले।

गुजराती ने संदूकचा बंद करके कहा—मुझे इनमें से कोई न चाहिए।

रानी ने एक क्षण सोचने के बाद कहा—अच्छा, जा वही मूर्ति ले ले।

''आप खुशी से दे रही हैं न?''

''हां, खुशी से!''

''भगवान आपका भला करे!''

यह कहकर गुजराती खुश-खुश वहां से चली गई। थोड़ी ही देर के बाद रानी भी रत्नों का संदूकचा लिए हुई उठीं और तोशाखाने में जाकर उसे उस स्थान पर रख दिया, जहां से निकाला था। उनका मन एक क्षण के लिए चंचल हो गया, लेकिन उसे धिक्कारती हुई वह जल्दी से अपने कमरे में चली आईं।

सहसा कोयल की कूक सुनाई दी। रानी ने चौंककर द्वार का पर्दा हटा दिया। उसकी स्निग्ध,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मधुर, संगीतमय आभा किवाड़ों के शीशों द्वारा कमरे में प्रवेश कर रही थी, मानो किसी नवयौवना के हृदय में प्रेम का उदय हो रहा हो। उसी नवयौवना की भांति देवप्रिया उस अरुण छटा को देखकर सशंक हो उठी।

उसी समय राजकुमार द्वार पर आकर खड़े हो गए।

रानी ने कहा—मैं तैयार हूं।

राजकुमार—और मेरा जी चाहता है कि यहीं तुम्हारी उपासना में अपना जीवन व्यतीत करूं। मुझे अपने उद्देश्य में जितनी सफलता हुई, उतनी मुझे आशा न थी। इस देश के सिवा ऐसी देवियां और कहां, जो इस भांति अपने को आदर्श पर बलिदान कर दें?

आध घंटे के बाद राजकुमार भी संध्योपासना करके निकले। मोटर तैयार थी। दोनों आदमी उस पर आ बैठे। जब मोटर चली, तब रानी ने उस भवन को करुण नेत्रों से देखा था और एक ठंडी सांस ली। उसके हृदय की वही दशा हो रही थी, जो किसी नववधू की पति के घर जाते समय होती है। शोक और हर्ष, आशा और दुराशा, ममत्व और विराग का एक विचित्र समावेश हो गया था।

घर के नौकर-चाकर, सिपाही-प्यादे सभी सजल नेत्र खड़े थे और मोटर चली जा रही थी।

दस

मुंशी वज्रधर विशालसिंह के पास से लौटे, तो उनकी तारीफों के पुल बांध दिए। रईस हो तो ऐसा हो। आंखों में कितना शील है ! किसी तरह छोड़ते ही न थे। यों समझो कि लड़कर आया हूं। प्रजा पर तो जान देते हैं। बेगार की चर्चा सुनी, तो उनकी आंखों में आंसू भर गए। उनके जमाने में प्रजा चैन करेगी। यह तारीफ सुनकर चक्रधर को विशालसिंह से श्रद्धा-सी हो गई। उनसे मिलने गए और समिति के संरक्षकों में उनका नाम दर्ज कर लिया। तब से कुंवर साहब समिति की सभाओं में नित्य सम्मिलित होते थे। अतएव अबकी उनके यहां कृष्णाष्टमी का उत्सव हुआ, तब चक्रधर अपने सहवर्गियों के साथ उसमें शरीक हुए।

कुंवर साहब कृष्ण के परम भक्त थे। उनका जन्मोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाते थे। उनकी स्त्रियों में इस विषय में मतभेद था। उनके व्रत भी अलग-अलग थे। तीज के सिवा तीनों कोई एक व्रत न रखती थीं। रोहिणी कृष्ण की उपासिका थी, तो वसुमती रामनवमी का उत्सव मनाती थी, नवरात्रि का व्रत रखती, जमीन पर सोती और दुर्गा पाठ सुनती। रही रामप्रिया, वह कोई व्रत न रखती थी! कहती—इस दिखावे से क्या फायदा? मन शुद्ध चाहिए, यही सबसे बड़ी भक्ति है। जब मन में ईर्ष्या और द्वेष की ज्वाला दहक रही हो, राग और मत्सर की आंधी चल रही हो, तो कोरा व्रत रखने से क्या होगा ! ये उत्सव आपस में प्रीति बढ़ाने के लिए मनाए जाते हैं। जब प्रीति के बदले द्वेष बढ़े, तो उनका न मनाना ही अच्छा !

संध्या हो गई थी। बाहर कंवल, झाड़ आदि जलाए जा रहे थे। चक्रधर अपने मित्रों के साथ बनाव-सजाव में मसरूफ थे। संगीत-समाज के लोग आ पहुंचे थे। गाना शुरू होने ही वाला था कि वसुमती और रोहिणी में तकरार हो गई। वसुमती को यह तैयारियां एक आंख न भाती थीं। उसके

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रामनवमी के उत्सव में सन्नाटा-सा रहता था। विशालसिंह उस उत्सव में उदासीन रहते थे। वसुमती इसे उनका पक्षपात समझती थी। उसके विचार से उनके इस असाधारण उत्साह का कारण कृष्ण की भक्ति नहीं, रोहिणी के प्रति स्नेह था। वह दिल में जल-भुन रही थी। रोहिणी सोलहों श्रृंगार किए पकवान बना रही थी। कदाचित् वसुमती को जलाने ही के लिए आप ही आप गीत गा रही थी। घर के सब बरतन उसी के यहां बिधे हुए थे। उसका यह अनुराग देख-देखकर वसुमती के कलेजे पर सांप-सा लोट रहा था। वह इस रंग में भंग मिलाना चाहती थी। सोचते-सोचते उसे एक बहाना मिल गया। महरी को भेजा, जाकर रोहिणी से कह—घर के बरतन जल्दी से खाली कर दें। दो थालियां, दो बटलोइयां, कटोरे, कटोरियां मांग लो? उनका उत्सव रात भर होगा, तो कोई कब तक बैठा उनकी राह देखता रहेगा? उनके उत्सव के लिए दूसरे क्यों भूखों मरें! महरी गई, तो रोहिणी ने तन्नाकर कहा—आज इतनी जल्दी भूख लग गई। रोज तो आधी रात तक बैठी रहती थीं, आज आठ बजे ही भूख सताने लगी। अगर ऐसी ही जल्दी है, तो कुम्हार के यहां से हांडियां मंगवा लें। पत्तल मैं दे दूंगी।

वसुमती ने यह सुना, तो आग हो गई— हांडियां चढ़ाएं मेरे दुश्मन! जिनकी छाती फटती हो, मैं क्यों हांडी चढ़ाऊं? उत्सव मनाने की बड़ी साध है, तो नए बासन क्यों नहीं मंगवा लेतीं? अपने कृष्ण से कह दें, गाड़ी भर बरतन भेज दें। क्या जबरदस्ती दूसरों को भूखों मारेंगी?

रोहिणी रसोई से बाहर निकलकर बोली—बहन, जरा मुंह संभालकर बातें करो। देवताओं का अपमान करना अच्छा नहीं।

वसुमती—अपमान तो तुम करती हो, व्रत के दिन यों बन-ठनकर इठलाती फिरती हो। देवता रंग-रूप नहीं देखते, भक्ति देखते हैं!

रोहिणी—मैं बनती-ठनती हूं, तो दूसरे की आंखें क्यों फूटती हैं? भगवान के जन्म के दिन भी न बनूं-ठनूं? उत्सव में तो रोया नहीं जाता!

वसुमती—तो और बनो-ठनो, मेरे अंगूठे से। आंखें क्यों फोड़ती हो? आंखें फूट जाएंगी, तो चल्लू भर पानी भी न दोगी!

रोहिणी—आज लड़ने ही पर उतारू हो आई हो क्या? भगवान सब दुःख दें, पर बुरी संगत न दें। लो, यही गहने-कपड़े आंखों में गड़ रहे हैं? न पहनूंगी। जाकर बाहर कह दें, पकवान, प्रसाद किसी हलवाई से बनवा लें। मुझे क्या, मेरे मन का हाल भगवान् आप जानते हैं, पड़ेगी उन पर जिनके कारण यह सब हो रहा है।

यह कहकर रोहिणी अपने कमरे में चली गई। सारे गहने-कपड़े उतार फेंके और मुंह ढांपकर चारपाई पर पड़ रही। ठाकुर साहब ने यह समाचार सुना, तो माथा कूटकर बोले—इन चाण्डालिनों से आज शुभोत्सव के दिन भी शांत नहीं बैठा जाता। इस जिंदगी से तो मौत ही अच्छी है। घर में आकर रोहिणी से बोले—तुम मुंह ढांपकर सो रही हो, या उठकर पकवान बनाती हो?

रोहिणी ने पड़े-पड़े उत्तर दिया—फट पड़े वह सोना जिससे टूटें कान। ऐसे उत्सव से बाज आई, जिसे देखकर घर वालों की छाती फटे।

विशालसिंह—तुमसे तो बार-बार कहा कि उसके मुंह न लगा करो। एक चुप सौ वक्ताओं को हरा सकता है। दो बातें सुन लो, तो तीसरी बात कहने का साहस न हो। फिर तुमसे बड़ी भी तो ठहरीं, यों भी तुमको उनका लिहाज करना ही चाहिए।

जिस दिन वसुमती ने विशालसिंह को व्यंग्य-बाण मारा था, जिसकी कथा हम कह चुके हैं,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसी दिन से उन्होंने उससे बोलना-चालना छोड़ दिया था। उससे कुछ डरने लगे थे, उसके क्रोध की भयंकरता का अंदाजा पा लिया था। किंतु रोहिणी क्यों दबने लगी? यह उपदेश सुना, तो झुंझलाकर बोली—रहने भी दो, जले पर नमक छिड़कते हो। जब बड़ा देख-देखकर जले, बात-बात पर कोसे, तो कोई कहां तक उनका लिहाज करे? उन्हें मेरा रहना जहर लगता है, तो क्या करूं? घर छोड़कर निकल जाऊं? वह इसी पर लगी हुई हैं। तुम्हीं ने उन्हें सिर चढ़ा लिया है। कोई बात होती है, तो मुझी को उपदेश करने दौड़ते हो, सीधा पा लिया है न ! उनसे बोलते हुए तो तुम्हारा भी कलेजा कांपता है। तुम न शह देते तो उनकी मजाल थी कि यों मुझे आंखें दिखातीं !

विशालसिंह—तो क्या मैं उन्हें सिखा देता हूं कि तुम्हें गालियां दें?

रोहिणी—और क्या करते हो ! जब घर में कोई न्याय करने वाला नहीं रहा, तो इसके सिवा और क्या होगा? सामने तो चुड़ैल की तरह बैठी हुई हैं, जाकर पूछते क्यों नहीं? मुंह में कालिख क्यों नहीं लगाते? दूसरा पुरुष होता तो जूतों से बात करता, सारी शेखी किरकिरी हो जाती। लेकिन तुम तो खुद मेरी दुर्गति कराना चाहते हो। न जाने क्यों तुम्हें ब्याह का शौक चर्राया था?

कुंवर साहब ज्यों-ज्यों रोहिणी का क्रोध शांत करने की चेष्टा करते थे, वह और भी बिफरती जाती थी और बार-बार कहती थी, तुमने मेरे साथ क्यों ब्याह किया? यहां तक कि अंत में वह भी गर्म पड़ गए और बोले—और पुरुष स्त्रियों से विवाह करके कौन-सा सुख देते हैं, जो मैं तुम्हें नहीं दे रहा हूं? रही लड़ाई-झगड़े की बात। तुम न लड़ना चाहो, तो कोई जबर्दस्ती तुमसे न लड़ेगा। आखिर रामप्रिया भी तो इसी घर में रहती है।

रोहिणी—तो मैं स्वभाव ही से लड़ाकू हूं?

विशालसिंह—यह मैं थोड़े ही कहता हूं।

रोहिणी—और क्या कहते हो? साफ-साफ कहते हो फिर मुकरते क्यों हो। मैं स्वभाव से ही झगड़ालू हूं। दूसरों से छेड़-छेड़कर लड़ती हूं। यह तुम्हें बहुत दूर की सूझी। वाह, क्या नई बात निकाली है ! कहीं छपवा दो, तो खासा इनाम मिल जाएगा।

विशालसिंह—तुम बरबस बिगड़ रही हो। मैंने तो दुनिया की बात कही थी और तुम अपने ऊपर ले गईं।

रोहिणी—क्या करूं, भगवान् ने बुद्धि ही नहीं दी। वहां भी 'अंधेर नगरी और चौपट राजा' होंगे। बुद्धि तो दो ही प्राणियों के हिस्से में पड़ी है, एक आपकी ठकुराइन के—नहीं-नहीं, महारानी के—और दूसरे आपके। जो कुछ बची-खुची, वह आपके सिर में ठूंस दी गई।

विशालसिंह—अच्छा, उठकर पकवान बनाती हो कि नहीं? कुछ खबर है, नौ बज रहे हैं।

रोहिणी—मेरी बला जाती है। उत्सव मनाने की लालसा नहीं रही।

विशालसिंह—तो तुम न उठोगी?

रोहिणी—नहीं, नहीं, नहीं ! या और दो-चार बार कह दूं?

वसुमती सायबान में बैठी हुई दोनों प्राणियों की बातें तन्मय होकर सुन रही थीं, मानो कोई सेनापति अपने प्रतिपक्षी की गति का अध्ययन कर रहा हो, कि कब यह चूके और कब मैं दबा बैठूं। क्षण-क्षण में परिस्थिति बदल रही थी। कभी अवसर आता हुआ दिखाई देता था, फिर निकल जाता था। यहां तक कि अंत में प्रतिद्वंद्वी की एक भद्दी चाल ने उसे अपेक्षित अवसर दे दिया। विशालसिंह को मुंह लटकाए रोहिणी की कोठरी से निकलते देखकर बोली—क्या मेरी सूरत देखने की कसम

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खा ली है, या तुम्हारे हिसाब से मैं घर में हूं ही नहीं! बहुत दिन तो हो गए रूठे, क्या जन्म भर रूठे ही रहोगे? क्या बात है, इतने उदास क्यों हो?

विशालसिंह ने ठिठककर कहा—तुम्हारी ही लगाई हुई आग को तो शांत कर रहा था; पर उल्टे हाथ जल गए। यह क्या रोज-रोज तूफान खड़ा करती हो? चार दिन की जिंदगी है इसे हंस-खेलकर नहीं काटते बनता? मैं तो ऐसा तंग हो गया हूं कि जी चाहता है कि कहीं भाग जाऊं। सच्च कहता हूं जिंदगी से तंग आ गया। यह सब आग तुम्हीं लगा रही हो।

वसुमती—कहां भागकर जाओगे? नई-नवेली बहू को किस पर छोड़ोगे? नए ब्याह का कुछ सुख तो उठाया ही नहीं।

विशालसिंह—बहुत उठा चुका, जी भर गया।

वसुमती—बस, एक ब्याह और कर लो, एक ही और, जिसमें चौकड़ी पूरी हो जाए।

विशालसिंह—क्या बैठे-बैठे जलाती हो? विवाह क्या किया था, भोग-विलास करने के लिए या तुमसे कोई बड़ी सुंदरी होगी?

वसुमती—अच्छा, आओ, सुनते जाओ।

विशालसिंह—जाने दो, लोग बाहर बैठे होंगे।

वसुमती—अब यही तो नहीं अच्छा लगता। अभी घंटे-भर वहां बैठे चिकनी-चुपड़ी बातें करते रहे तो नहीं देर हुई, मैं एक क्षण के लिए बुलाती हूं तो भागे जाते हो। इसी दोअक्खी की तो तुम्हें सजा मिल रही है।

यह कहकर वसुमती ने आकर उनका हाथ पकड़ लिया, घसीटती हुई अपने कमरे में ले गई और चारपाई पर बैठाती हुई बोली—औरतों को सिर चढ़ाने का यही फल है। उसे तो तब चैन आए, जब घर में अकेली वही रहे। जब देखो तब अपने भाग्य को रोया करती है, किस्मत फूट गई, मां-बाप ने कुएं में झोंक दिया, जिंदगी खराब हो गई। यह सब मुझसे नहीं सुना जाता, यही मेरा अपराध है। तुम उसके मन के नहीं हो, सारी जलन इसी बात की है। पूछो, तुझे कोई जबरदस्ती निकाल लाया था, या तेरे मां-बाप की आंखें फूट गई थीं? वहां तो यह मंसूबे थे कि बेटी मुंहजोर है ही, जाते ही जाते राजा को अपनी मुट्ठी में करके रानी बन बैठेगी! क्या मालूम था कि यहां उसका सिर कुचलने को कोई और बैठा हुआ है। यही बातें खोलकर कह देती हूं, तो तिलमिला उठती है और तुम दौड़ते हो मनाने। बस, उसका मिजाज और आसमान पर चढ़ जाता है। दो दिन, चार दिन रूठी पड़ी रहने दो, फिर देखो, भीगी बिल्ली हो जाती है या नहीं। यह निरंतर का नियम है कि लोहे को लोहा ही काटता है। कुमानस के साथ कुमानस बनने ही से काम चलता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने नारियों के विषय में जो कहा है, बिल्कुल सच है।

विशालसिंह—यहां वह खटवांस लेकर पड़ी है, अब पकवान कौन बनाए?

वसुमती—तो क्या जहां मुर्गा न होगा, वहां सबेरा ही न होगा? आखिर जब वह नहीं थी, तब भी तो जन्माष्टमी मनाई जाती थी। ऐसा कौन-सा बड़ा काम है? मैं बनाए देती हूं। भगवान् थोड़े ही बंटे हुए हैं, या मुझे जन्माष्टमी से कोई वैर है!

विशालसिंह ने पुलकित होकर कहा—बस, तुम्हारी इन्हीं बातों पर मेरी जान जाती है। कुलवंती स्त्रियों का यही धर्म है। आज तुम्हारी धानी साड़ी गजब ढा रही है। कवियों ने सच कहा है, यौवन प्रौढ़ होकर और भी अजेय हो जाता है। चंद्रमा का पूरा प्रकाश भी तो पूर्णिमा ही को होता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वसुमती—खुशामद करना कोई तुमसे सीख ले।

विशालसिंह—जो चीज कम हो, वह और मंगवा लेना।

विजय के गर्व से फूली हुई वसुमती आधी रात तक बैठी भांति-भांति के पकवान बनाती रही। द्वेष ने बरसों की सोई हुई कृष्ण-भक्ति को जागृत कर दिया। वह इन कामों में निपुण थी। श्रम से उसे कुछ रुचि-सी थी। निठल्ले न बैठा जाता था। रोहिणी जिस काम को दिन भर मर-मरकर करती, उसे वह दो घंटे में हंसते-हंसते पूर्ण कर देती थी। रामप्रिया ने उसे बहुत व्यस्त देखा, तो वह भी आ गई और दोनों मिलकर काम करने लगीं।

विशालसिंह बाहर गए और कुछ देर तक गाना सुनते रहे; पर वहां जी न लगा। फिर भीतर चले आए और रसोईघर के द्वार पर मोढ़ा डालकर बैठ गए। भय था कि कहीं रोहिणी कुछ कह न बैठे और दोनों फिर न लड़ मरें।

वसुमती ने कहा—बाहर क्या हो रहा है?

विशालसिंह—गाना शुरू हो गया है। तुम इतनी महीन पूरियां कैसे बनाती हो? फट नहीं जातीं!

वसुमती—चाहूं तो इससे भी महीन बेल दूं, कागज मात हो जाए।

विशालसिंह—मगर खिलेंगी न?

वसुमती—खिलाकर दिखा दूं, डब्बे-सी न फूल जायें तो कहना। अभी महारानी नहीं उठीं क्या? इसमें छिपकर बातें सुनने की बुरी लत है। न जाने क्या चाहती है। बहुत औरतें देखीं; लेकिन इसके ढंग सबसे निराले हैं। मुहब्बत तो इसे छू नहीं गई। अभी तुम तीन दिन बाहर कराहते रहे; पर कसम ले लो, जो उसका मन जरा भी मैला हुआ हो। हम लोगों के प्राण तो नखों में समा गए थे। रात-दिन देवी-देवता मनाया करती थीं। वहां पान चबाने, आईना देखने और मांग-चोटी करने के सिवा और दूसरा कोई काम ही न था। ऐसी औरतों पर कभी विश्वास न करें।

विशालसिंह—सब देखता हूं, और समझता हूं, निरा गधा नहीं हूं।

वसुमती—यही तो रोना है कि तुम देखकर भी नहीं देखते, समझकर भी नहीं समझते। जहां उसने मुस्कराकर, आंखें मटकाकर बातें कीं, मस्त हो गए। लल्लो-चप्पो किया करते हो। थर-थर कांपते रहते हो कि कहीं रानी नाराज न हो जाएं। आदमी में सब ऐब हों, किंतु मेहर-बस न हो। ऐसी कोई बड़ी सुंदर भी तो नहीं है।

रामप्रिया—एक समय सखि सुअर सुंदर! जवानी में कौन नहीं सुंदर होता?

वसुमती—उसके माथे से तो तुम्हारे तलुवे अच्छे। सात जन्म ले, तो भी तुम्हारे गर्द को न पहुंचे।

विशालसिंह—मैं मेहर-बस हूं?

वसुमती—और क्या हो?

विशालसिंह—मैं उसे ऐसी-ऐसी बातें कहता हूं कि वह भी याद करती होगी। घंटों रुलाता हूं।

वसुमती—क्या जाने, यहां तो जब देखती हूं, उसे मुस्कराते देखती हूं! कभी आंखों में आंसू न देखा।

रामप्रिया—कड़ी बात भी हंसकर कही जाए, तो मीठी हो जाती है।

विशालसिंह—हंसकर नहीं कहता। डांटता हूं, फटकारता हूं। लौंडा नहीं हूं कि सूरत पर लट्टू हो जाऊं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वसुमती—डांटते होगे; मगर प्रेम के साथ। ढलती उम्र में सभी मर्द तुम्हारे ही जैसे हो जाते हैं। कोई नई बात नहीं है। मैं तुमसे लाख रूठी रहूं; लेकिन तुम्हारा मुंह जरा भी गिरा देखा और जान निकल गई। सारा क्रोध हवा हो जाता है। वहां जब तक जाकर पैर न सहलाओ, तलुओं से आंखें न मलो, देवीजी सीधी ही नहीं होतीं। कभी-कभी तुम्हारी लम्पटता पर मुझे हंसी आती है। आदमी कड़े दम चाहिए जिसका अन्याय देखे, उसे डांटे दे, बुरी तरह डांट दे, खून पी लेने पर उतारू हो जाए। ऐसे ही पुरुषों से स्त्रियां प्रेम करती हैं। भय बिना प्रीति नहीं होती। आदमी ने स्त्री की पूजा की कि वह उनकी आंखों से गिरा। जैसे घोड़ा पैदल और सवार पहचानता है, उसी तरह औरत भी भकुए और मर्द को पहचानती है। जिसने सच्चा आसन जमाया और लगाम कड़ी रखी, उसी की जय है। जिसने रास ढीली कर दी, उसकी कुशल नहीं।

रामप्रिया मुंह फेरकर मुस्कराई और बोली—बहन, तुम सब गुर बताए देती हो, किसके माथे जाएगी?

वसुमती—हम लोगों की लगाम कब ढीली थी?

रामप्रिया—जिसकी लगाम कभी कड़ी न थी, वह आज लगाम तानने से थोड़े ही काबू में आंई जाती है और भी दुलत्तियां झाड़ने लगेगी।

विशालसिंह—मैंने तो अपनी जान में कभी लगाम ढीली नहीं की। आज ही देखो, कैसी फटकार बताई।

वसुमती—क्या कहना है, जरा मूंछें खड़ी कर लो, लाओ, पगिया मैं सवार दूं। यह नहीं कहते कि उसने ऐसी-ऐसी चोटें कीं कि भागते ही बना !

सहसा किसी के पैरों की आहट पाकर वसुमती ने द्वार की ओर देखा। रोहिणी रसोई के द्वार से दबे पांव चली जा रही थी। मुंह का रंग उड़ गया। दांतों से ओठ दबाकर बोली—छिपी खड़ी थी। मैंने साफ देखा। अब घर में रहना मुश्किल है। देखो, क्या रंग लाती है।

विशालसिंह ने पीछे की ओर सशंक नेत्रों से देखकर कहा—बड़ा गजब हुआ। चुड़ैल सब सुन गई होगी। मुझे जरा भी आहट न मिली।

वसुमती—उंह, रानी रूठेंगी, अपना सोहाग लेंगी। कोई कहां तक डरे? आदमियों को बुलाओ, यह सामान यहां से ले जाएं।

भादों की अंधेरी रात थी। हाथ को हाथ न सूझता था। मालूम होता था, पृथ्वी पाताल में चली गई है या किसी विराट जंतु ने उसे निगल लिया है। मोमबत्तियों का प्रकाश तिमिर सागर में पांव रखते कांपता था। विशालसिंह भोग के पदार्थ थालियों में भरवा-भरवाकर बाहर रखवाने में लगे हुए थे। कोई केले छील रहा था, कोई खीरे काटता था। कोई दोनों में प्रसाद सजा रहा था। एकाएक रोहिणी एक चादर ओढ़े हुए घर से निकली और बाहर की ओर चली। विशालसिंह दहलीज के द्वार पर खड़े थे। इस भरी सभा में उसे यों निश्शंक भाव से निकलते देखकर उनका रक्त खौलने लगा। जरा भी न पूछा, कहां जाती हो, क्या बात है। मूर्ति की भांति खड़े रहे। दिल ने कहा—जिसने इतनी बेहयाई की, उससे और क्या आशा की जा सकती है? वह जहां जाती हो, जाए; जो जी में आए, करे। जब उसने मेरा सिर ही नीचा कर दिया, तो मुझे उसकी क्या परवाह? बेहया, निर्लज्ज तो है ही, कुछ पूछूं और गालियां देने लगे, तो मुंह में और भी कालिख लग जाए। जब उसको मेरी परवाह नहीं, तो मैं क्यों उसके पीछे दौड़ूं? और लोग अपने-अपने काम में लगे हुए थे। रोहिणी पर किसी की निगाह न पड़ी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इतने में चक्रधर उनसे कुछ पूछने आए, तो देखा कि महरी उनके सामने खड़ी है और क्रोध से आंखें लाल किए कह रहे हैं—अगर वह मेरी लौंडी नहीं है, तो मैं भी उसका गुलाम नहीं हूं। अगर वह स्त्री होकर इतना आपे से बाहर हो सकती है, तो मैं पुरुष होकर उसके पैरों पर सिर न रखूंगा। इच्छा हो जाए, मैंने तिलांजलि दे दी। अब इस घर में कदम न रखने दूंगा। (चक्रधर को देखकर) आपने भी तो उसे देखा होगा?

चक्रधर—किसे? मैं तो केले छील रहा था। कौन गया है?

विशालसिंह—मेरी छोटी पत्नीजी रूठकर बाहर चली गई हैं। आपसे घर का वास्ता है। आज औरतों में किसी बात पर तकरार हो गई। अब तक तो मुंह फुलाए पड़ी रहीं, अब यह सनक सवार हुई। मेरा धर्म नहीं है कि मैं उसे मनाने जाऊं ! आप धक्के खाएंगी। उसके सिर पर कुबुद्धि सवार है।

चक्रधर--किधर गई हैं, महरी?

महरी—क्या जानूं, बाबूजी? मैं तो बरतन मांज रही थी। सामने ही गई होंगी।

चक्रधर ने लपककर लालटेन उठा ली और बाहर निकलकर दाएं-बाएं निगाहें दौड़ाते, तेजी से कदम बढ़ाते हुए चले। कोई दो सौ कदम गए होंगे कि रोहिणी एक वृक्ष के नीचे खड़ी दिखलाई दी। ऐसा मालूम होता था कि वह छिपने के लिए कोई जगह तलाश कर रही है। चक्रधर उसे देखते ही लपककर समीप जा पहुंचे और कुछ कहना ही चाहते थे कि रोहिणी खुद बोली—क्या मुझे पकड़ने आए हो? अपना भला चाहते हो, तो लौट जाओ; नहीं तो अच्छा न होगा। मैं उन पापियों का मुंह न देखूंगी।

चक्रधर—आप इस अंधेरे में कहां जाएंगी? हाथ को हाथ सूझता नहीं।

रोहिणी—अंधेरे में डर उसे लगता है, जिसका कोई अवलंब हो। जिसका संसार में कोई नहीं, उसे किसका भय? गला काटने वाले अपने होते हैं, पराए गला नहीं काटते। जाकर कह देना, अब आराम से टांगें फैलाकर सोइए, अब तो कांटा निकल गया।

चक्रधर—आप कुंवर साहब के साथ बड़ा अन्याय कर रही हैं। बेचारे लज्जा और शोक से खड़े रो रहे हैं।

रोहिणी—क्यों बातें बनाते हो? वह रोएंगे, और मेरे लिए? मैं जिस दिन मर जाऊंगी, उस दिन घी के चिराग जलेंगे। संसार में ऐसे अभागे प्राणी भी होते हैं। अपने मां-बाप को क्या कहूं? ईश्वर उन्हें नरक में भी चैन न दे। सोचे थे, बेटी रानी हो जाएगी, तो हम राज करेंगे। यहां जिस दिन डोली से उतरी, उसी दिन से सिर पर विपत्ति सवार हुई। पुरुष रोगी हो, बूढ़ा हो, दरिद्र हो; पर नीच न हो। ऐसा नीच और निर्दयी आदमी संसार में न होगा। नीचों के साथ नीच बनना ही पड़ता है।

चक्रधर—आपके यहां खड़े होने से कुंवर साहब का कितना अपमान हो रहा है, इसकी आपको जरा भी फिक्र नहीं?

रोहिणी—तुम्हीं ने तो मुझे रोक रखा है।

चक्रधर—आखिर आप कहां जा रही हैं?

रोहिणी—तुम पूछने वाले कौन होते हो? मेरा जहां जी चाहेगा, जाऊंगी। उनके पांव में मेंहदी नहीं रची हुई थी। उन्होंने मुझे घर से निकलते भी देखा था। क्या इसका मतलब यह नहीं है कि अच्छा हुआ, सिर से बला टली। दुतकार सहकर जीने से मर जाना अच्छा है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चक्रधर—आपको मेरे साथ चलना होगा।

रोहिणी—तुम्हें यह कहने का क्या अधिकार है?

चक्रधर—जो अधिकार सचेत को अचेत पर, राजान को अजान पर होता है, वही अधिकार मुझे आपके ऊपर है। अंधे को कुएं में गिरने से बचाना हर एक प्राणी का धर्म है।

रोहिणी—मैं न अचेत हूं, न अजान, न अंधी। स्त्री होने ही से बावली नहीं हो गई हूं। जिस घर में मेरा पहनना-ओढ़ना-हंसना बोलना, देख-देखकर दूसरों की छाती फटती है, जहां कोई अपनी बात तक नहीं पूछता, जहां तरह-तरह के आक्षेप लगाए जाते हैं, उस घर में कदम न रखूंगी।

यह कहकर रोहिणी आगे बढ़ी कि चक्रधर ने सामने खड़े होकर कहा—आप आगे नहीं जा सकतीं।

रोहिणी—जबरदस्ती रोकोगे?

चक्रधर—हां, जबरदस्ती रोकूंगा।

रोहिणी—सामने से हट जाओ।

चक्रधर—मैं आपको एक कदम भी आगे न रखने दूंगा। सोचिए, आप अपनी अन्य बहनों को किस कुमार्ग पर ले जा रही हैं? जब वे देखेंगे कि बड़े-बड़े घरों की स्त्रियां भी रूठकर घर से निकल खड़ी होती हैं, तो उन्हें भी जरा-सी बात पर ऐसा ही साहस होगा या नहीं? नीति के विरुद्ध कोई काम करने का फल अपने ही तक नहीं रहता, दूसरों पर उसका और भी बुरा असर पड़ता है।

रोहिणी—मैं चुपके से चली जाती थी, तुम्हीं तो ढिंढोरा पीट रहे हो।

चक्रधर—जिस तरह रण से भागते हुए सिपाही को देखकर लोगों को उससे घृणा होती है—यहां तक कि उसका वध कर डालना भी पाप नहीं समझा जाता, उसी तरह कुल में, कलंक लगाने वाली स्त्रियों से भी सबको घृणा हो जाती है और कोई उनकी सूरत तक नहीं देखना चाहता। हम चाहते हैं कि सिपाही गोली और आग के सामने अटल खड़ा रहे। उसी तरह हम यह भी चाहते हैं कि स्त्री सब झेलकर अपनी मर्यादा का पालन करती रहे ! हमारा मुंह हमारी देवियों से उज्ज्वल है और जिस दिन हमारी देवियां इस भांति मर्यादा की हत्या करने लगेंगी, उसी दिन हमारा सर्वनाश हो जाएगा।

रोहिणी रुंधे हुए कंठ से बोली—तो क्या चाहते हो कि मैं फिर उसी आग में जलूं?

चक्रधर—हां, यही चाहता हूं। रणक्षेत्र में फूलों की वर्षा नहीं होती। मर्यादा की रक्षा करना उससे कहीं कठिन है।

रोहिणी—लोग हंसेंगे कि घर से निकली तो थी बड़े दिमाग से, आखिर झख मारकर लौट आई।

चक्रधर—ऐसा वही कहेंगे, जो नीच और दुर्जन हैं। समझदार लोग तो आपकी सराहना ही करेंगे।

रोहिणी ने कई मिनट तक आगा-पीछा करने के बाद कहा—अच्छा चलिए, आप भी क्या कहेंगे। कोई बुरा कहे या भला। हां, कुंवर साहब को इतना जरूर समझा दीजिएगा कि जिन महारानी को आज वह घर की लक्ष्मी समझे हुए हैं, वह एक दिन उनको बड़ा धोखा देंगी। मैं कितनी ही आपे से बाहर हो जाऊं; पर अपना ही प्राण दूंगी; वह बिगड़ेंगी तो प्राण लेकर छोड़ेंगी। आप किसी मौके से जरूर समझा दीजिएगा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह कहकर रोहिणी घर की ओर लौट पड़ी; लेकिन चक्रधर का उसके ऊपर कहां तक असर पड़ा और कहां तक स्वयं अपनी सहज बुद्धि का, इसका अनुमान कौन कर सकता है? वह लौटते वक्त लज्जा से सिर नहीं गड़ाए हुए थी, गर्व से उसकी गर्दन उठी हुई थी। उसने अपनी टेक को मर्यादा की वेदी पर बलिदान कर दिया था; पर उसके साथ ही उन व्यंग्य वाक्यों की रचना भी कर ली थी, जिससे वह कुंवर साहब का स्वागत करना चाहती थी।

जब दोनों आदमी घर पहुंचे, तो विशालसिंह अभी तक वहां मूर्तिवत् खड़े थे, महरी भी खड़ी थी। भक्त जन अपना-अपना काम छोड़कर लालटेन की ओर ताक रहे थे। सन्नाटा छाया हुआ था।

रोहिणी ने दहलीज में कदम रखा; मगर ठाकुर साहब ने उसकी ओर आंख उठा कर भी न देखा। जब वह अंदर चली गई, तो उन्होंने चक्रधर का हाथ पकड़ लिया और बोले—मैं तो समझता था किसी तरह न आएगी; मगर आप खींच ही लाए। क्या बहुत बिगड़ती थी?

चक्रधर ने कहा—आपको कुछ नहीं कहा। मुझे तो बहुत समझदार मालूम होती हैं। हां, मिजाज नाजुक है; बात बर्दाश्त नहीं कर सकतीं।

विशालसिंह—मैं यहां से टला तो नहीं, लेकिन सच पूछिए तो ज्यादती मेरी ही थी। मेरा क्रोध बहुत बुरा है। अगर आप न पहुंच जाते तो बड़ी मुश्किल पड़ती। जान पर खेल जानेवाली स्त्री है। आपका यह एहसान कभी न भूलूंगा। देखिए तो, सामने कुछ रोशनी-सी मालूम हो रही है, बैंड भी बज रहा है। क्या माजरा है?

चक्रधर—हां, मशालें और लालटेनें हैं। बहुत से आदमी भी साथ हैं। और लोग भी आंगन में उतर आए और सामने देखने लगे। सैकड़ों आदमी कतार बांधे मशालों और लालटेनों के साथ चले आ रहे थे, आगे-आगे दो अश्वारोही भी नजर आते थे। बैंड की मनोहर ध्वनि आ रही थी। सब खड़े-खड़े देख रहे थे; पर किसी की समझ में न आता था कि माजरा क्या है!

ग्यारह

सभी लोग बड़े कुतूहल से आने वालों को देख रहे थे। कोई दस-बारह मिनट में वह विशालसिंह के घर के सामने आ पहुंचे। आगे-आगे दो घोड़ों पर मुंशी वज्रधर और ठाकुर हरिसेवकसिंह थे। पीछे कोई पचीस-तीस आदमी साफ-सुथरे कपड़े पहने चले आते थे। दोनों तरफ कई झंडीबरदार थे, जिनकी झंडियां हवा में लहरा रही थीं। सबसे पीछे बाजे वाले थे! मकान के सामने पहुंचते ही दोनों सवार घोड़ों से उतर पड़े और हाथ बांधे हुए कुंवर साहब के सामने आकर खड़े हो गए। मुंशीजी की सज-धज निराली थी। सिर पर एक शमला था, देह पर एक नीचा आबा। ठाकुर साहब भी हिन्दुस्तानी लिबास में थे। मुंशीजी खुशी से मुस्कराते थे, पर ठाकुर साहब का मुख मलिन था।

ठाकुर साहब बोले—दीनबंधु, हम सब आपके सेवक आपकी सेवा में यह शुभ सूचना देने के लिए हाजिर हुए हैं कि महारानी ने राज्य से विरक्त होकर तीर्थयात्रा को प्रस्थान किया है और अब हमें श्रीमान् की छत्रछाया के नीचे आश्रय लेने का वह स्वर्णावसर प्राप्त हुआ है, जिसके लिए हम सदैव ईश्वर से प्रार्थना करते रहते थे। यह हमारा परम सौभाग्य है कि आज से श्रीमान् हमारे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भाग्यविधाता हुए। यह पत्र है, जो महारानीजी ने श्रीमान् के नाम लिख रखा था।

यह कहकर ठाकुर साहब ने रानी का पत्र त्रिशालसिंह के हाथ में दिया। कुंवर साहब ने एक ही निगाह में आद्योपांत पढ़ लिया और उनके मुख पर मंद हास्य की आभा झलकने लगी। पत्र जेब में रखते हुए बोले—यद्यपि महारानी की तीर्थयात्रा का समाचार जानकर मुझे अत्यंत खेद हो रहा है; लेकिन इस बात का सच्चा आनंद भी है कि उन्होंने निवृत्ति मार्ग पर पग रखा; क्योंकि ज्ञान ही से मुक्ति प्राप्त होती है। मेरी ईश्वर से यही विनय है कि उसने मेरी गर्दन पर जो कर्त्तव्य का भार रखा है उसे संभालने की मुझे शक्ति दे और प्रजा के प्रति मेरा जो धर्म है, उसके पालन करने की भी शक्ति प्रदान करे। आप लोगों को मैं विश्वास दिलाता हूं कि मैं यथासाध्य अपना कर्त्तव्य पालन करने में ऊंचे आदर्शों को सामने रखूंगा; लेकिन सफलता बहुत कुछ आप ही लोगों की सहानुभूति और सहकारिता पर निर्भर है, और मुझे आशा है कि आप मेरी सहायता करने में किसी प्रकार की कोताही न करेंगे। मैं इस समय यह भी जता देना अपना कर्त्तव्य समझता हूं कि मैं अत्याचार का घोर शत्रु हूं और ऐसे महापुरुषों को, जो प्रजा पर अत्याचार करने के अभ्यस्त रहे हैं, मुझसे जरा भी नरमी की आशा न रखनी चाहिए।

इस कथन में शिष्टता की मात्रा अधिक और नीति की बहुत कम थी, फिर भी सभी राज्य कर्मचारियों को यह बातें अप्रिय जान पड़ीं। सबके कान खड़े हो गए और हरिसेवक को तो ऐसा मालूम हुआ कि यह निशाना मुझी पर है। उनके प्राण सूख गए। सभी आपस में कानाफूसी करने लगे।

कुंवर साहब ने लोगों को ले जाकर फर्श पर बैठाया और खुद मसनद लगाकर बैठे। नजराने की निरर्थक रस्म अदा होने लगी। बैंड ने बधाई देनी शुरू की। चक्रधर ने पान और इलायची से सबका सत्कार किया। कुंवर साहब का जी बार-बार चाहता था कि घर में जाकर यह सुख-संवाद सुनाऊं; पर मौका न देखकर जब्त किए हुए थे। मुंशी वज्रधर अब तक खामोश बैठे थे। ठाकुर हरिसेवक को यह खुशखबरी सुनाने का मौका देकर उन्होंने अपने ऊपर कुछ कम अत्याचार न किया था। अब उनसे चुप न रहा गया। बोले—हुजूर, आज सबसे पहले मुझी को यह हाल मालूम हुआ।

हरिसेवक ने इसका खंडन किया—मैं तो आपके साथ ही पहुंच गया था।

वज्रधर—आप मुझसे जरा देर बाद पहुंचे। मेरी आदत है कि बहुत सबेरे उठता हूं। देर तक सोता, तो एक दिन भी तहसीलदारी न निभती। बड़ी हुकूमत की जगह है, हुजूर! वेतन तो कुछ ऐसा ज्यादा न था; पर हुजूर, अपने इलाके का बादशाह था। खैर, ड्योढ़ी पर पहुंचा तो सन्नाटा छाया हुआ था। न दरबान का पता, न सिपाही का। घबराया कि माजरा क्या है। बेधड़क अंदर चला गया। मुझे देखते ही गुजराती रोती हुई दौड़ी आई और तुरंत रानी साहब का खत लाकर मेरे हाथ में रख दिया। रानी जी ने उससे शायद यह खत मेरे ही हाथ में देने को कहा था।

हरिसेवक—यह तो कोई बात नहीं। मैं पहले पहुंचता, तो मुझे खत मिलता। आप पहले पहुंचे, आपको मिल गया।

वज्रधर—आप नाराज क्यों होते हैं। मैंने तो केवल अपना विचार प्रकट किया है। वह खत पढ़कर मेरी जो दशा हुई, बयान नहीं कर सकता। कभी रोता था, कभी हंसता था। बस, यही जी चाहता था कि उड़कर हुजूर को खबर दूं। ठीक उसी समय ठाकुर साहब पहुंचे। है यही बात न, दीवान साहब?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हरिसेवक—मुझे खबर मिल गई थी। आदमियों को चौकसी रखने की ताकीद कर रहा था।

वज्रधर—आपने बाहर से जो कुछ किया हो, मुझे उसकी खबर नहीं, अंदर आप उसी वक्त पहुंचे, जब मैं खत लिए खड़ा था। मैंने आपको देखते ही कहा—सब कमरों में ताला लगवा दीजिए और दफ्तर में किसी को न जाने दीजिए।

हरिसेवक—इतनी मोटी-सी बात के लिए मुझे आपकी सलाह की आवश्यकता न थी।

वज्रधर—यह मेरा मतलब नहीं। अगर मैंने तहसीलदारी की है, तो आपने भी दीवानी की है। सरकारी नौकरी न सही, फिर भी काम एक ही है। जब हर एक कमरे में ताला पड़ गया, दफ्तर का दरवाजा बंद कर दिया गया, तो सलाह होने लगी कि हुजूर को कैसे खबर दी जाय। कोई कहता था, आदमी दौड़ाया जाय, कोई मोटर से खबर भेजना चाहता था। मैंने यह मुनासिब नहीं समझा। इतनी उम्र तक भाड़ नहीं झोंका हूं। जगदीशपुर खबर भेजकर सब कर्मचारियों को बुलाने की राय दी। दीवान साहब को मेरी राय पसन्द आई। इसी कारण इतनी देर हुई। हुजूर, सारे दिन दौड़ते-दौड़ते पैरों में छाले पड़ गए। आज दोहरी खुशी का दिन है। गुस्ताखी माफ, मिठाइयां खिलाइए और महफिल जमाइए। एक हफ्ते तक गाना होना चाहिए। हुजूर, यही देना दिलाना, खाना खिलाना याद रहता है।

विशालसिंह—अब इस वक्त तो भजन होने दीजिए, कल यहीं महफिल जमेगी।

वज्रधर—हुजूर, मैंने पहले ही से गाने-बजाने का इंतजाम कर लिया है। लोग आते ही होंगे। शहर के अच्छे-अच्छे उस्ताद बुलाए हैं। हुजूर, एक से एक गुणी हैं। सभी का मुजरा होगा।

अभी तहसीलदार साहब ने बात पूरी भी न की थी कि झिनकू ने अंदर आकर सलाम किया और बोला—दीनानाथ, उस्ताद लोग आ गए हैं। हुक्म हो तो हाजिर हों।

मुंशीजी तुरंत बाहर गए और उस्तादों को हाथों हाथ ले आए। दस-बारह आदमी थे, सबके सब बूढ़े, किसी का मुंह पोपला, किसी की कमर झुकी हुई, कोई आंखों का अंधा। उनका पहनावा देखकर ऐसा अनुमान होता था कि कम-से-कम तीन शताब्दी पहले के मनुष्य हैं। बड़ी नीची अचकन, जिस पर हरी गोट लगी हुई, वही चुनावदार पाजामा, वही उलझी हुई तार-तार पगड़ी, कमर में पटका बंधा हुआ। दो-तीन उस्ताद नंग-धड़ंग थे, जिनके बदन पर एक लंगोटी के सिवा और कुछ न था। यही सरस्वती के उपासक थे और इन्हीं पर उनकी कृपा-दृष्टि थी।

उस्तादों ने अंदर आकर कुंवर साहब और अन्य सज्जनों को झुक-झुककर सलाम किया और घुटने तोड़-तोड़ बैठे। मुंशीजी ने उनका परिचय कराना शुरू किया। यह उस्ताद मेडूंखां हैं, महाराज अलवर के दरबारी हैं, वहां से हजार रुपये सालाना वजीफा मिलता है। आप सितार बजाने में अपना सानी नहीं रखते। किसी के यहां आते-जाते नहीं, केवल भगवद्भजन किया करते हैं। यह चन्दू महाराज हैं, पखावज के पक्के उस्ताद। ग्वालियर के महाराज इनसे लाख कहते हैं कि आप दरबार में रहिए। दो हजार रुपये महीने तक देते हैं, लेकिन आपको काशी से प्रेम है। छोड़कर नहीं जाते। यह उस्ताद फजलू हैं, राग-रागिनियों के फिकैत, स्वरों से रागिनियों की तसवीर खींच देते हैं। एक बार आपने लाट साहब के सामने गाया था। जब गाना बंद हुआ, तो साहब ने आपके पैरों पर अपनी टोपी रख दी और घंटों छाती पीटते रहे। डॉक्टरों ने जब दवा दी, तो उनका नशा उतरा।

विशालसिंह—यहां वह रागिनी न गवाइएगा, नहीं तो लोग लोट-पोट हो जाएंगे। यहां तो डॉक्टर भी नहीं है।

वज्रधर—हुजूर, रोज-रोज यह बातें थोड़े ही होती हैं। बड़े से बड़े कलावंत को भी जिंदगी में ।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

केवल एक बार गाना नसीब होता है। फिर लाख सिर मारें, वह बात नहीं पैदा होती है।

परिचय के बाद गाना शुरू हुआ। फजलू ने मलार छेड़ा और मुंशीजी झूमने लगे। फजलू भी मुंशीजी ही को अपना कमाल दिखाते थे। उनके सिवा और उनकी निगाह में कोई था ही नहीं। उस्ताद लोग 'वाह-वाह' का तार बांधे हुए थे; मुंशीजी आंखें बंद किए सिर हिला रहे थे और महफिल के लोग एक-एक करके बाहर चले जा रहे थे। दो-चार सज्जन बैठे थे। वे वास्तव में सो रहे थे। फजलू को इसकी जरा भी परवाह नहीं थी कि लोग उसका गाना पसंद करते हैं या नहीं। उस्ताद उस्तादों के लिए गाते हैं। गुणी गुणियों की ही निगाह में सम्मान पाने का इच्छुक होता है। जनता की उसे परवाह नहीं होती। अगर उस महफिल में अकेले मुंशीजी होते तो भी फजलू इतना ही मस्त होकर गाता। धनी लोग गरीबों की क्या परवाह करते हैं? विद्वान् मूर्खों को कब ध्यान में लाते हैं? इसी भांति गुणी जन अनाड़ियों की परवाह नहीं करते। उनकी निगाह में मर्मज्ञ का स्थान धन और वैभव के स्वामियों से कहीं ऊंचा होता है।

मलार के बाद फजलू ने 'निर्गुण' गाना शुरू किया; रागिनी का नाम तो उस्ताद ही बता सकते हैं। उस्तादों के मुख से सभी रागिनियां समान रूप धारण करती हुई मालूम होती हैं। आग में पिघलकर सभी धातुएं एक-सी हो जाती हैं। मुंशीजी को इस राग ने मतवाला कर दिया। पहले बैठे-बैठे झूमते थे, फिर खड़े होकर झूमने लगे, झूमते-झूमते, आप ही आप उनके पैरों में एक गति-सी होने लगी। हाथ के साथ पैरों से भी ताल देने लगे। यहां तक कि वह नाचने लगे। उन्हें इसकी जरा भी झेंप न थी कि लोग दिल में क्या कहते होंगे। गुणी को अपना गुण दिखाते शर्म नहीं आती। पहलवान को अखाड़े में ताल ठोंककर उतरते क्या शर्म ! जो लड़ना नहीं जानते, वे ढकेलने से भी अखाड़े में नहीं जाते। सभी कर्मचारी मुंह फेर-फेरकर हंसते थे। जो लोग बाहर चले गए थे, वे भी यह ताण्डव नृत्य देखने के लिए आ पहुंचे। यहां तक कि विशालसिंह भी हंस रहे थे। मुंशीजी के बदले देखने वालों को झेंप हो रही थी; लेकिन मुंशीजी अपनी धुन में मग्न थे। गुणी गुणियों के सामने अनुरक्त हो जाता है। अनाड़ी लोग तो हंस रहे थे और गुणी लोग नृत्य का आनंद उठा रहे थे। नृत्य ही अनुराग की चरम सीमा है।

नाचते-नाचते आनंद से विह्वल होकर मुंशीजी गाने लगे। उनका मुख अनुराग से प्रदीप्त हो रहा था। आज बड़े सौभाग्य से बहुत दिनों के बाद उन्हें यह स्वर्गीय आनंद प्राप्त करने का अवसर मिला था। उनकी बूढ़ी हड्डियों में इतनी चपलता कहां से आ गई, इसका निश्चय करना कठिन है। इस समय तो उनकी फुर्ती और चुस्ती जवानों को भी लज्जित करती थी। उनका उछलकर आगे जाना, फिर उछलकर पीछे आना, झुकना और मुड़ना, और एक-एक अंग को फेरना वास्तव में आश्चर्यजनक था। इतने में कृष्ण के जन्म का मुहूर्त आ पहुंचा। सारी महफिल खड़ी हो गई और सभी उस्तादों ने एक स्वर से मंगलगान शुरू किया। साजों के मेले ने समां बांध दिया। केवल दो ही प्राणी ऐसे थे जिन्हें इस समय भी चिंता घेरे हुए थी। एक तो ठाकुर हरिसेवकसिंह, दूसरे कुंवर विशालसिंह। एक को यह चिंता लगी हुई थी कि देखें, कल क्या मुसीबत आती है, दूसरे को यह फिक्र थी कि इस दुष्ट से क्योंकर पुरानी कसर निकालूं। चक्रधर अब तक तो लज्जा से मुंह छिपाए बाहर खड़े थे; मंगल-गान समाप्त होते ही आकर प्रसाद बांटने लगे। किसी ने मोहन भोग का थाल उठाया, किसी ने फलों का। कोई पंचामृत बांटने लगा। हड़बोंग-सा मच गया। कुंवर साहब ने मौका पाया, तो उठे और मुंशी वज्रधर को इशारे से बुला, दालान में ले जाकर पूछने लगे—दीवान साहब ने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तो मौका पाकर खूब हाथ साफ किए होंगे?

वज्रधर—मैंने तो ऐसी कोई बात नहीं देखी। बेचारे दिन भर सामान की जांच-पड़ताल करते रहे। घर तक न गए।

विशालसिंह—यह सब तो आपके कहने से किया। आप न होते, तो न जाने क्या गजब ढाते।

वज्रधर—मेरी बातों का यह मतलब न था कि वह आपसे कीना रखते हैं। इन छोटी-छोटी बातों की ओर ध्यान देना उनका काम नहीं है। मुझे तो यह फिक्र थी कि दफ्तर के कागज तैयार हो जाएं। मैं किसी की बुराई न करूंगा। दीवान साहब को आपसे अदावत थी, यह मैं मानता हूं। रानी साहब का नमक खाते थे और आपका बुरा चाहना उनका धर्म था; लेकिन अब वह आपके सेवक हैं और मुझे पूरा विश्वास है कि वह उतनी ही ईमानदारी से आपकी सेवा करेंगे।

विशालसिंह—आपको पुरानी कथा मालूम नहीं। इसने मुझ पर बड़े-बड़े जुल्म किए हैं। इसी के कारण मुझे जगदीशपुर छोड़ना पड़ा। बस चला होता, तो इसने मुझे कत्ल करा दिया होता?

वज्रधर--गुस्ताखी माफ कीजिएगा। आपका बस चलता, तो क्या रानीजी की जान बच जाती, या दीवान साहब जिंदा रहते? उन पिछली बातों को भूल जाइए। भगवान ने आज आपको ऊंचा रुतबा दिया है। अब आपको उदार होना चाहिए। ऐसी बातें आपके दिल में न आनी चाहिए। मातहतों से उनके अफसर के विषय में कुछ पूछताछ करना अफसर को जलील कर देना है। मैंने इतने दिनों तहसीलदारी की लेकिन नायब साहब ने तहसीलदार के विषय में चपरासियों से कभी कुछ नहीं पूछा। मैं तो खैर इन मामलों को समझता हूं; लेकिन दूसरे मातहतों से यदि आप ऐसी बातें करेंगे, तो वह अपने अफसर की हजारों बुराइयां आपसे करेंगे। मैंने ठाकुर साहब के मुंह से एक भी बात ऐसी नहीं सुनी, जिससे यह मालूम हो कि वह आपसे कोई अदावत रखते हैं।

विशालसिंह ने कुछ लज्जित होकर कहा—मैं आपको ठाकुर साहब का मातहत नहीं, अपना मित्र समझता हूं; और इसी नाते से मैंने आपसे यह बात पूछी थी। मैंने निश्चय कर लिया था कि सबसे पहला वार इन्हीं पर करूंगा; लेकिन आपकी बातों ने मेरा विचार पलट दिया। आप भी उन्हें समझा दीजिएगा कि मेरी तरफ से कोई शंका न रखें। हां, प्रजा पर अत्याचार न करें।

वज्रधर—नौकर अपने मालिक का रुख देखकर ही काम करता है। रानीजी को हमेशा रुपये की तंगी रहती थी। दस लाख की आमदनी भी उनके लिए काफी न होती थी। ऐसी हालत में ठाकुर साहब को मजबूर होकर प्रजा पर सख्ती करनी पड़ती थी। वह कभी आमदनी और खर्च का हिसाब न देखती थीं। जिस वक्त जितने रुपये की उन्हें जरूरत पड़ती थी, ठाकुर साहब को देने पड़ते थे। जहां तक मुझे मालूम है, इस वक्त रोकड़ में एक पैसा भी नहीं है। गद्दी के उत्सव के लिए रुपयों का कोई-न-कोई और प्रबंध करना पड़ेगा। दो ही उपाय हैं—या तो कर्ज लिया जाए, अथवा प्रजा से कर वसूलने के सिवाय ठाकुर साहब और क्या कर सकते हैं?

विशालसिंह—गद्दी के उत्सव के लिए मैं प्रजा का गला नहीं दबाऊंगा। इससे तो यह कहीं अच्छा है कि उत्सव मनाया ही न जाए।

वज्रधर—हुजूर, यह क्या फरमाते हैं? ऐसा भी कहीं हो सकता है?

विशालसिंह—खैर, देखा जाएगा। जरा अंदर जाकर रानियों को भी खुशखबरी दे आऊं।

यह कहकर कुंवर साहब घर में गए। सबसे पहले रोहिणी के कमरे में कदम रखा। वह पीछे की तरफ की खिड़की खोले खड़ी थी। उस अंधकार में उसे अपने भविष्य का रूप खिंचा हुआ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नजर आता था। पति की निष्ठुरता ने आज उसकी मदांध आंखें खोल दी थीं। वह घर २ निकलने की भूल स्वीकार करती थी; लेकिन कुंवर साहब का उसको मनाने न जाना बहुत अखर 'हा था। इस अपराध का इतना कठोर दंड ! ज्यों-ज्यों वह उस स्थिति पर विचार करती थी, उसका अपमानित हृदय और भी तड़प उठता था।

कुंवर साहब ने कमरे में कदम रखते ही कहा—रोहिणी, ईश्वर ने आज हमारी अभिलाषा पूरी की है। जिस बात की आशा न थी, वह पूरी हो गई।

रोहिणी—तब तो घर में रहना और भी मुश्किल हो जाएगा। जब कुछ न था, तभी मिजाज न मिलता था। अब तो आकाश पर चढ़ जाएगा। काहे को कोई जीने पाएगा?

विशालसिंह ने दुःखित होकर कहा—प्रिये, यह इन बातों का समय नहीं है। ईश्वर को धन्यवाद दो कि उसने हमारी विनय सुन ली।

रोहिणी—जब अपना कोई रहा ही नहीं, तो राजपाट लेकर चाटूंगी?

विशालसिंह को क्रोध आया; लेकिन इस भय से कि बात बढ़ जाएगी, कुछ बोले नहीं। वहां से वसुमती के पास पहुंचे। वह मुंह लपेटे पड़ी हुई थी। जगाकर बोले—क्या सोती हो, उठो, खुशखबरी सुनाएं।

वसुमती—पटरानीजी को तो सुना ही आए, मैं सुनकर क्या करूंगी? अब तक जो बात मन में थी, वह आज तुमने खोल दी। तो यहां बचा हुआ सत्तू खाने वाले पाहुने नहीं हैं?

विशालसिंह—क्या कहती हो? मेरी समझ में नहीं आता।

वसुमती—हां, अभी भोले-नादान बच्चे हो, समझ में क्यों आएगा? गर्दन पर छुरी फेर रहे हो, ऊपर से कहते हो कि तुम्हारी बातें समझ में नहीं आतीं। ईश्वर मौत भी नहीं देते कि इस आए दिन की दांता-किलकिल से छूटती। यह जलन अब नहीं सही जाती। पीछे वाली आगे आई, आगे वाली कोने में। मैं यहां से बाहर पांव निकालती, तो सिर काट लेते, नहीं तो कैसी खुशामदें कर रहे हो। किसी के हाथों में भी जस नहीं; किसी की लातों में भी जस है।

विशालसिंह दुःखी होकर बोले—यह बात नहीं है, वसुमती ! तुम जान-बूझकर नादान बनती हो। मैं इधर ही आ रहा था। ईश्वर से कहता हूं, उसका कमरा अंधेरा देखकर चला गया; देखूं क्या बात है।

वसुमती—मुझसे बातें न बनाओ, समझ गए? तुम्हें तो ईश्वर ने नाहक मूंछें दे दीं। औरत होते तो किसी भले आदमी का घर बसता। जांघ तले की स्त्री सामने से निकल गई और तुम टुकुर-टुकुर ताकते रहे। मैं कहती हूं, आखिर तुम्हें यह क्या हो गया है? उसने कुछ कर-करा तो नहीं दिया? जैसे काया ही पलट हो गई ! जो एक औरत को काबू में नहीं रख सकता, वह रियासत का भार क्या संभालेगा?

यह कहकर उठी और झल्लाई हुई छत पर चली गई। विशालसिंह कुछ देर उदास खड़े रहे, तब रामप्रिया के कमरे में प्रवेश किया। वह चिराग के सामने बैठी कुछ लिख रही थी। पति की आहट पाकर सिर ऊपर उठाया, तो देखा आंखों में आंसू भरे हुए हैं। विशालसिंह ने चौंककर पूछा—क्या बात है, प्रिये, रो क्यों रही हो? मैं तुम्हें एक खुशखबरी सुनाने आया हूं।

रामप्रिया ने आंसू पोंछते हुए कहा—सुन चुकी हूं, मगर आप उसे खुशखबरी कैसे कहते हैं? मेरी प्यारी बहन सदा के लिए संसार से चली गई, क्या यह खुशखबरी है? अब तक और कुछ नहीं था, तो उसकी कुशल-क्षेम का समाचार तो मिलता रहता था। अब क्या मालूम होगा कि उस पर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क्या बीत रही है। दुखिया ने संसार का कुछ सुख न देखा। उसका तो जन्म ही व्यर्थ हुआ। रोते ही रोते उम्र बीत गई।

यह कहकर रामप्रिया फिर सिसक-सिसककर रोने लगी।

विशालसिंह—उन्होंने पत्र में तो लिखा है कि मेरा मन संसार से विरक्त हो गया है।

रामप्रिया—इसको विरक्त होना नहीं कहते। यह तो जिंदगी से घबराकर भाग जाना है। जब आदमी को कोई आशा नहीं रहती, तो वह मर जाना चाहता है। यह विराग नहीं है। विराग ज्ञान से होता है, और उस दशा में किसी को घर से निकल भागने की जरूरत नहीं होती। जिसे फूलों की सेज पर भी नींद नहीं आती थी, वह पत्थर की चट्टानों पर कैसे सोएगी? बहन से बड़ी भूल हुई। क्या अंत समय ठोकरें खाना ही उसके कर्म में लिखा था?

यह कहकर वह फिर सिसकने लगी। विशालसिंह को उसका रोना बुरा मालूम हुआ। बाहर आकर महफिल में बैठ गए। मेडूखां सितार बजा रहे थे। सारी महफिल तन्मय हो रही थी। जो लोग फजलू का गाना न सुन सके थे, वे भी इस वक्त सिर घुमाते और झूमते नजर आते थे। ऐसा मालूम होता था, मानो सुधा का अनंत प्रवाह स्वर्ग की सुनहरी शिलाओं से गले मिल-मिलकर नन्हीं-नन्हीं फुहारों में किलोल कर रहा हो। सितार के तारों से स्वर्गीय तितलियों की कतारें-सी निकल-निकलकर समस्त वायुमंडल में अपने झीने परों से नाच रही थीं। उसका आनंद उठाने के लिए लोगों के हृदय कानों के पास आ बैठे थे।

किंतु इस आनंद और सुधा के अनंत प्रवाह में एक प्राणी हृदय के ताप से विकल हो रहा था। वह राजा विशालसिंह थे, सारी बारात हंसती थी, दूल्हा रो रहा था।

राजा साहब ऐश्वर्य के उपासक थे। तीन पीढ़ियों से उनके पुरखे यही उपासना करते चले आते थे। उन्होंने स्वयं इस देवता की तन-मन से आराधना की थी। आज देवता प्रसन्न हुए थे। तीन पीढ़ियों की अविरल भक्ति के बाद उनके दर्शन मिले थे। इस समय घर के सभी प्राणियों को पवित्र हृदय से उनकी वन्दना करनी चाहिए थी, सबको दौड़-दौड़कर उनके चरणों को धोना और उनकी आरती करनी चाहिए थी। इस समय ईर्ष्या, द्वेष और क्षोभ को हृदय में पालना उस देवता के प्रति घोर अभक्ति थी। राजा साहब को महिलाओं पर दया न आती, क्रोध आता था। सोच रहे थे, जब अभी से ईर्ष्या के मारे इनका यह हाल है, तो आगे क्या होगा। तब तो आए दिन, तलवारें चलेंगी। इनकी सजा यह है कि इन्हें इसी जगह छोड़ दूं। लड़ें जितना लड़ने का बूता हो, रोएं जितनी रोने की शक्ति हो! जो रोने के लिए बनाया गया हो, उसे हंसाने की चेष्टा करना व्यर्थ है। इन्हें राजभवन ले जाकर गले का हार क्यों बनाऊं? उस सुख को, जिसका मेरे जीवन के साथ ही अंत हो जाना है, इन क्रूर क्रीड़ाओं से क्यों नष्ट करूं?

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu.
Acc. No. 5166
Dated 18.2.12

बारह

दूसरा वर्ष भी आधी से ज्यादा बीत गई; लेकिन चक्रधर ने माता-पिता से अहिल्या का वृत्तांत गुप्त ही रखा। जब मुंशीजी पूछते—वहां क्या बात कर आए? आखिर यशोदानन्दन को विवाह करना है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

या नहीं? न आते हैं, न चिट्ठी-पत्री लिखते हैं, अजीब आदमी हैं। न करना हो, तो साफ-साफ कह दें। करना हो, तो उसकी तैयारी करें। ख्वाहमख्वाह झमेले में फंसा रखा है—तो चक्रधर कुछ इधर-उधर की बातें करके टाल जाते। उधर यशोदानन्दन बार-बार लिखते, तुमने मुंशीजी से सलाह की या नहीं। अगर तुम्हें उनसे कहते शर्म आती हो, तो मैं आकर कहूं? आखिर इस तरह कब तक समय टालोगे? अहिल्या तुम्हारे सिवा किसी और से विवाह न करेगी, यह मानी हुई बात है। फिर उसे वियोग का व्यर्थ क्यों कष्ट देते हो? चक्रधर इन पत्रों के जवाब में भी यही लिखते कि मैं खुद फिक्र में हूं। ज्यों ही मौका मिला, जिक्र करूंगा। मुझे विश्वास है कि पिताजी राजी हो जाएंगे।

जन्माष्टमी के उत्सव के बाद मुंशीजी घर आए, तो उनके हौसले बढ़े हुए थे। राजा साहब के साथ-ही-साथ उनके सौभाग्य का सूर्य उदय होता हुआ मालूम होता था। अब वह अपने ही शहर के किसी रईस के घर चक्रधर की शादी कर सकते थे। अब इस बात की जरूरत न होगी कि लड़की के पिता से विवाह का खर्च मांगा जाए। अब वह मनमाना दहेज ले सकते थे और धूमधाम से बारात निकाल सकते थे। राजा साहब जरूर उनकी मदद करेंगे, लेकिन मुंशी यशोदानन्दन को वचन दे चुके थे, इसलिए उनसे एक बार पूछ लेना उचित था। अगर उनकी तरफ से जरा भी विलंब हो, तो साफ कह देना चाहते थे कि मुझे आपके यहां विवाह करना मंजूर नहीं। यों दिल में निश्चय करके एक दिन भोजन करते समय उन्होंने चक्रधर से कहा—मुंशी यशोदानन्दन भी कुछ ऊल-जलूल आदमी हैं! अभी तक कानों में तेल डाले हुए बैठे हैं। क्या समझते हैं कि मैं गरजू हूं?

चक्रधर—उनकी तरफ से तो देर नहीं है। वह तो मेरे खत का इंतजार कर रहे हैं।

वज्रधर—मैं तो तैयार हूं, लेकिन अगर उन्हें कुछ पसोपेश हो तो मैं उन्हें मजबूर नहीं करना चाहता। उन्हें अख्तियार है, जहां चाहे करें। यहां सैकड़ों आदमी मुंह खोले हुए हैं। उस वक्त जो बात थी, वह अब नहीं है। तुम आज उन्हें लिख दो कि या तो इसी जाड़े में शादी कर दें, या कहीं और बातचीत करें। उन्हें समझता क्या हूं! तुम देखोगे कि उनके जैसे आदमी इसी द्वार पर नाक रगड़ेंगे। आदमी को बिगड़ते देर लगती है, बनते देर नहीं लगती। ईश्वर ने चाहा, तो एक बार फिर धूम से तहसीलदारी करूंगा।

चक्रधर ने देखा कि अब अवसर आ गया है। इस वक्त चूके तो फिर न जाने कब ऐसा अच्छा मौका मिले। आज निश्चय ही कर लेना चाहिए। बोले—उन्हें तो कोई पसोपेश नहीं। पसोपेश जो कुछ होगा, आप ही की तरफ से होगा। बात यह है कि कन्या मुंशी यशोदानन्दन की पुत्री नहीं है।

वज्रधर—पुत्री नहीं है! वह तो लड़की ही बताते थे। तुम्हारे सामने की तो बात है। खैर, पुत्री न होगी, भतीजी होगी, नातिन होगी, बहन होगी। मुझे आम खाने से मतलब है या पेड़ गिनने से, जब लड़की तुम्हें पसंद है और वह अच्छा दहेज दे सकते हैं तो मुझे और किसी बात की चिंता नहीं।

चक्रधर—वह लड़की उन्हें किसी मेले में मिली थी। तब उसकी उम्र तीन-चार बरस की थी। उन्हें उस पर दया आ गई, घर लाकर पाला, पढ़ाया, लिखाया।

वज्रधर—(स्त्री से) कितना दगाबाज आदमी है! क्या अभी तक लड़की के मां-बाप का पता नहीं चला?

चक्रधर—जी नहीं, मुंशीजी ने उनका पता लगाने की चेष्टा की, पर कोई फल न निकला।

वज्रधर—अच्छा, तो यह किस्सा है! वह झूठा आदमी है, बना हुआ मक्कार।

निर्मला—जो लोग मीठी बातें करते हैं, उनके पेट में छुरी छिपी रहती है। न जाने किस जाति

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की लड़की है। क्या ठिकाना? तुम साफ-साफ लिख दो, मुझे नहीं करना है। बस !

वज्रधर—मैं तुमसे तो सलाह नहीं पूछता हूं। तुम्हीं ने इतने दिन नेकनामी के साथ तहसीलदारी नहीं की है। मैं खुद जानता हूं, ऐसे धोखेबाज के साथ कैसे पेश आना चाहिए।

खाना खाकर दोनों आदमी उठे, तो मुंशीजी ने कहा—कलम-दवात लाओ, मैं इसी वक्त यशेदानन्दन को खत लिख दूं। बिरादरी का वास्ता न होता, तो हरजाने का दावा कर देता।

चक्रधर आरक्त मुख और संकोचरुद्ध कंठ से बोले—मैं तो वचन दे आया हूं।

निर्मला—चल, झूठा कहीं का, खा मेरी कसम !

चक्रधर—सच अम्मां, तुम्हारे सिर की कसम !

वज्रधर—तो यह क्यों नहीं कहते कि तुमने सब कुछ आप हो आप तय कर लिया है। फिर मुझसे क्या सलाह पूछते हो? आखिर विद्वान् हो, बालिग हो, अपना भला-बुरा सोच सकते हो, मुझसे पूछने की जरूरत ही क्या ! लेकिन तुमने लाख एम॰ ए॰ पास कर लिया हो, वह तजुरबा कहां से लाओगे, जो मुझे है? रीझ गए ! मगर याद रखो, स्त्री में सुंदरता ही सबसे बड़ा गुण नहीं है। मैं तुम्हें हरगिज यह शादी न करने दूंगा।

चक्रधर—अगर और लोग भी यही सोचने लगे तो सोचिए, उस बालिका की क्या दशा होगी?

वज्रधर—तुम कोई शहर के काजी हो? तुमसे मतलब? बहुत होगा, जहर खा लेगी। तुम्हीं को उसकी सबसे ज्यादा फिक्र क्यों है? सारा देश तो पड़ा हुआ है।

चक्रधर—अगर दूसरों को अपने कर्त्तव्य का विचार न हो, तो इसका यह मतलब नहीं कि मैं भी अपने कर्त्तव्य का विचार न करूं।

वज्रधर—कैसी बेतुकी बातें करते हो, जी ! जिस लड़की के मां-बाप का पता नहीं, उससे विवाह करके क्या खानदान का नाम डुबाओगे? ऐसी बात करते हुए तुम्हें शर्म भी नहीं आती?

चक्रधर—मेरा खयाल है कि स्त्री हो या पुरुष, गुण और स्वभाव ही उसमें मुख्य वस्तु है। इसके सिवा और सभी बातें गौण हैं।

वज्रधर—तुम्हारे सिर नई रोशनी का भूत तो नहीं सवार हुआ था? एकाएक यह क्या कायापलट हो गई?

चक्रधर—मेरी सबसे बड़ी अभिलाषा तो यही है कि आप लोगों की सेवा करता जाऊं, आपकी मर्जी के खिलाफ कोई काम न करूं, लेकिन सिद्धांत के विषय में मजबूर हूं।

वज्रधर—सेवा करना तो नहीं चाहते, मुंह में कालिख लगाना चाहते हो; मगर याद रखो, तुमने यह विवाह किया तो अच्छा न होगा। ईश्वर वह दिन न लाए कि मैं अपने कुल में कलंक लगते देखूं।

चक्रधर—तो मेरा भी यही निश्चय है कि मैं और कहीं विवाह न करूंगा।

यह कहते हुए चक्रधर बाहर चले आए और बाबू यशोदानन्दन को एक पत्र लिखकर सारा किस्सा बयान किया। उसके अंतिम शब्द ये थे—'पिताजी राजी नहीं होते और यद्यपि मैं सिद्धांत के विषय में उनसे दबना नहीं चाहता; लेकिन उनसे अलग रहने और बुढ़ापे में उन्हें इतना बड़ा सदमा पहुंचाने की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। मैं बहुत लज्जित होकर आपसे क्षमा चाहता हूं। अगर ईश्वर की यही इच्छा है, तो जीवन-पर्यंत अविवाहित ही रहूंगा, लेकिन यह असंभव है कहीं और विवाह कर लूं। जिस तरह अपनी इच्छा से विवाह करके माता-पिता को दुखी करने की कल्पना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नहीं कर सकता, उसी तरह उनकी इच्छा से विवाह करके जीवन व्यतीत करने की कल्पना मेरे लिए असह्य है।'

इसके बाद उन्होंने दूसरा पत्र अहिल्या के नाम लिखा। यह काम इतना आसान न था; प्रेम-पत्र की रचना कवित्त की रचना से कहीं कठिन होती है। कवि चौड़ी सड़क पर चलता है, प्रेमी तलवार की धार पर। तीन बजे कहीं जाकर चक्रधर यह पत्र पूरा कर पाया। उसके अंतिम शब्द ये थे—'हे प्रिये, मैं अपने माता-पिता का वैसा ही भक्त हूं, जैसा कोई और बेटा हो सकता है। उनकी सेवा में अपने प्राण तक दे सकता हूं, किंतु यदि इस भक्ति और आत्मा की स्वाधीनता में विरोध आ पड़े, तो मुझे आत्मा की रक्षा करने में जरा भी संकोच न होगा। अगर मुझे यह भय न होता कि माता जी अवज्ञा से रो-रोकर प्राण दे देंगी और पिताजी देश-विदेश मारे-मारे फिरेंगे, तो मैं यह असह्य यातना न सहता। लेकिन मैं सब-कुछ तुम्हारे ही फैसले पर छोड़ता हूं, केवल इतनी ही याचना करता हूं कि मुझ पर दया करो।'

दोनों पत्रों को डाकघर में डालते हुए वह मनोरमा को पढ़ाने चले गए।

मनोरमा बोली—आज आप बड़ी जल्दी आ गए; लेकिन देखिए, मैं आपको तैयार मिली। मैं जानती थी कि आप आ रहे होंगे, सच !

चक्रधर ने मुस्कराकर पूछा—तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि मैं आ रहा हूं?

मनोरमा—यह न बताऊंगी; किंतु मैं जान गई थी। अच्छा कहिए तो आपके विषय में कुछ और बताऊं। आज आप किसी-न-किसी बात पर रोए हैं। बताइए, सच है कि नहीं?

चक्रधर ने झेंपते हुए कहा—झूठी बात है। मैं क्यों रोता, कोई बालक हूं?

मनोरमा खिलखिलाकर हंस पड़ी और बोली—बाबूजी, कभी-कभी आप बड़ी मौलिक बात कहते हैं। क्या रोना और हंसना बालकों ही के लिए है? जवान और बूढ़े नहीं रोते?

चक्रधर पर उदासी छा गई। हंसने की विफल चेष्टा करके बोले—तुम चाहती हो कि मैं तुम्हारे दिव्य ज्ञान की प्रशंसा करूं? वह मैं न करूंगा।

मनोरमा—अन्याय की बात दूसरी है; लेकिन आपकी आंखें कहे देती हैं कि आप रोए हैं ! (हंसकर) अभी आपने यह विद्या नहीं पढ़ी, जो हंसी को रोने का और रोने को हंसी का रूप दे सकती है।

चक्रधर—क्या आजकल तुम उस विद्या का अभ्यास कर रही हो?

मनोरमा—कर तो नहीं रही हूं, पर करना चाहती हूं।

चक्रधर—नहीं मनोरमा, तुम वह विद्या न सीखना; मुलम्मे की जरूरत सोने को नहीं होती।

मनोरमा—होती है, बाबूजी, होती है। इससे सोने का मूल्य चाहे न बढ़े; पर चमक बढ़ जाती है। आपने महारानी की तीर्थयात्रा का हाल तो सुना ही होगा। अच्छा बताइए, आप इस रहस्य को समझते हैं?

चक्रधर—क्या इसमें भी कोई रहस्य है?

मनोरमा—और नहीं क्या ! मैं परसों रात को बड़ी देर तक वहीं थी ! हर्षपुर के राजकुमार आए हुए थे। उन्हीं के साथ गई हैं।

चक्रधर—खैर होगा। तुमने क्या काम किया है? लाओ, देखूं।

मनोरमा—एक छोटा-सा लेख लिखा है; पर आपको दिखाते शर्म आती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चक्रधर—तुम्हारे लेख बहुत अच्छे होते हैं। शर्म की क्या बात है?

मनोरमा ने सकुचाते हुए अपना लेख उनके सामने रख दिया और वहां से उठकर चली गई। चक्रधर ने लेख पढ़ा, तो दंग रह गए। विषय था—ऐश्वर्य से सुख ! वे क्या हैं? काल पर विजय, लोकमत पर विजय, आत्मा पर विजय। लेख में इन्हीं तीनों अंगों की विस्तार के साथ व्याख्या की गई थी। चक्रधर उन विचारों की मौलिकता पर मुग्ध तो हुए; पर इसके साथ ही उन्हें उनकी स्वच्छन्दता पर खेद भी हुआ। ये भाव किसी व्यंग्य में तो उपयुक्त हो सकते थे, लेकिन एक विचारपूर्ण निबंध में शोभा न देते थे। उन्होंने लेख समाप्त करके रखा ही था कि मनोरमा लौट आई और बोली—हाथ जोड़ती हूं बाबूजी, इस लेख के विषय में कुछ न पूछिएगा, मैं इसी के भय से चली गई थी।

चक्रधर—पूछना तो बहुत कुछ चाहता था, लेकिन तुम्हारी इच्छा नहीं है, तो न पूछूंगा। केवल इतना बता दो कि ये विचार तुम्हारे मन में क्यों कर आए। ऐश्वर्य का सुख विहार और विलास तो नहीं, यह तो ऐश्वर्य का दुरुपयोग है। यह तो व्यंग्य मालूम होता है।

मनोरमा—आप जो समझिए।

चक्रधर—तुमने क्या समझकर लिखा है?

मनोरमा—जो कुछ आंखों देखा, वही लिखा।

यह कहकर मनोरमा ने वह लेख उठा लिया और तुरंत फाड़कर खिड़की के बाहर फेंक दिया। चक्रधर हां-हां करते रह गए। जब वह फिर अपनी जगह पर आकर बैठी, तो चक्रधर ने गंभीर स्वर से कहा—तुम्हारे मन में ऐसे कुत्सित विचारों को स्थान पाता देखकर मुझे दुःख होता है।

मनोरमा ने सजल नयन होकर कहा—अब मैं ऐसा लेख कभी न लिखूंगी।

चक्रधर—लिखने की बात नहीं है। तुम्हारे मन में ऐसे भाव आने ही न चाहिए। काल पर हम विजय पाते हैं, अपनी सुकीर्ति से, यज्ञ से, व्रत से। परोपकार ही अमरत्व प्रदान करता है। काल पर विजय पाने का अर्थ यह नहीं है कि कृत्रिम साधनों से भोग-विलास में प्रवृत्त हों, वृद्ध होकर जवान बनने का स्वप्न देखें और अपनी आत्मा को धोखा दें। लोकमत पर विजय पाने का अर्थ है, अपने सद्विचारों और सत्कर्मों से जनता का आदर और सम्मान प्राप्त करना। आत्मा पर विजय पाने का आशय निर्लज्जता या विषयवासना नहीं, बल्कि इच्छाओं का दमन करना और कुवृत्तियों को रोकना है। यह मैं नहीं कहता कि तुमने जो कुछ लिखा है, वह यथार्थ नहीं है। उनकी नग्न यथार्थता ही ने उन्हें इतना घृणित बना दिया है। यथार्थ का रूप अत्यंत भयंकर होता है। अगर हम यथार्थ को ही आदर्श मान लें तो संसार नरक के तुल्य हो जाए। हमारी दृष्टि मन की दुर्बलता पर पड़नी चाहिए। बल्कि दुर्बलताओं में भी सत्य और सुंदरता की खोज करनी चाहिए। दुर्बलता की ओर हमारी प्रवृत्ति स्वयं इतनी बलवती है कि उसे उधर ढकेलने की जरूरत नहीं। ऐश्वर्य का एक सुख और है, जिसे तुमने न जाने क्यों छोड़ दिया? जानती हो, वह क्या है?

मनोरमा—अब उसकी और व्याख्या करके मुझे लज्जित न कीजिए।

चक्रधर—तुम्हें लज्जित करने के लिए नहीं, तुम्हारा मनोरंजन करने के लिए बताता हूं। पुरानी बातों को भूल जाना है। ऐश्वर्य पाते ही हमें अपना पूर्व जीवन विस्मृत हो जाता है। हम अपने पुराने हमजोलियों को नहीं पहचानते। ऐसा भूल जाते हैं, मानो कभी देखा ही न था। मेरे जितने धनी मित्र थे, वे मुझे भूल गए। कभी सलाम करता हूं, तो हाथ तक नहीं उठाते। ऐश्वर्य का यह एक खास

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लक्षण है। कौन कह सकता है कि कुछ दिनों के बाद तुम्हीं मुझे न भूल जाओगी !

मनोरमा—मैं आपको भूल जाऊंगी ! असंभव है। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि पूर्व जन्म में मेरा और आपका किसी-न-किसी रूप में साथ था। पहले ही दिन से मुझे आपसे इतनी श्रद्धा हो गई, मानो पुराना परिचय हो। मैं जब कभी कोई बात सोचती हूं, तो आप उसमें अवश्य पहुंच जाते हैं। अगर ऐश्वर्य पाकर आपको भूल जाने की संभावना हो तो मैं उसकी ओर आंख उठाकर भी न देखूंगी।

चक्रधर ने मुस्कराकर कहा—जब हृदय यही रहे तब तो।

मनोरमा—यही रहेगा। देख लीजिएगा, मैं मरकर भी आपको नहीं भूल सकती।

इतने में ठाकुर हरिसेवक आकर बैठ गए। आज वह बहुत प्रसन्नचित्त मालूम होते थे। अभी थोड़ी ही देर पहले राजभवन से लौटकर आए थे। रात को नशा जमाने का अवसर न मिला था, उसकी कसर इस वक्त पूरी कर ली थी। आंखें चढ़ी हुई थीं। चक्रधर से बोले—आपने कल महाराजा साहब के यहां उत्सव का प्रबंध जितनी सुंदरता से किया, उसके लिए आपको बधाई देता हूं। आप न होते, तो सारा खेल बिगड़ जाता। महाराजा साहब बड़े ही उदार हैं। अब तक मैं उनके विषय में कुछ और ही समझे हुए था। कल उनकी उदारता और सज्जनता ने मेरा संशय दूर कर दिया। आपसे तो बिल्कुल मित्रों का-सा बर्ताव करते हैं।

चक्रधर—जी हां, अभी तक तो उनके बारे में कोई शिकायत नहीं है।

हरिसेवक—महाराज को एक प्राइवेट सेक्रेटरी की जरूरत तो पड़ेगी ही। आप कोशिश करें तो आपको अवश्य ही वह जगह मिल जाएगी। आप घर के आदमी हैं; आपके हो जाने से बड़ा इत्मीनान हो जाएगा। एक सेक्रेटरी के बगैर महाराजा साहब का कार्य नहीं चल सकता। कहिए तो जिक्र करूं?

चक्रधर—जी नहीं, अभी तो मेरा इरादा कोई स्थायी नौकरी करने का नहीं है; दूसरे, मुझे विश्वास भी नहीं है कि मैं उस काम को संभाल सकूंगा।

हरिसेवक—अजी, काम करने से सब आ जाता है और आपकी योग्यता मेरे सामने है। मनोरमा को पढ़ाने के लिए कितने ही मास्टर आए, कोई भी दो-चार महीने से ज्यादा न ठहरा। आप जब से आए हैं, इसने बहुत खासी तरक्की कर ली है। मैं अब तक आपकी तरक्की नहीं कर सका, इसका मुझे खेद है। इस महीने से आपको पचास रुपये महीने मिलेंगे, यद्यपि मैं इसे भी आपकी योग्यता और परिश्रम को देखते हुए बहुत कम समझता हूं।

लौंगी देवी भी आ पहुंची। कही-बदी बात थी। ठाकुर साहब का समर्थन करके बोली—देवता रूप हैं, देवता रूप ! मेरी तो इन्हें देखकर भूख-प्यास बंद हो जाती है।

हरिसेवक—तो तुम इन्हीं को देख लिया करो, खाने का कष्ट न उठाना पड़े।

लौंगी—मेरे ऐसे भाग्य कहां ! क्यों बेटा, तुम नौकरी क्यों नहीं कर लेते?

चक्रधर—जितना आप देती हैं, मेरे लिए उतना ही काफी है।

लौंगी—इसी से शादी-ब्याह नहीं करते? अबकी लाला (वज्रधर) आते हैं, तो उनसे कहती हूं, लड़के को कब तक छूटा रखोगे?

हरिसेवक—शादी यह खुद ही नहीं करते, वह बेचारे क्या करें ! यह स्वाधीन रहना चाहते हैं।

लौंगी—तो कोई रोजगार क्यों नहीं करते, बेटा?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चक्रधर—अभी इस चरखे में नहीं पड़ना चाहता।

हरिसेवक—यह और ही विचार के आदमी हैं। माया फांस में नहीं पड़ना चाहते।

लौंगी—धन्य है, बेटा, धन्य है ! तुम सच्चे साधु हो।

इस तरह की बातें करके ठाकुर साहब अंदर चले गए। लौंगी भी उनके पीछे-पीछे चली गई। मनोरमा सिर झुकाए दोनों प्राणियों की बातें सुन रही थी और किसी शंका से उसका दिल कांप रहा था। किसी आदमी में स्वभाव के विपरीत आचरण देखकर शंका होती है। आज दादाजी इतने उदार क्यों हो रहे हैं? आज तक इन्होंने किसी को पूरा वेतन भी नहीं दिया, तरक्की करने का जिक्र ही क्या ! आज विनय और दया की मूर्ति क्यों बने जाते हैं, इसमें अवश्य कोई रहस्य है। बाबूजी से कोई कपट लीला तो नहीं करना चाहते हैं? जरूर यही बात है। कैसे इन्हें सचेत कर दूं?

वह यही सोच रही थी कि गुरुसेवकसिंह कंधे पर बंदूक रखे, शिकारी कपड़े पहने एक कमरे से निकल आए और बोले—कहिए, महाशय ! दादाजी तो आज आपसे बहुत प्रसन्न मालूम होते थे।

चक्रधर ने कहा—यह उनकी कृपा है।

गुरुसेवक—कृपा के धोखे में न रहिएगा। ऐसे कृपालु नहीं हैं। इनका मारा पानी भी नहीं मांगता। इस डाइन ने इन्हें चूरा राक्षस बना दिया है। शर्म भी नहीं आती। आपसे जरूर कोई मतलब गांठना चाहते हैं।

चक्रधर ने मुस्कराकर कहा—लौंगी अम्मां से आपका मेल नहीं हुआ?

गुरुसेवक—मेल? मैं उससे मेल करूंगा ! मर जाए, तो कंधा तक न दूं। डाइन है, लंका की डाइन, उसके हथकंडों से बचते रहिएगा। वेतन कभी बाकी न रखिएगा। दादाजी को तो इसने बुद्धू बना छोड़ा है। दादाजी जब किसी पर सख्ती करते हैं, तो तुरंत घाव पर मरहम रखने पहुंच जाती है। आदमी धोखे में आकर समझता है, यह दया और क्षमा की देवी है ! वह क्या जाने कि यही आग लगाने वाली है और बुझाने वाली भी। इसका चरित्र समझने के लिए मनोविज्ञान के किसी बड़े पंडित की जरूरत है।

चक्रधर ने आकाश की ओर देखा, तो घटा घिर आई थी। पानी बरसा ही चाहता था। उठकर बोले—आप इस विद्या में बहुत कुशल मालूम होते हैं।

जब वह बाहर निकल गए, तो गुरुसेवक ने मनोरमा से पूछा—आज दोनों इन्हें क्या पढ़ा रहे थे?

मनोरमा—कोई खास बात तो नहीं थी।

गुरुसेवक—यह महाशय भी बने हुए मालूम होते हैं। सरल जीवन वालों से बहुत घबराता हूं। जिसे यह राग अलापते देखो, समझ जाओ कि या तो उसके लिए अंगूर खट्टे हैं, या स्वांग रचकर कोई बड़ा शिकार मारना चाहता है।

मनोरमा—बाबूजी उन आदमियों में नहीं हैं।

गुरुसेवक—तुम क्या जानो ! ऐसे गुरुघंटालों को मैं खूब पहचानता हूं।

मनोरमा—नहीं भाई साहब, बाबूजी के विषय में आप धोखा खा रहे हैं। महाराजा साहब इन्हें अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बनाना चाहते हैं, लेकिन वह मंजूर नहीं करते।

गुरुसेवक—सच ! उस जगह का वेतन तो चार-पांच सौ से कम न होगा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मनोरमा—इससे क्या कम होगा ! चाहें तो इन्हें अभी वह जगह मिल सकती है। राजा साहब इन्हें बहुत मानते हैं; लेकिन यह कहते हैं, मैं स्वाधीन रहना चाहता हूं। यहां भी अपने घरवालों के बहुत दबाने से आते हैं।

गुरुसेवक—मुझे वह जगह मिल जाय, तो बड़ा मजा आए।

मनोरमा—मैं तो समझती हूं, इसका दुगुना वेतन मिले, तो भी बाबूजी स्वीकार न करेंगे। सोचिए, कितना ऊंचा आदर्श है।

गुरुसेवक—मुझे किसी तरह वह जगह मिल जाती, तो जिंदगी बड़े चैन से कटती।

मनोरमा—अब गांवों का सुधार न कीजिएगा?

गुरुसेवक—वह भी करता रहूंगा, यह भी करता रहूंगा। राजमंत्री होकर प्रजा की सेवा करने का जितना अवसर मिल सकता है, उतना स्वाधीन रहकर नहीं। कोशिश करके देखूं, इसमें तो कोई बुराई नहीं है।

यह कहते हुए वह कमरे में चले गए।

मेघों का दल उमड़ा चला आता था। मनोरमा खिड़की के सामने खड़ी आकाश की ओर भयातुर नेत्रों से देख रही थी। अभी बाबूजी घर न पहुंचे होंगे। पानी आ गया तो जरूर भीग जाएंगे। मुझे चाहिए था कि उन्हें रोक लेती। भैया न आ जाते, तो शायद वह अभी खुद ही बैठते। ईश्वर करे, वह पहुंच गए हों।

तेरह

मुद्दत के बाद जगदीशपुर के भाग जागे। राजभवन आबाद हुआ। बरसात में मकानों की मरम्मत न हो सकती थी, इसलिए क्वार तक शहर ही में गुजारा करना पड़ा। कार्तिक लगते ही एक ओर जगदीशपुर के राजभवन की मरम्मत होने लगी, दूसरी ओर गद्दी के उत्सव की तैयारियां शुरू हुईं। शहर से सामान लद-लदकर जगदीशपुर जाने लगा। राजा साहब स्वयं एक बार रोज जगदीशपुर आते; लेकिन रहते शहर में ही। रानियां जगदीशपुर चली गईं थीं और राजा साहब को अब उनसे चिढ़-सी हो गई थी। घंटे-दो घंटे के लिए भी वहां जाते तो सारा समय गृहकलह सुनने में कट जाता था और कोई काम देखने की मुहलत न मिलती थी। रानियों में पहले ही-सी बमचख मची रहती थी। राजा साहब ने जीवन का नया अध्याय शुरू कर दिया था।

राजा साहब ताकीद करते थे कि प्रजा पर जरा भी सख्ती न होने पाए। दीवान साहब से उन्होंने जोर देकर कह दिया कि बिना पूरी मजदूरी दिए किसी से काम न लीजिए, लेकिन यह उनकी शक्ति के बाहर था कि आठों पहर बैठे रहें। उनके पास अगर कोई शिकायत पहुंचती, तो कदाचित् वह राजकर्मचारियों को फाड़ खाते। लेकिन प्रजा सहनशील होती है, जब तक प्याला भर न जाए, वह जबान नहीं खोलती। फिर गद्दी के उत्सव में थोड़ा-बहुत कष्ट होना स्वाभाविक समझकर और भी कोई न बोलता था। अपना काम तो बारहों मास करते ही हैं, मालिक की भी तो कुछ सेवा होनी चाहिए। यह खयाल करके सभी लोग उत्सव की तैयारियों में लगे हुए थे। सुन रखा था कि राजा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहब बड़े दयालु, प्रजावत्सल हैं, इससे लोग खुशी से इस अवसर पर योग दे रहे थे। समझते थे, महीने-दो-महीने का झंझट है, फिर तो चैन ही चैन है। रानी साहब के समय की-सी धांधली तो उनके समय में न होगी।

तीन महीने तक सारी रियासत के बढ़ई, मिस्त्री, दर्जी, चमार, कहार सब दिल तोड़कर काम करते रहे। चक्रधर को रोज खबरें मिलती थीं कि प्रजा पर बड़े-बड़े अत्याचार हो रहे हैं, लेकिन वह राजा साहब से शिकायत करके उन्हें असमंजस में न डालना चाहते थे। अक्सर खुद जाकर मजदूरों और कारीगरों को समझाते थे। पंद्रह ही मील का तो रास्ता था। रेलगाड़ी आध घंटे में पहुंचा देती थी। इस तरह तीन महीने गुजर गए। राजभवन का कलेवर नया हो गया। सारे कस्बे में रोशनी के फाटक बन गए, तिलकोत्सव का विशाल पंडाल तैयार हो गया। चारों तरफ भवन में सफाई और सजावट नजर आती थी। कर्मचारियों को नई वर्दियां बनवा दी गईं। प्रांत भर के रईसों के नाम निमंत्रण-पत्र भेज दिए और रसद का सामान जमा होने लगा। वसंत ऋतु थी, चारों तरफ वसंती रंग की बहार नजर आती थी। राजभवन वसंती रंग से पुताया गया था। पंडाल भी वसंती था। मेहमानों के लिए जो कैम्प बनाए गए थे, वे भी वसंती थे। कर्मचारियों की वर्दियां भी वसंती। दो मील के घेरे में वसंती-ही-वसंती था। सूर्य के प्रकाश से सारा कंचनमय हो जाता था। ऐसा मालूम होता था मानो स्वयं ऋतुराज के अभिषेक की तैयारियां हो रही हैं।

लेकिन अब तक बहुत कुछ काम बेगार से चल गया था। मजूरों को भोजन मात्र मिल जाता था, अब नकद रुपये की जरूरत सामने आ रही थी। राजाओं का आदर-सत्कार और अंग्रेज हुक्काम की दावत-तवाजा तो बेगार में न हो सकती थी ! कलकत्ते से थिएटर की कंपनी बुलाई गई थी। मथुरा की रासलीला मंडली को नेवता दिया गया था। खर्च का तखमीना पांच लाख से ऊपर था। प्रश्न था, ये रुपये कहां से आएं। खजाने में झंझी कौड़ी न थी। असामियों से छमाही लगान पहले ही वसूल किया जा चुका था। कोई कुछ कहता था; कोई कुछ। मुहूर्त्त आता जाता था और कुछ निश्चय न होता था। यहां तक कि केवल पच्चीस दिन और रह गए।

संध्या का समय था। राजा साहब उस्ताद मेडूखां के साथ सितार का अभ्यास कर रहे थे। राज्य पाकर उन्होंने अब तक केवल यही एक व्यसन पाला था। वह कोई नई बात करते हुए डरते थे कि कहीं लोग कहने लगें कि ऐश्वर्य पाकर मतवाला हो गया, अपने को भूल गया। वह छोटे-बड़े सभी से बोलते और यथाशक्ति किसी पहलू पर भी न बिगड़ते थे। मेडूखां इस वक्त उन्हें डांट रहे थे —सितार बजाना कोई मुंह का नेवाला नहीं है—कि दीवान साहब और मुंशीजी आकर खड़े हो गए।

विशालसिंह ने पूछा—कोई जरूरी काम है?

ठाकुर—जरूरी काम न होता, तो हुजूर को इस वक्त क्यों कष्ट देने आता?

मुंशीजी—दीवान साहब तो आते हिचकते थे। मैंने कहा कि इंतजाम की बात में कैसी हिचक? चलकर साफ-साफ कहिए। तब डरते-डरते आए हैं।

ठाकुर—हुजूर, उत्सव को अब केवल एक सप्ताह रह गया है और अभी तक रुपये की कोई सबील नहीं हो सकी। अगर आज्ञा हो, तो किसी बैंक से पांच लाख कर्ज ले लिया जाय।

राजा—हरगिज नहीं। आपको याद है तहसीलदार साहब, मैंने आपसे क्या कहा था? मैंने उस वक्त तो कर्ज ही नहीं लिया, जब कौड़ी-कौड़ी का मोहताज था। कर्ज का तो आप जिक्र ही न करें।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुंशी—हुजूर, कर्ज और फर्ज के रूप में तो केवल जरा-सा अंतर है; पर अर्थ में जमीन और आसमान का फर्क है।

दीवान—तो अब महाराज क्या हुक्म देते हैं?

राजा—ये हीरे-जवाहरात ढेरों पड़े हुए हैं। क्यों न इन्हें निकाल डालिए? किसी जौहरी को बुलाकर उनके दाम लगवाइए!

दीवान—महाराज, इसमें तो रियासत की बदनामी है।

मुंशी—घर के जेवर ही तो आबरू हैं। वे घर से गए और आबरू गई!

राजा—हां, बदनामी तो जरूर है; लेकिन दूसरे उपाय ही क्या हैं?

दीवान—मेरी तो राय है कि असामियों पर हल पीछे दस रुपये चंदा लगा दिया जाय।

राजा—मैं अपने तिलकोत्सव के लिए असामियों पर जुल्म न करूंगा। इससे तो कहीं अच्छा है कि उत्सव ही न हो।

दीवान—महाराज, रियासतों में पुरानी प्रथा है। सब असामी खुशी से देंगे, किसी को आपत्ति न होगी।

मुंशी—गाते-बजाते आएंगे और दे जाएंगे।

राजा—मैं किस मुंह से उनसे रुपये लूं? गद्दी पर बैठ रहा हूं, मेरे उत्सव के लिए असामी क्यों इतना जब्र सहें?

दीवान—महाराज, यह तो परस्पर का व्यवहार है। रियासत भी तो अवसर पड़ने पर हर तरह की सहायता करती है। शादी-गमी में रियासत से लकड़ियां मिलती हैं, सरकारी चरावर में लोगों की गौएं चरती हैं और भी कितनी बातें हैं। जब रियासत को अपना नुकसान उठाकर प्रजा की मदद करनी पड़ती है, तब प्रजा राजा की शादी-गमी में क्यों न शरीक हो?

राजा—अधिकांश असामी गरीब हैं; उन्हें कष्ट होगा।

मुंशी—हुजूर, असामियों को जितना गरीब समझते हैं, उतने गरीब वे नहीं हैं। एक-एक आदमी लड़के-लड़कियों की शादी में हजारों उड़ा देता है। दस रुपये की रकम इतनी ज्यादा नहीं कि किसी को अखर सके। मेरा तो पुराना तजुरबा है। तहसीलदार था, तो हाकिमों को डाली देने के लिए बात-की-बात में हजारों रुपये वसूल कर लेता था।

राजा—मैं असामियों को किसी भी हालत में कष्ट नहीं देना चाहता। इससे तो कहीं अच्छी बात होगी कि उत्सव को कुछ दिनों के लिए स्थगित कर दिया जाय; लेकिन अगर आप लोगों का विचार है कि किसी को कष्ट न होगा और लोग खुशी से मदद देंगे तो आप अपनी जिम्मेदारी पर वह काम कर सकते हैं। मेरे कानों तक कोई शिकायत न आए।

दीवान—हुजूर, शिकायत तो थोड़ी-बहुत हर हालत में होती ही है। इससे बचना असंभव है। अगर कोई शिकायत न होगी, तो यही होगी कि महाराज साहब की गद्दी हो गई और हमारा मुंह भी न मीठा हुआ, कोई जलसा तक न हुआ। अगर किसी से कुछ न लीजिए, केवल तिलकोत्सव में शरीक होने के लिए बुलाइए, तब भी लोग शिकायत से बाज न आएंगे। नेवते को तलबी समझेंगे और रोएंगे कि हम अपने काम-धंधे छोड़कर कैसे जाएं। रोना तो उनकी घुट्टी में पड़ गया है। रियासत का कोई नौकर जा पड़ता है, उसे उपले तक नहीं मिलते, और कोई धूर्त जटा बढ़ाकर पहुंच जाता है, तो महीनों उसका आदर-सत्कार होता है। राजा और प्रजा का संबंध ही ऐसा है। प्रजाहित के लिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी कोई काम कीजिए, तो उसमें भी लोगों को शंका होती है। हल पीछे दस रुपये बैठा देने से कोई पांच लाख रुपये हाथ आएंगे। रही रसद: वह तो बेगार में मिलती है। आपकी अनुमति की देर है।

मुंशी—जब सरकार ने यह कह दिया कि आप अपनी जिम्मेदारी पर वसूल कर सकते हैं, तो अनुमति का क्या प्रश्न? इसका मतलब तो इतना गहरा नहीं है कि बहुत डूबने से मिले। आप महाजनों को देखते हैं, मालिक मुनीम को लिखता है कि फ़लां काम के लिए रुपया दे दो, मुनीम हीले-हवाले करके टाल देता है। हमारी अंग्रेजी सरकार ही को देखिए। ऊपर वाले हुक्काम कितनी मुलायमियत से बातें करते हैं; लेकिन उनके मातहत् खूब जानते हैं किसके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए। चलिए, अब हुजूर को तकलीफ न दीजिए। मेडूंखां, बस यही समझ लो कि निहाल हो जाओगे।

राजा—बस, इतना ख्याल रखिए कि किसी को कष्ट न होने पाए। आपको ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि असामी लोग सहर्ष आकर शरीक हों।

मुंशी—हुजूर का फरमाना बहुत वाजिब है। अगर हुजूर सख्ती करने लगेंगे, तो उन गरीबों के आंसू कौन पोंछेगा, उन्हें तसकीन कौन देगा? हुकूमत करने के लिए तो आपके गुलाम हम हैं। सूरज जलाता भी है, रोशनी भी देता है। जलाने वाले हम हैं, रोशनी देने वाले आप हैं। दुआ का हक आपका है, गालियों का हक हमारा। चलिए, दीवान साहब, अब हुजूर को सितार का शौक करने दीजिए।

दोनों आदमी यहां से चले, तो दीवान साहब ने कहा—ऐसा न हो कि शोरगुल मचे, हमारी जान आफत में फंसे।

मुंशीजी बोले—यह सब बगुलाभगतपन है। मैं तो रुख पहचानता हूं। गरीबों का जिक्र ही क्या, हमें कभी एक पैसे का नुकसान हो जाता है, तो कितना बुरा मालूम होता है। जिससे आप दस रुपये ऐंठ लेंगे, क्या वह खुशी से देगा? इसका मतलब यही है कि धड़ल्ले से रुपये की वसूली कीजिए। किसी राजा ने आज तक न कहा होगा कि प्रजा को सताकर रुपये वसूल कीजिए। लेकिन चंदे जब वसूल होने लगे और शोर मचा, तो किसी ने कर्मचारियों की तम्बीह नहीं की। यही हमेशा से होता है और यही अब भी हो रहा है।

हुक्म मिलने की देर थी। कर्मचारियों के हाथ तो खुजला रहे थे। वसूली का हुक्म पाते ही बाग-बाग हो गए। फिर तो वह अंधेर मचा कि सारे इलाके में कुहराम मच गया। असामियों ने नए राजा साहब से दूसरी आशाएं बांध रखी थीं। यह बला सिर पड़ी, तो झल्ला गए। यहां तक कि कर्मचारियों के अत्याचार देखकर चक्रधर का भी खून उबल पड़ा। समझ गए कि राजा साहब भी कर्मचारियों के पंजे में आ गए। उनसे कुछ कहना-सुनना व्यर्थ है। चारों तरफ लूट-खसोट हो रही थी। गालियां और ठोंक-पीट तो साधारण बात थी। किसी के बैल खोल लिए जाते थे, किसी की गाय छीन ली जाती थी, कितनों ही के खेत कटवा लिए गए। बेदखली और इजाफे की धमकियां दी जाती थीं। जिसने खुशी से दिए, उसका तो दस रुपये ही से गला छूटा। जिसने हीले-हवाले किए, कानून बघारा, उसे दस रुपये के बदले बीस रुपये, तीस रुपये, चालीस रुपये देने पड़े। आखिर विवश होकर एक दिन चक्रधर ने राजा साहब से शिकायत कर ही दी।

राजा साहब ने त्यौरी बदलकर कहा—मेरे पास तो आज तक कोई असामी शिकायत करने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नहीं आया। जब उनको कोई शिकायत नहीं है, तो आप उनकी तरफ से क्यों वकालत कर रहे हैं?

चक्रधर—आपको असामियों का स्वभाव तो मालूम होगा? उन्हें आपसे शिकायत करने का क्योंकर साहस हो सकता है?

राजा—यह मैं नहीं मानता। असामी ऐसे बे-सींग की गाय नहीं होते। जिसको किसी बात की अखर होती है, वह चुपचाप नहीं बैठा रहता। उसका चुप रहना ही इस बात का प्रमाण है कि उसे अखर नहीं, या है तो बहुत कम। आपके पिताजी और दीवान साहब यही दो आदमी कर्ता-धर्ता हैं, आप उनसे क्यों नहीं कहते?

चक्रधर—तो आपसे कोई आशा न रखूं?

राजा—मैं अपने कर्मचारियों से अलग कुछ नहीं हूं।

चक्रधर ने इसका और कुछ जवाब न दिया। दीवान साहब या मुंशीजी से इस मामले में सहायता की याचना करना अंधे के आगे रोना था। क्रोध तो ऐसा आया कि इसी वक्त जगदीशपुर चलूं और सारे आदमियों से कह दूं, अपने घर जाओ। देखूं, लोग क्या करते हैं। समिति के सेवकों के साथ रियासत में दौरा करना शुरू करूं, देखूं, लोग कैसे रुपये वसूल करते हैं; पर राजा साहब की बदनामी का ख्याल करके रुक गए। अभी राजभवन ही में थे कि मुंशीजी अपना पुराना तहसीलदारी के दिनों का ओवरकोट डाले, मोटरकार से उतरे और इन्हें देखकर बोले—तुम यहां क्या करने आए थे? अपने लिए कुछ नहीं कहा?

चक्रधर—अपने लिए क्या कहता? सुनता हूं, रियासत में बड़ा अंधेर मचा हुआ है।

वज्रधर—यह सब तुम्हारे आदमियों की शरारत है। तुम्हारी समिति के आदमी जा-जाकर असामियों को भड़काते रहे हैं। इन्हीं लोगों की शह पाकर वे सब शेर हो गए हैं, नहीं तो किसी की मजाल न थी कि चूं करता। न जाने तुम्हारी अक्ल कहां गई है!

चक्रधर—हम लोग तो केवल इतना ही चाहते हैं कि असामियों पर सख्ती न की जाय और आप लोगों ने इसका वादा भी किया था; फिर मारधाड़ क्यों हो रही है?

वज्रधर—इसीलिए कि असामियों से कह दिया गया है कि राजा साहब किसी पर जब्र नहीं करना चाहते। जिसकी खुशी हो दे, जिसकी खुशी हो न दे। तुम अपने आदमियों को बुला लो, फिर देखो, कितनी आसानी से काम हो जाता है। नशे का जोश ताकत नहीं है। ताकत वह है, जो अपने बदन में हो। जब तक प्रजा खुद न संभलेगी, कोई उसकी रक्षा नहीं कर सकता। तुम कहां-कहां उन पर हाथ रखते फिरोगे? चौकीदार से लेकर बड़े हाकिम तक सभी उसके दुश्मन हैं। मान लो, हमने छोड़ दिया; मगर थानेदार है, पटवारी है, कानूनगो है, माल के हुक्काम हैं, सभी उनकी जान के गाहक हैं। तुम फकीर बन जाओ, सारी दुनिया तो तुम्हारे लिए संन्यास न लेगी? तुम आज ही अपने आदमियों को बुला लो। अब तक तो हम लोग उनका लिहाज करते आए हैं, लेकिन रियासत के सिपाही उनसे बेतरह बिगड़े हुए हैं। ऐसा न हो कि मार-पीट हो जाय।

चक्रधर यहां से अपने आदमियों को बुला लेने का वादा करके तो चले, लेकिन दिल में आगा-पीछा हो रहा था। कुछ समझ में न आता था कि क्या करना चाहिए। इसी सोच में पड़े हुए मनोरमा के यहां चले गए।

मनोरमा उन्हें उदास देखकर बोली—आप बहुत चिंतित से मालूम होते हैं? घर में तो सब कुशल है?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चक्रधर—हां, कोई बात नहीं। लाओ देखूं, तुमने क्या काम किया है?

मनोरमा—आप मुझसे छिपा रहे हैं। आप जब तक न बताएंगे, मैं कुछ न पढ़ूंगी। आप तो यों कभी मुरझाए न रहते थे।

चक्रधर—क्या करूं मनोरमा, अपनी दशा देखकर कभी-कभी रोना आ जाता है। सारा देश गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है, फिर भी हम अपने भाइयों की गर्दन पर छुरी फेरने से बाज नहीं आते। इतनी दुर्दशा पर भी हमारी आंखें नहीं खुलतीं। जिनसे लड़ना चाहिए, उनके तो तलुवे चाटते हैं और जिनसे गले मिलना चाहिए, उनकी गर्दन दबाते हैं और यह सारा जुल्म हमारे पढ़े-लिखे भाई ही कर रहे हैं! जिसे कोई अख्तियार मिल गया, वह फौरन दूसरों को पीसकर पी जाने की फिक्र करने लगता है। विद्या ही से विवेक होता है; पर जब रोग असाध्य हो जाता है, तो दवा भी उस पर विष का काम करती है। हमारी शिक्षा ने हमें पशु बना दिया है। राजा साहब की जात से लोगों को कैसी-कैसी आशाएं थीं; लेकिन अभी गद्दी पर बैठे छह महीने भी नहीं हुए और इन्होंने भी वही पुराना ढंग अख्तियार कर लिया है। प्रजा से डंडों के जोर से रुपये वसूल किए जा रहे हैं और कोई फरियाद नहीं सुनता। सबसे ज्यादा रोना तो इस बात का है कि दीवान साहब और मेरे पिताजी ही राजा साहब के मंत्री और अत्याचार के मुख्य कारण हैं।

सरल हृदय प्राणी अन्याय की बात सुनकर उत्तेजित हो जाते हैं। मनोरमा ने उद्दंड होकर कहा—आप असामियों से क्यों नहीं कहते कि किसी को एक कौड़ी भी न दें। कोई देगा ही नहीं, तो ये लोग कैसे ले लेंगे?

चक्रधर को हंसी आ गई। बोले—तुम मेरी जगह होतीं, तो असामियों को मना कर देतीं?

मनोरमा—अवश्य। खुल्लमखुल्ला कहती, खबरदार, राजा के आदमियों को कोई एक पैसा भी न दे। मैं तो राजा के आदमियों को इतना पिटवाती कि फिर इलाके में जाने का नाम ही न लेते।

चक्रधर ने फिर हंसकर कहा—और दीवान साहब से क्या कहतीं?

मनोरमा—उनसे भी यही कहती कि आप चुपके से घर चले जाइए, नहीं तो अच्छा न होगा। आप मेरे पूज्य पिता हैं, मैं आपकी सेवा करूंगी; लेकिन आपको दूसरों का खून न चूसने दूंगी। गरीबों को सताकर अपना घर भर लिया तो कौन-सा बड़ा तीर मार लिया। वीर तो तब बखानूं, जब सबलों से ताल ठोंकिए। अभी गोरा आ जाए, तो घर में दुम दबाकर भागेंगे। उस वक्त जबान न खुलेगी। उससे जरा आंखें मिलाइए तो देखिए, ठोकर जमाता है या नहीं! उससे तो बोलने की हिम्मत नहीं, बेचारे दीनों को सताते फिरते हैं। यह तो मरे हुए को मारना हुआ। हुकूमत इसे नहीं कहते। यह चोरी भी नहीं है। यह केवल मुर्दे और गिद्ध का तमाशा है।

चक्रधर ये बातें सुनकर पुलकित हो उठे। मुस्कराकर बोले—अगर दीवान साहब खफा हो जाते?

मनोरमा—तो खफा हो जाते! किसी के खफा होने के डर से सच्ची बात पर पर्दा थोड़ा ही डाला जाता है! अगर आज वह आ गए, तो मैं आज ही जिक्र करूंगी।

यह कहते-कहते मनोरमा कुछ चिंतित-सी हो गई और चक्रधर भी विचार में पड़ गए। दोनों के मन में एक ही भाव उठ रहे थे—इसका फल क्या होगा? वह सोचती थी, कहीं राजाजी ने गुस्से में आकर बाबूजी को अलग कर दिया तो? चक्रधर सोच रहे थे, यह शंका मुझे क्यों इतना भयभीत कर रही है! इस विषय पर फिर कुछ बातचीत न हुई; लेकिन चक्रधर यहां से पढ़ाकर चले, तो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उनके मन में प्रश्न हो रहा था—क्या अब यहां मेरा आना उचित है? आज उन्होंने विवेक के प्रकाश में अपने अंतस्तल को देखा तो उसमें कितने ही ऐसे भाव छिपे हुए थे, जिन्हें यहां न रहना चाहिए था। रोग जब तक कष्ट न देने लगे, हम उसकी परवाह नहीं करते ! बालक की गालियां हंसी में उड़ जाती हैं; लेकिन सयाने लड़के की गालियां कौन सहेगा?

चौदह

गद्दी के कई दिन पहले ही से मेहमानों का आना शुरू हो गया और तीन दिन बाकी ही थे कि सारा कैम्प भर गया। दीवान साहब ने कैम्प ही में बाजार लगवा दिया था, वहीं रसद-पानी का भी इंतजाम था। राजा साहब स्वयं मेहमानों की खातिरदारी करते रहते थे; किंतु जमघट बहुत बड़ा था। आठों पहर हड़बोंग-सा मचा रहता था।

बड़े-बड़े नरेश आए थे। कोई चुने हुए दरबारियों के साथ, कोई लाव-लश्कर लिए हुए। कहीं ऊदी वर्दियों की बहार थी, तो कहीं केसरिए बाने की। कोई रत्नजटित आभूषण पहने, कोई अंग्रेजी सूट से लैस; कोई इतना विद्वान् कि विद्वानों में शिरोमणि, कोई इतना मूर्ख कि मूर्ख मंडली की शोभा ! कोई पांच घंटे स्नान करता था और कोई सात घंटे पूजा। कोई दो बजे रात को सोकर उठता था, कोई दो बजे दिन को। रात-दिन तबले ठनकते रहते थे। कितने महाशय ऐसे भी थे, जिनका दिन अंग्रेजी कैम्प का चक्कर लगाने ही में कटता था। दो-चार सज्जन प्रजावादी भी थे। चक्रधर और उनकी टुकड़ी के लोग इन लोगों का सेवा-सम्मान विशेष रूप से करते थे; किंतु विद्वान् या मूर्ख, राजसत्ता के स्तम्भ या लोकसत्ता के भक्त, सभी अपने को ईश्वर का अवतार समझते थे, सभी गरूर के नशे के मतवाले, सभी विलासिता में डूबे हुए। एक भी ऐसा नहीं, जिसमें चरित्रबल हो, सिद्धांत प्रेम हो, मर्यादा भक्ति हो।

नरेशों की सम्मान-लालसा पग-पग पर अपना जलवा दिखाती थी। वह मेरे आगे क्यों चले, उन्हें मेरे पीछे रहना चाहिए था। उनका पूर्वज हमारे पुरखाओं का करदाता था। बातें करने में, अभिवादन में, भोजन करने के लिए बैठने में, महफिल में, पान और इलायची लेने में, यही अनैक्य और द्वेष का भाव प्रकट होता रहता था। राजा विशालसिंह और कर्मचारियों का बहुत-सा समय चिरौरी-विनती करने में कट जाता था। कभी-कभी तो इन महान् पुरुषों को शांत करने के लिए राजा साहब को हाथ जोड़ना और उनके पैरों पर सिर रखना पड़ता था। दिल में पछताते थे कि व्यर्थ ही यह आडंबर रचा। भगवान् किसी भांति कुशल से यह उत्सव समाप्त कर दें, अब कान पकड़े कि ऐसी भूल न होगी ! किसी अनिष्ट की शंका उन्हें हरदम उद्विग्न रखती थी। मेहमानों से तो कांपते रहते थे; पर अपने आदमियों से जरा-जरा-सी बात पर बिगड़ जाते थे, जो मुंह में आता, बक डालते थे।

अगर शांति थी तो अंग्रेजी कैम्प में। न नौकरों की तकरार थी, न बाजारवालों से जूती-पैजार थी। सबकी चाय का एक समय, डिनर का एक समय, विश्राम का एक समय, मनोरंजन का एक समय। सब एक साथ थियेटर देखते, एक साथ हवा खाने जाते। न बाहर गंदगी थी, न मन में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मलिनता। नरेशों के कैम्प में पराधीनता का राज्य था और अंग्रेजी कैम्प में स्वाधीनता का। स्वाधीनता सद्गुणों को जगाती है, पराधीनता दुर्गुणों को।

उधर रनिवास में भी खूब जमघट था। महिलाओं का रंग-रूप देखकर आंखों में चकाचौंध हो जाती थी। रत्न और कंचन ने उनकी कांति को और भी अलंकृत कर दिया था। कोई पारसी वेश में थी, कोई अंग्रेजी वेश में और कोई अपने ठेठ स्वदेशी ठाट में। युवतियां इधर-उधर चहकती फिरतीं, प्रौढ़ाएं आंखें मटका रही थीं। वासना उम्र के साथ बढ़ती जाती है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण आंखों के सामने था। अंग्रेजी फैशनवालियां औरों को गंवारिनें समझती थीं और गंवारिनें उन्हें कुल्टा कहती थीं। मजा यह था कि सभी महिलाएं ये बातें अपनी महरियों और लौडियों से कहने में भी संकोच न करती थीं। ऐसा मालूम होता था कि ईश्वर ने स्त्रियों को निंदा और परिहास के लिए ही रचा है। मन और तन में कितना अंतर हो सकता है, इसका कुछ अनुमान हो जाता था। मनोरमा को महिलाओं के सेवा-सत्कार का भार सौंपा गया था; किंतु उसे यह चरित्र देखने में विशेष आनंद आता था। उसे उनके पास बैठने में घृणा होती थी। हां, जब रानी रामप्रिया को बैठे देखती, तो उनके पास जा बैठती। इतने कांच के टुकड़ों में उसे वही एक रत्न नजर आता था।

मेहमानों के आदर-सत्कार की तो यह धूम थी और वे मजदूर, जो छाती फाड़-फाड़कर काम कर रहे थे, भूखों मरते थे। कोई उनकी खबर तक न लेता था। काम लेने को सब थे, पर भोजन के लिए पूछने वाला कोई न था। चमार पहर रात रहे, घास छीलने जाते, मेहतर पहर रात से सफाई करने लगते, कहार पहर रात से पानी खींचना शुरू करते; मगर कोई उनका पुरसांहाल न था। चपरासी बात-बात पर उन्हें गालियां सुनाते, क्योंकि उन्हें खुद बात-बात पर डांट पड़ती थी। चपरासी सहते थे, क्योंकि उन्हें दूसरों पर अपना गुस्सा उतारने का मौका मिल जाता था। बेगारों से न सहा जाता था, इसीलिए कि उनकी आंतें जलती थीं। दिन भर धूप में जलते, रात भर क्षुधा की आग में। रानी के समय में बेगार इससे भी ज्यादा ली जाती थी; लेकिन रानी को स्वयं खिलाने-पिलाने का खयाल रहता था। बेचारे अब उन दिनों को याद कर-करके रोते थे। क्या सोचते थे, क्या हुआ? असंतोष बढ़ा जाता था। न जाने कब सबके-सब जान पर खेल जाएं, हड़ताल कर दें, न जाने कब बारूद में चिनगारी पड़ जाए, दशा ऐसी भयंकर हो गई थी। राजा साहब को नरेशों ही की खातिरदारी से फुर्सत न मिलती थी, यह सत्य है; किंतु राजा के लिए ऐसे बहाने शोभा नहीं देते। उसकी निगाह चारों तरफ दौड़नी चाहिए। अगर उसमें इतनी योग्यता नहीं, तो उसे राज्य करने का कोई अधिकार नहीं।

संध्या का समय था। चारों तरफ चहल-पहल मची हुई थी। तिलक का मुहूर्त निकट आ गया था। हवन की तैयारियां हो रही थीं। सिपाहियों को वर्दी पहनकर खड़े हो जाने की आज्ञा दे दी गई थी कि सहसा मजदूरों के बाड़े से रोने-चिल्लाने की आवाजें आने लगीं। किसी कैम्प में घास न थी और ठाकुर हरिसेवक हंटर लिए हुए चमारों को पीट रहे थे। मुंशी वज्रधर की आंखें मारे क्रोध के लाल हो रही थीं। कितना अनर्थ है ! सारा दिन गुजर गया और अभी तक किसी कैम्प में घास नहीं पहुंची ! चमारों का यह हौसला ! ऐसे बदमाशों को गोली मार देनी चाहिए।

एक चमार बोला—मालिक, आपको अख्तियार है। मार डालिए, मुदा पेट बांधकर काम नहीं होता।

चौधरी ने हाथ बांधकर कहा—हुजूर, घास तो रात ही को पहुंचा दी गई थी, मैं आप जाकर रखवा आया था। हां, इस बेला अभी नहीं पहुंची। आधे आदमी तो मांदे पड़े हुए हैं, क्या करूं?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुंशी—बदमाश ! झूठ बोलता है, सूअर, डैम फूल, ब्लाडी, रैस्केल, शैतान का बच्चा, अभी पोलो खेल होगा, घोड़े बिना खाए कैसे दौड़ेंगे?

एक युवक ने कहा—हम लोग तो बिना खाए आठ दिन से घास दे रहे हैं, घोड़े क्या, बिना खाए एक दिन भी न दौड़ेंगे? क्या हम घोड़े से भी गए-गुजरे हैं?

चौधरी डंडा लेकर युवक को मारने दौड़ा; पर उसके पहले ही ठाकुर साहब ने झपटकर उसे चार-पांच हंटर सड़ाप-सड़ाप लगा दिए। नंगी देह, चमड़ा फट गया, खून निकल आया।

चौधरी ने युवक और ठाकुर साहब के बीच खड़े होकर कहा—हुजूर, क्या मार ही डालेंगे? लड़का है, कुछ अनुचित मुंह से निकल जाए तो क्षमा करनी चाहिए। राजा को दयावान होना चाहिए।

ठाकुर साहब आपे से बाहर हो रहे थे ! एक चमार का यह हौसला कि उनके सामने मुंह खोल सके। वही हंटर तानकर चौधरी को जमाया। बूढ़ा आदमी, उस पर कई दिन का भूखा, खड़ा भी मुश्किल से हो सकता था। हंटर पड़ते ही जमीन पर गिर पड़ा। बाड़े में हलचल पड़ गई। हजारों आदमी जमा हो गए। कितने ही चमारों ने मारे डर के खुरपी और रस्सी उठा ली थीं और घास छीलने जा रहे थे। चौधरी पर हंटर पड़ते देखा, तो रस्सी-खुरपी फेंक दी और आकर चौधरी को उठाने लगे।

ठाकुर साहब ने तड़पकर कहा—तुम सब अभी एक घंटे में घास लाओ, नहीं तो एक-एक की हड्डी तोड़ दी जाएगी।

एक चमार बोला—हम यहां काम करने आए हैं, जान देने नहीं आए हैं। एक तो भूखों मरें, दूसरे लात खाएं। हमारा जन्म इसीलिए थोड़े ही हुआ है? जिससे चाहे काम कराइए; हम घर जाते हैं।

ठाकुर साहब फिर हंटर फटकारकर बोले—कहां भागकर जाओगे? गांव में घुसने भी न पाओगे। क्या सरकारी काम को हंसी-खेल समझ लिया है?

चमार—सरकार, अपना गांव ले लें, हम छोड़कर चले जाएंगे।

ठाकुर—खेत छीन लिए जाएंगे। घर गिरा दिए जाएंगे। इस फेर में मत रहना।

चमार—आपको अख्तियार है, जो चाहे करें। हमें अब इस राज्य में नहीं रहना है। कुछ हाथ-पांव थोड़े ही कटाए बैठे हैं। अगर कहीं ठिकाना न लगेगा, तो मिरिच डमरा तो हैं ही।

मुंशी—जिसने बाड़े के बाहर कदम रखा, उसकी शामत आई। तोप पर उड़ा दूंगा।

लेकिन चमारों के सिर पर भूत सवार था। बूढ़े चौधरी को उठाकर सबके सब एक गोल में बाड़े के द्वार की ओर चले। सिपाहियों की कवायद हो रही थी। ठाकुर साहब ने खबर भेजी और बात-की बात में उन सबने आकर बाड़े का द्वार रोक लिया। सभी कैम्पों में खलबली पड़ गई। तरह-तरह की अफवाहें उड़ने लगीं। किसी ने कहा—चमारों ने दीवान साहब को मार डाला। किसी ने उड़ाया—सिपाहियों ने गोली चला दी और पचास चमार जान से मारे गए। चारों तरफ से दौड़-दौड़कर लोग तमाशा देखने आने लगे। बाड़े का द्वार भेड़ों के बाड़े का द्वार बना हुआ था। भीतर भेड़ें थीं, घबराई हुईं। बाहर कुत्ते थे, झल्लाए हुए। भेड़ें लड़ना नहीं जानतीं; पर प्राण भय से भागना जानती हैं। वे उसी रास्ते से निकलेंगी, जो आंखों के सामने है। उस पर कुत्ते हों या शेर, घबराहट में भेड़ों को कुछ नहीं सूझता। सिपाहियों को अपनी वीरता दिखाने का ऐसा अवसर क्यों कभी मिला था ! निहत्थों पर हथियार चलाने से आसान और क्या है? सभी संगीन चढ़ाए तैयार थे कि हुक्म मिले और अपनी निशानेबाजी के जौहर दिखाएं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राजा साहब अपने खेमे में तिलक के भड़कीले-सजीले वस्त्र धारण कर रहे थे। एक आदमी उनकी पाग संवार रहा था। इन वस्त्रों में उनकी प्रतिभा भी चमक उठी थी। वस्त्रों में तेज बढ़ानेवाली इतनी शक्ति है, इसकी उन्हें कभी कल्पना भी न थी। यह खबर सुनी, तो तिलमिला गए। वह अपनी समझ में प्रजा के सच्चे भक्त थे, उन पर कोई अत्याचार न होने देते थे, उनको लूटना नहीं, उनका पालन करना चाहते थे। जब वह प्रजा पर इतना प्राण देते थे, तो क्या प्रजा का धर्म न था कि वह भी उन पर प्राण देती; और फिर शुभ अवसर पर ! जो लोग इतने कृतघ्न हैं, उन पर किसी तरह की रियायत करना व्यर्थ है। दयालुता दो प्रकार की होती है—एक में नम्रता होती है, दूसरी में आत्मप्रशंसा। राजा साहव की दयालुता इसी प्रकार की थी। उन्हें यश की बड़ी इच्छा थी; पर यहां इस शुभ अवसर पर इतने राजाओं-रईसों के सामने ये दुष्ट लोग उनका अपमान करने पर तुले हुए थे। यह उन पाजियों की घोर नीचता थी और उसका जवाब इसके सिवा और कुछ नहीं था कि उन्हें खूब कुचल दिया जाता। सच है, सीधे का मुंह कुत्ता चाटता है। मैं जितना ही इन लोगों को संतुष्ट रखना चाहता हूं, उतने ही ये शेर हो जाते हैं। चलकर अभी उन्हें इसका मजा चखाता हूं। क्रोध से बावले होकर वह अपनी बंदूक लिए खेमे से निकल आए और कई आदमियों के साथ बाड़े के द्वार पर आ पहुंचे।

चौधरी इतनी देर में झाड़-पोंछकर उठ बैठा था। राजा को देखते ही रोकर बोला—दुहाई है महाराज की ! सरकार, बड़ा अंधेर हो रहा है। गरीब लोग मारे जाते हैं।

राजा—तुम सब पहले बाड़े के द्वार से हट जाओ, फिर जो कुछ कहना है, मुझसे कहो। अगर किसी ने बाड़े के बाहर पांव रखा, तो जान से मारा जाएगा। दंगा किया, तो तुम्हारी जान की खैरियत नहीं।

चौधरी—सरकार ने हमको काम करने के लिए बुलाया है कि जान लेने के लिए?

राजा—काम न करोगे, तो जान ली जाएगी।

चौधरी—काम तो आपका करें, खाने किसके घर जाएं?

राजा—क्या बेहूदा बातें करता है, चुप रहो। तुम सबके-सब मुझे बदनाम करना चाहते हो। हमेशा से लात खाते आए हो और वही तुम्हें अच्छा लगता है। मैंने तुम्हारे साथ भलमनसी का बर्ताव करना चाहा था; लेकिन मालूम हो गया कि लातों के देवता बातों से नहीं मानते। तुम नीच हो और नीच लातों के बगैर सीधा नहीं होता। तुम्हारी यही मर्जी है, तो यही सही।

चौधरी—जब लात खाते थे, तब खाते थे, अब न खाएंगे।

राजा—क्यों? अब कौन सुरखाब के पर लग गए हैं?

चौधरी—वह समय ही लद गया है। क्या अब हमारी पीठ पर कोई नहीं कि मार खाते रहें और मुंह न खोलें? अब तो सेवा समिति हमारी पीठ पर है। क्या वह कुछ भी न्याय न करेगी? हमारी राय से मेंबर चुने जाते हैं, क्या कोई हमारी फरियाद न सुनेगा।?

राजा—अच्छा? तो तुझे सेवा-समिति वालों का घमंड है?

चौधरी—हई है, वह हमारी रक्षा करती है, तो क्यों न उसका घमंड करें?

राजा साहब होंठ चबाने लगे—तो यह समिति वालों की कारस्तानी है। चक्रधर मेरे साथ कपट चाल चल रहे हैं, लाला चक्रधर ! जिसका बाप मेरी खुशामद की रोटियां खाता है। जिसे मित्र समझता था वही आस्तीन का सांप निकला। देखता हूं, वह मेरा क्या कर लेता है। एक रुक्का बड़े

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहब के नाम लिख दूं, तो बचा के होश ठीक हो जाएं। इन मूर्खों के सिर से यह घमंड निकाल ही देना चाहिए। यह जहरीले कीड़े फैल गए तो आफत मचा देंगे।

चौधरी तो ये बातें कर रहा था, उधर बाड़े में घोर कोलाहल मचा हुआ था। सरकारी आदमियों की सूरत देखकर जिनके प्राण-पखेरू उड़ जाते थे, वे इस समय निःशंक और निर्भय बंदूकों के सामने मरने को तैयार खड़े थे। द्वार से निकलने का रास्ता न पाकर कुछ आदमियों ने बाड़े की लकड़ियां और रस्सियां काट डालीं और हजारों आदमी उधर से भड़भड़ाकर निकल पड़े, मानो कोई उमड़ी हुई नदी बांध तोड़कर निकल पड़े। उसी वक्त एक ओर सशस्त्र पुलिस के जवान और दूसरी ओर से चक्रधर, समिति के कई युवकों के साथ आते हुए दिखाई दिए। चक्रधर ने निश्चय कर लिया था कि राजा साहब के आदमियों को उनके हाल पर छोड़ देंगे, लेकिन यहां की खबरें सुन-सुनकर उनके कलेजे पर सांप-सा लोटता रहता था। ऐसे नाजुक मौके पर खड़े होकर तमाशा देखना उन्हें लज्जाजनक मालूम होता था! अब तक तो दूर ही से, आदमियों को दिलासा देते रहे; लेकिन आज की खबरों ने उन्हें आने के लिए मजबूर कर दिया।

उन्हें देखते ही हड़तालियों में जान-सी पड़ गई। जैसे अबोध बालक अपनी माता को देखकर शेर हो जाय। हजारों आदमियों ने घेर लिया।

'वह भैया आ गए! भैया आ गए!' की ध्वनि से आकाश गूंज उठा।

चक्रधर को यहां की स्थिति उससे कहीं भयावह जान पड़ी, जितना उन्होंने समझा था। राजा साहब को यह जिद कि कोई आदमी यहां से जाने न पाए। आदमियों की यह जिद कि अब हम यहां एक क्षण भी न रहेंगे। सशस्त्र पुलिस सामने तैयार। सबसे बड़ी बात यह कि मुंशी वज्रधर खुद एक बंदूक लिए पैंतरे बदल रहे थे, मानो सारे आदमियों को कच्चा ही खा जाएंगे।

चक्रधर ने ऊंची आवाज से कहा—क्यों भाइयो, तुम मुझे अपना मित्र समझते हो या शत्रु?

चौधरी—भैया, यह भी कोई पूछने की बात है। तुम हमारे मालिक हो, स्वामी हो, सहायक हो! क्या आज तुम्हें पहली ही बार देखा है?

चक्रधर—तो तुम्हें विश्वास है कि मैं जो कुछ कहूंगा और करूंगा, वह तुम्हारे ही भले के लिए होगा?

चौधरी—मालिक, तुम्हारे ऊपर विश्वास न करेंगे, तो और किस पर करेंगे? लेकिन इतना समझ लीजिए कि हम और सब कर सकते हैं, यहां नहीं रह सकते। यह देखिए (पीठ दिखाकर), कोड़े खाकर यहां किसी तरह न रहूंगा।

चक्रधर इस भीड़ से निकलकर सीधे राजा साहब के पास आए और बोले—महाराज, मैं आपसे कुछ विनय करना चाहता हूं।

राजा साहब ने त्यौरियां बदलकर कहा—मैं इस वक्त कुछ नहीं सुनना चाहता।

चक्रधर—आप कुछ न सुनेंगे, तो पछताएंगे।

राजा—मैं इन सबों को गोली मार दूंगा।

चक्रधर—दीन प्रजा के रक्त से राजतिलक लगाना किसी राजा के लिए मंगलकारी नहीं हो सकता। प्रजा का आशीर्वाद ही राज्य की सबसे बड़ी शक्ति है। मैं आपका सेवक हूं, आपका शुभचिंतक हूं। इसीलिए आपकी सेवा में आया हूं। मुझे मालूम है कि आपके हृदय में कितनी दया है और प्रजा से आपको कितना स्नेह है। यह सारा तूफान अयोग्य कर्मचारियों का खड़ा किया हुआ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। उन्हीं के कारण आज आप उन लोगों के रक्त के प्यासे बन गए हैं, जो आपकी दया और कृपा के प्यासे हैं। ये सभी आदमी इस वक्त झल्लाए हुए हैं। गोली चलाकर आप उनके प्राण ले सकते हैं; लेकिन उनका रक्त केवल इसी बाड़े में न सूखेगा, यह सारा विस्तृत कैम्प उस रक्त से सिंच जायगा, उसकी लहरों के झोंके से यह विशाल मंडप उखड़ जाएगा और यह आकाश में फहराती हुई ध्वजा भूमि पर गिर पड़ेगी। अभिषेक का दिन दान और दया का है, रक्तपात का नहीं। इस शुभ अवसर पर एक हत्या भी हुई, तो वह सहस्त्रों रूप धारण करके ऐसा भयंकर अभिनय दिखाएगी कि सारी रियासत में हाहाकार मच जाएगा।

राजा साहब अपनी टेक पर अड़ना जानते थे; किंतु इस समय उनका दिल कांप उठा। वही प्राणी, जो दिन भर गालियां बकता था, प्रातःकाल कोई मिथ्या शब्द मुंह से नहीं निकलने देता। वही दुकानदार, जो दिन भर टेनी मारता है, प्रातःकाल ग्राहक से मेलजोल तक नहीं करता। शुभ मुहूर्त पर हमारी मनोवृत्तियां धार्मिक हो जाती हैं। राजा साहब कुछ नरम होकर बोले—मैं खुद नहीं चाहता कि मेरी तरफ से किसी पर अत्याचार किया जाय; लेकिन इसके साथ ही यह भी नहीं चाहता कि प्रजा मेरे सिर पर चढ़ जाय। इन लोगों की अगर कोई शिकायत थी, तो उन्हें आकर मुझसे कहना चाहिए था। अगर मैं न सुनता, तो इन्हें अख्तियार था, जो चाहते करते; पर मुझसे न कहकर इन लोगों ने हेकड़ी करनी शुरू की, रात घोड़ों को घास नहीं दी और इस वक्त भागे जाते हैं। मैं यह घोर अपमान नहीं सह सकता।

चक्रधर—आपने इन लोगों को अपने पास आने का अवसर कब दिया? आपके द्वारपाल इन्हें दूर ही से भगा देते थे। आपको मालूम है कि इन गरीबों को एक सप्ताह से कुछ भोजन नहीं मिला?

राजा—एक सप्ताह से भोजन नहीं मिला ! यह आप क्या कहते हैं? मैंने सख्त ताकीद कर दी थी कि हर मजदूर को इच्छापूर्ण भोजन दिया जाय। क्यों दीवान साहब, क्या बात है?

हरिसेवक—धर्मावतार, आप इन महाशय की बातों में न आइए। यह सारी आग इन्हीं की लगाई हुई है। प्रजा को बहकाना और भड़काना इन लोगों ने अपना धर्म बना रखा है। यहां हर एक आदमी को दोनों वक्त भोजन दिया जाता था।

मुंशी—दीनबन्धु, यह लड़का बिल्कुल नासमझ है। दूसरों ने जो कुछ कह दिया उसे सच समझ लेता है। तुमसे किसने कहा बेटा, कि आदमियों को भोजन नहीं मिलता था? भण्डारी तो मैं हूं, मेरे सामने जिन्स तौली जाती थी। मैं पूछ-पूछकर देता था। बारातियों की भी कोई इतनी खातिर न करता होगा। इतनी बात भी न जानता, तो तहसीलदारी क्या खाक करता?

राजा—मैं इसकी पूछताछ करूंगा।

हरिसेवक—हुजूर, इन्हीं लोगों ने आदमियों को उभारकर सरकश बना दिया है। ये लोग सबसे कहते फिरते हैं कि ईश्वर ने सभी मनुष्यों को बराबर बनाया है, किसी को तुम्हारे ऊपर राज्य करने का अधिकार नहीं है, किसी को तुमसे बेगार लेने का अधिकार नहीं। प्रजा ऐसी बातें सुन-सुनकर शेर हो गई है।

राजा—इन बातों में तो मुझे कोई बुराई नजर नहीं आती। मैं खुद प्रजा से यही बातें कहना चाहता हूं।

हरिसेवक—हुजूर, ये लोग कहते हैं, जमीन के मालिक तुम हो। जो जमीन से बीज उगाए, वही उसका मालिक है। राजा तो तुम्हारा गुलाम है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राजा—बहुत ठीक कहते हैं। इसमें मुझे तो बिगड़ने की कोई बात नहीं मालूम होती। वास्तव में मैं प्रजा का गुलाम हूं; बल्कि उसके गुलाम का गुलाम हूं।

हरिसेवक—हुजूर, इन लोगों की बातें कहां तक कहूं। कहते हैं, राजा को इतने बड़े महल में रहने का कोई हक नहीं। उसका संसार में कोई काम नहीं।

राजा—बहुत ही ठीक कहते हैं। आखिर मैं पड़े-पड़े खाने के सिवा और क्या करता हूं।

चक्रधर ने झुंझलाकर कहा—ठाकुर साहब, आप मेरे स्वामी हैं, लेकिन क्षमा कीजिए, आप मेरे साथ बड़ा अन्याय कर रहे हैं। मैंने प्रजा को उनके अधिकार अवश्य समझाए हैं; लेकिन यह कभी नहीं कहा कि राजा को संसार में रहने का कोई हक नहीं; क्योंकि मैं जानता हूं, जिस दिन राजाओं की जरूरत न रहेगी, उस दिन उनका अंत हो जाएगा। देश में उसी की राज्य व्यवस्था होती है, जिसका अधिकार होता है।

राजा—मैं तो बुरा नहीं मानता, जरा भी नहीं। आपने कोई ऐसी बात नहीं कही, जो और लोग न कहते हों। वास्तव में जो राजा प्रजा के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन न करे उसका जीवन व्यर्थ है।

चक्रधर को मालूम हुआ कि राजा साहब मुझे बना रहे हैं। यह अवसर मजाक का न था। हजारों आदमी सांस बंद किए हुए सुन रहे थे कि ये लोग क्या फैसला करते हैं और यहां उन लोगों को मजाक सूझ रहा है। गरम होकर बोले—अगर आपके ये भाव सच्चे होते, तो प्रजा पर यह विपत्ति ही न आती। राजाओं की यह पुरानी नीति है कि प्रजा का मन मीठी-मीठी बातों से भरे और अपने कर्मचारियों को मनमाने अत्याचार करने दें। वह राजा, जिसके कानों तक प्रजा की पुकार न पहुंचने पाए, आदर्श नहीं कहा जा सकता।

राजा—किसी तरह नहीं। उसे गोली मार देनी चाहिए। जीता चुनवा देना चाहिए। प्रजा का गुलाम है कि दिल्लगी है।

चक्रधर यह व्यंग्य न सह सके। उनकी स्वाभाविक सहन-शक्ति ने उनका साथ छोड़ दिया। चेहरा तमतमा उठा। बोले—जिस आदर्श के सामने आपको सर झुकाना चाहिए, उसका मजाक उड़ाना आपको शोभा नहीं देता। समाज की यह व्यवस्था अब थोड़े ही दिनों की मेहमान है और वह समय आ रहा है, जब या तो राजा प्रजा का सेवक होगा या होगा ही नहीं। मैंने कभी यह अनुमान न किया था कि आपके वचन और कर्म में इतनी जल्दी इतना बड़ा भेद हो जाएगा।

क्रोध ने अब अपना यथार्थ रूप धारण किया। राजा साहब अभी तक तो व्यंग्यों से चक्रधर को परास्त करना चाहते थे; लेकिन जब चक्रधर के वार मर्मस्थल पर पड़ने लगे, तो उन्हें भी अपने शस्त्र निकालने पड़े। डपटकर बोले—अच्छा, बाबूजी, अब अपनी जबान बंद करो। मैं जितनी ही तरह देता जाता हूं, उतने ही आप सिर पर चढ़े जाते हैं। मित्रता के नाते जितना सह सकता था, उतना सह चुका। अब नहीं सह सकता। मैं प्रजा का गुलाम नहीं हूं। प्रजा मेरे पैरों की धूल है। मुझे अधिकार है कि उसके साथ जैसा उचित समझूं, वैसा सलूक करूं। किसी को हमारे और हमारी प्रजा के बीच में बोलने का हक नहीं। आप अब कृपा करके यहां से चले जाइए और फिर कभी मेरी रियासत में कदम न रखिएगा; वरना शायद आपको पछताना पड़े। जाइए।

मुंशी वज्रधर की छाती धक्-धक् करने लगी। चक्रधर को हाथों से पीछे हटाकर बोले—हुजूर की कृपा-दृष्टि ने इसे शोख कर दिया है। अभी तक बड़े आदमियों की सोहबत में बैठने का मौका तो मिला नहीं, बात करने की तमीज कहां से आए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लेकिन चक्रधर भी जवान आदमी थे, उस पर सिद्धान्तों के पक्के, आदर्श पर मिटनेवाले, अधिकार और प्रभुत्व के जानी दुश्मन। वह राजा साहब के उद्दंड शब्दों से जरा भी प्रभावित न हुए। यह उस सिंह की गरज थी, जिनके दांत और पंजे टूट गए हों। यह उस रस्सी की ऐंठन थी, जो जल गई हो। तने हुए सामने आए और बोले—आपको अपने मुख से ये शब्द निकालते हुए शर्म आनी चाहिए थी। अगर सम्पत्ति से इतना पतन हो सकता है तो मैं कहूंगा कि इससे बुरी चीज संसार में कोई नहीं। आपके भाव कितने पवित्र थे! कितने ऊंचे! आप प्रजा पर अपने को अर्पण कर देना चाहते थे। आप कहते थे, मैं प्रजा को अपने पास बे-रोकटोक आने दूंगा, उनके लिए मेरे द्वार हरदम खुले रहेंगे, आप कहते थे, मेरे कर्मचारी उनकी ओर टेढ़ी निगाह से भी देखेंगे, तो उनकी शामत आ जाएगी। वे सारी बातें क्या आपको भूल गईं? और इतनी जल्द? अभी तो बहुत दिन नहीं गुजरे। अब आप कहते हैं, प्रजा मेरे पैरों की धूल है। ईश्वर आपको सुबुद्धि दे!

राजा साहब कहां तो क्रोध से उन्मत्त हो रहे थे, कहां यह लगती हुई वात सुनकर रो पड़े। क्रोध निरुत्तर होकर पानी हो जाता है या यों कहिए कि आंसू अव्यक्त भावों ही का रूप है। ग्लानि थी या पश्चात्ताप; अपनी दुर्बलता का दु:ख था या विवशता का; या इस बात का रंज था कि यह दुष्ट मेरा इतना अपमान कर रहा है और मैं कुछ नहीं कर सकता—इसका निर्णय करना कठिन है।

मगर एक ही क्षण में राजा साहब सचेत हो गए। प्रभुता ने आंसुओं को दबा दिया। अकड़कर बोले—मैं कहता हूं, यहां से चले जाओ!

हरिसेवक—आपको शर्म नहीं आती कि किससे ऐसी बातें कर रहे हैं?

वज्रधर—बेटा, क्यों मेरे मुंह में कालिख लगा रहे हो?

चक्रधर—जब तक आप इन आदमियों को जाने न देंगे, मैं नहीं जा सकता।

राजा—मेरे आदमियों से तुम्हें कोई सरोकार नहीं है। उनमें से अगर एक भी हिला, तो उसकी लाश जमीन पर होगी।

चक्रधर—तो मेरे लिए इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है कि उन्हें यहां से हटा ले जाऊं।

यह कहकर चक्रधर मजदूरों की ओर चले। राजा साहब जानते थे कि इनका इशारा पाते ही सारे मजदूर हवा हो जाएंगे, फिर सशस्त्र सेना भी उन्हें न रोक सकेगी। तिल-मिलाकर बंदूक लिए हुए चक्रधर के पीछे दौड़े और ऐसे जोर से उन पर कुंदा चलाया कि सिर पर लगता तो शायद वहीं ठंडे हो जाते। मगर कुशल हुई। कुंदा पीठ में लगा और उसके झोंके से चक्रधर कई हाथ पर जा गिरे। उनका जमीन पर गिरना था कि पांच हजार आदमी बाड़े को तोड़कर, सशस्त्र सिपाहियों को चीरते, बाहर निकल आए और नरेशों के कैम्प की ओर चले। रास्ते में जो कर्मचारी मिला, उसे पीटा। मालूम होता था, कैम्प में लूट मच गई है। दुकानदार अपनी दुकानें समेटने लगे। दर्शकगण अपनी धोतियां संभालकर भागने लगे। चारों तरफ भगदड़ पड़ गई। जितने बेफिक्रे, शोहदे, लुच्चे तमाशा देखने आए थे, वे सब उपद्रवकारियों में मिल गए। यहां तक कि नरेशों के कैम्प तक पहुंचते-पहुंचते उनकी संख्या दूनी हो गई।

राजा-रईस अपनी वासनाओं के सिवा और किसी के गुलाम नहीं होते। वक्त की गुलामी भी उन्हें पसंद नहीं। वे किसी नियम को अपनी स्वेच्छा में बाधा नहीं डालने देते। फिर उनको इसकी क्या परवा कि सुबह है या शाम। कोई मीठी नींद के मजे लेता था, कोई गाना सुनता था, कोई स्नान-ध्यान में मग्न था और कुछ लोग तिलक-मंडप जाने की तैयारियां कर रहे थे। कहीं भंग घुटती थी,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहीं कवित्त-चर्चा हो रही थी और कहीं नाच हो रहा था। कोई नाश्ता कर रहा था और कोई लेटा नौकरों से चंपी करा रहा था। उत्तरदायित्वहीन स्वतंत्रता अपनी विविध लीलाएं दिखा रही थी। अगर उपद्रवी इस कैम्प में पहुंच जाते, तो महाअनर्थ हो जाता। न जाने कितने राजवंशों का अंत हो जाता। किंतु राजाओं की रक्षा उनका इकबाल करता है ! अंग्रेजी कैम्प में दस-बारह आदमी अभी शिकार खेलकर लौटे थे। उन्होंने जो यह हंगामा सुना, तो बाहर निकल आए और जनता पर अंधाधुंध बंदूकें छोड़ने लगे। पहले तो उत्तेजित जनता ने बंदूकों की परवा न की, उसे अपनी संख्या का बल था। लोग सोचते थे, मरते-मरते हममें से इतने आदमी कैम्प में पहुंच जाएंगे कि नरेशों को कहीं भागने की भी जगह न मिलेगी। हम सारे प्रांत को इन अत्याचारियों से मुक्त कर देंगे ! ये सब भी तो अपनी प्रजा पर ऐसा ही अत्याचार करते होंगे।

जनता उत्तेजित होकर आदर्शवादी हो जाती है।

गोलियों की पहली बाढ़ आई। कई आदमी गिर गए।

चौधरी—देखो भाई, घबराना नहीं। जो गिरता है, उसे गिरने दो; आज ही तो दिल के हौसले निकले हैं। जय हनुमानजी की !

एक मजदूर—बढ़े आओ, बढ़े आओ, अब मार लिया है। आज ही तो——

उसके मुंह से पूरी बात भी न निकलने पाई थी कि गोलियों की दूसरी बाढ़ आई और कई आदमियों के साथ दोनों नेताओं का काम तमाम कर गई। एक क्षण के लिए सबके पैर रुक गए। जो जहां था, वहीं खड़ा रह गया। समस्या थी कि आगे जाएं या पीछे? सहसा एक युवक ने कहा—मारो, रुक क्यों गए? सामने पहुंचकर हिम्मत छोड़ देते हो ! बढ़े चलो। जय दुर्गामाई की !

दूसरा बोला—आज जो मरेगा, वह बैकुण्ठ में जाएगा। बोलो हनुमान जी की जय !—.

उसे भी गोली लगी और चक्कर खाकर गिर पड़ा।

इतने में दीवान साहब बंदूक लिए पीछे दौड़ते हुए आ पहुंचे। गुरुसेवक भी उनके साथ थे। दोनों एक दूसरे रास्ते से कैम्प के द्वार पर पहुंच गए थे।

हरिसेवक—तुम मेरे पीछे खड़े हो जाओ और यहीं से निशाना लगाओ।

गुरुसेवक—अभी फैर न कीजिए। मैं जरा इन्हें समझा लूं। समझाने से काम निकल जाए, तो रक्त क्यों बहाया जाए?

हरिसेवक—अब समझाने का मौका नहीं है। अभी दम के दम में सबके-सब अंदर घुस आएंगे, तो प्रलय हो जाएगी।

किंतु गुरुसेवक के हृदय में दया थी। पिता की बात न मानकर वह सामने आ गए और ललकारकर बोले—तुम लोग यहां क्यों आ रहे हो? यह न समझो कि तुम कैम्प के द्वार पर पहुंच गए हो। यहां आते-आते तुम आधे हो जाओगे।

एक मजदूर—कोई चिंता नहीं। मर-मरकर जीने से एक बार मर जाना अच्छा है। मारो, आगे बढ़ो, क्या हिम्मत छोड़ देते हो?

गुरुसेवक—आगे एक कदम भी रखा और गिरे। यह समझ लो कि तुम्हारे आगे मौत खड़ी है।

मजदूर—हम आज मरने के लिए कमर बांधकर——

अंग्रेजी कैंप से फिर गोलियों की बाढ़ आई और कई आदमियों के साथ यह आदमी भी गिर गया, और उसके गिरते ही सारे समूह में खलबली पड़ गई। अभी तक इन लोगों को न मालूम था

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कि गोलियां किधर से आ रही हैं। समझ रहे थे कि इसी कैंप से आती होंगी। अब शिकारी लोग बढ़ आए थे और साफ नजर आ रहे थे।

एक चमार बोला—साहब लोग गोली चला रहे हैं।

दूसरा—गोरों की फौज है, फौज।

तीसरा—चलो उन्हीं सबों को पथें? मुर्गी के अंडे खा-खाकर खूब मोटाए हुए हैं।

चौथा—यही सब तो राजाओं को बिगाड़े हुए हैं। दो शिकार भी मिल गए, तो मेहनत सफल हो जाएगी।

लेकिन कायरों की हिम्मत टूटने लगी थी। लोग चुपके-चुपके दाएं-बाएं से सरकने लगे थे। यहां प्राण देने से बाजार में लूट मचाना कहीं आसान था। देखते-देखते पीछे के सभी आदमी खिसक गए। केवल आगे के लोग खड़े रह गए थे। उन्हें क्या खबर थी कि पीछे क्या हो रहा है। वे अंग्रेजों के कैंप की तरफ मुड़े और एक ही हल्ले में अंग्रेजी कैंप के फाटक तक आ पहुंचे। अब तो यहां भी भगदड़ पड़ी। एक ओर नरेशों के कैंप से मोटरें निकल-निकलकर पीछे की ओर से दौड़ती चली आ रही थीं। इधर अंग्रेजी कैंप से मोटरों का निकलना शुरू हुआ। एक क्षण में सारी लेडियां गायब हो गईं। मर्दों में भी आधे से ज्यादा निकल भागे। केवल वही लोग रह गए, जो मोरचे पर खड़े थे और जिनके लिए भागना मौत के मुंह में जाना था; मगर उन सबों के हाथों में मार्टिन और मॉजर के यंत्र थे। इधर ईश्वर की दी हुई लाठियां थीं; या जमीन से चुने हुए पत्थर। यद्यपि हड़तालियों का दल एक ही हल्ले में इस फाटक तक पहुंच गया; पर यहां तक पहुंचते-पहुंचते कोई बीस आदमी गिर पड़े। अगर इस वक्त पचास गज के अंतर पर भी इतने आदमी गिरे होते, तो शायद सबके पैर उखड़ जाते, लेकिन यह विश्वास कि अब मार लिया है, उनके हौसले बढ़ाए हुए था। विजय के सम्मुख पहुंचकर कायर भी वीर हो जाते हैं, घर के समीप पहुंचकर थके हुए पथिक के पैरों में भी पर लग जाते हैं।

इन मनुष्यों के मुख पर इस समय हिंसा झलक रही थी। चेहरे विकृत हो गए थे। जिसने इन्हें इस दशा में न देखा हो, यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि वही दीनता के पुतले हैं, जिन्हें एक काठ की पुतली भी चाहे जो नाच नचा सकती थी। अंग्रेज योद्धा अभी तक तो मोरचे पर खड़े बंदूकें छोड़ रहे थे; लेकिन इस भयंकर दल को सामने देखकर उनके औसान जाते रहे। दो-चार तो भागे, दो-तीन मूर्च्छा खाकर गिर पड़े। केवल पांच फौजी अफसर अपनी जगह पर डटे रहे। उन्हें बचने की कोई आशा न थी और इसी निराशा ने उन्हें अदम्य साहस प्रदान कर दिया था। वे जान पर खेले हुए थे! क्षण-क्षण पर बंदूकें चलाते थे; मानो बंदूक की कलें हों। जो आगे बढ़ता था, उनके अचूक निशाने का शिकार हो जाता था। इधर ढेले और पत्थरों की वर्षा हो रही थी, जो फाटक तक मुश्किल से पहुंचती थी। अब सामने पहुंचकर लोगों ने आगे बढ़कर पत्थर चलाने शुरू किए। यहां तक कि अंग्रेज चोट खाकर गिर पड़े। एक का सिर फट गया था; दूसरे की बांह टूट गई थी। केवल तीन आदमी रह गए और वही इन आदमियों को रोक रखने के लिए काफी थे। लेकिन उनके पास भी कारतूस न रह गए थे। कठिन समस्या थी। प्राण बचने की कोई आशा नहीं। भागने की कल्पना ही से उन्हें घृणा होती थी। जिन मनुष्यों को हमेशा पैरों से ठुकराया किए, जिन्हें कुली कहते और कुत्तों से भी नीच समझते रहे, उनके सामने पीठ दिखाना ऐसा अपमान था, जिसे वे किसी तरह न सह सकते थे। इधर हड़तालियों के हौसले बढ़ते जाते थे। शिकार, अब बेदम होकर गिरना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चाहता था। हिंसा के मुंह से लार टपक रही थी।

एक आदमी ने कहा—हां बहादुरो, बस एक हल्ले की और कसर है; घुस पड़ो। अब कहां जाते हैं।

दूसरा बोला—फांसी तो पड़ेगी ही, अब इन्हें क्यों छोड़ें?

सहसा एक आदमी पीछे से भीड़ को चीरता, बेतहाशा दौड़ा हुआ आकर बोला—बस-बस, क्या करते हो! ईश्वर के लिए हाथ रोको! क्या गजब करते हो! लोगों ने चकित होकर देखा, तो चक्रधर थे। सैकड़ों आदमी उन्मत्त होकर उनकी ओर दौड़े और उन्हें घेर लिया। जय-जयकार की ध्वनि से आकाश गूंजने लगा।

एक मजदूर ने कहा—हमें अपने एक सौ भाइयों के खून का बदला लेना है।

चक्रधर ने दोनों हाथ उठाकर कहा—कोई एक कदम भी आगे न बढ़े। खबरदार!

मजदूर—यारो, बस एक हल्ला और!

चक्रधर—हम फिर कहते हैं, अब एक कदम भी आगे न उठे।

जिले के मैजिस्ट्रेट मिस्टर जिम ने कहा—बाबू साहब, खुदा के लिए हमें बचाइए।

फौज के कप्तान मिस्टर सिम बोले—हम हमेशा आपको दुआ देगा। हम सरकार से आपकी सिफारिश करेगा।

एक मजदूर—हमारे एक सौ जवान भून डाले, तब आप कहां थे? यारो, क्या खड़े हो, बाबूजी का क्या बिगड़ा है? मारे तो हम गए हैं न? मारो बढ़के।

चक्रधर ने उपद्रवियों के सामने खड़े होकर कहा—अगर तुम्हें खून की प्यास है, तो मैं हाजिर हूं। मेरी लाश को पैरों से कुचलकर तुम आगे बढ़ सकते हो।

मजदूर—भैया, हट जाओ, हमने बहुत मार खाई है; बहुत सताए गए हैं, इस वक्त दिल की आग बुझा लेने दो!

चक्रधर—मेरा लहू इस ज्वाला को शांत करने के लिए काफी नहीं है?

मजदूर—भैया, तुम शांत-शांत बका करते हो; लेकिन उसका फल क्या होता है। हमें जो चाहता है, मारता है, जो चाहता है, पीसता है, तो क्या हमीं शांत बैठे रहें? शांत रहने से तो और भी हमारी दुरगत होती है। हमें शांत रहना मत सिखाओ। हमें मारना सिखाओ, तभी हमारा उद्धार कर सकोगे।

चक्रधर—अगर अपनी आत्मा की हत्या करके हमारा उद्धार भी होता हो, तो हम आत्मा की हत्या न करेंगे। संसार को मनुष्य ने नहीं बनाया है, ईश्वर ने बनाया है। भगवान् ने उद्धार के जो उपाय बताए हैं, उनसे काम लो और ईश्वर पर भरोसा रखो।

मजदूर—हमारी फांसी तो हो ही जाएगी। तुम माफी तो न दिला सकोगे।

मिस्टर जिम—हम किसी को संजा न देंगे।

मिस्टर सिम—हम सबको इनाम दिलाएगा।

चक्रधर—इनाम मिले या फांसी, इसकी क्या परवा! अभी तक तुम्हारा दामन खून के छींटों से पाक है; उसे पाक रखो। ईश्वर की निगाह में तुम निर्दोष हो। अब अपने को कलंकित मत करो, जाओ।

मजदूर—अपने भाइयों का खून कभी हमारे सिर से न उतरेगा, लेकिन तुम्हारी यही मर्जी है, तो लौट जाते हैं। आखिर फांसी पर तो चढ़ना ही है।

—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चक्रधर कुंदे की चोट से कुछ देर तक तो अचेत पड़े रहे थे। जब होश आया, तो देखा कि दाहिनी ओर हड़तालियों का एक दल अंग्रेजी कैंप के द्वार पर खड़ा है, बाईं ओर बाजार लुट रहा है और सशस्त्र पुलिस के सिपाही हड़तालियों के साथ मिले हुए दुकानें लूट रहे हैं और विशाल तिलक-मंडप से अग्नि की ज्वाला उठ रही है। वह उठे और अंग्रेजी कैंप की ओर भागे। वहीं उनके पहुंचने की सबसे ज्यादा जरूरत थी। बाजार में रक्तपात का भय न था। रक्षक स्वयं लुटेरे बने हुए थे। उन्हें लूट से कहां फुर्सत थी कि हड़तालियों का शिकार करते? अंग्रेजी कैंप में ही स्थिति सबसे भयावह थी। इस नाजुक मौके पर वह न पहुंच जाते, तो किसी अंग्रेज की जान न बचती, सारा कैंप लुट जाता और खेमे राख के ढेर हो जाते। हड़तालियों की रक्षा करनी तो उन्हें बदी न थी; लेकिन विदेशियों को उन्होंने मौत के मुंह से निकाल लिया। एक क्षण में सारा कैंप साफ हो गया। एक भी मजदूर न रह गया।

इन आदमियों के जाते ही वे लोग भी इनके साथ हो लिए; जो पहले लूट के लालच से चले आए थे। जिस तरह पानी आ जाने से कोई मेला उठ जाता है, गाहक, दुकानदार और दुकानें सब न जाने कहां लुप्त हो जाती हैं, उसी भांति एक क्षण में सारे कैंप में सन्नाटा छा गया। केवल तिलक-मंडल से अभी तक आग की ज्वाला निकल रही थी। राजा साहब और उनके साथ के कुछ गिने-गिनाए आदमी उसके सामने चुपचाप खड़े मानो किसी मृतक की दाह-क्रिया कर रहे हों। बाजार लुटा, गोलियां चलीं, आदमी मक्खियों की तरह मारे गए; पर राजा मंडप के सामने ही खड़े रहे। उन्हें अपनी सारी मनोकामनाएं अग्नि-राशि में भस्म होती हुई मालूम होती थीं।

अंधेरा छा गया था। घायलों के कराहने की आवाजें आ रही थीं। चक्रधर और उनके साथ के युवक उन्हें सावधानी से उठा-उठाकर एक वृक्ष के नीचे जमा कर रहे थे। कई आदमी तो उठाते-ही-उठाते सुरलोक सिधारे। कुछ सेवक उन्हें ले जाने की फिक्र करने लगे। कुछ लोग शेष घायलों की देखं-भाल में लगे। रियासत का डॉक्टर सज्जन मनुष्य था। यहां से संदेशा जाते ही आ पहुंचा। उसकी सहायता ने बड़ा काम किया। आकाश पर काली घटा छाई हुई थी। चारों तरफ अंधेरा था। तिलक मंडप की आग भी बुझ चुकी थी। उस अंधकार में ये लोग लालटेन लिए घायलों को अस्पताल ले जा रहे थे।

एकाएक कई सिपाहियों ने आकर चक्रधर को पकड़ लिया और अंग्रेज कैंप की तरफ ले चले। पूछा, तो मालूम हुआ कि जिम साहब का यह हुक्म है। चक्रधर ने सोचा—मैंने ऐसा कोई अपराध तो नहीं किया, जिसका यह दंड हो। फिर यह पकड़-धकड़ क्यों? संभव है, मुझसे कुछ पूछने के लिए बुलाया हो, और ये मूर्ख सिपाही उसका आशय न समझकर मुझे यों पकड़े लिए जाते हों। यह सोचते हुए वह मिस्टर जिम के खेमे में दाखिल हुए।

देखा, तो वहां कचहरी लगी हुई है। सशस्त्र पुलिस के सिपाही, जिन्हें अब लूट से फुर्सत मिल चुकी थी, द्वार पर संगीनें चढ़ाए खड़े थे। अंदर मिस्टर जिम और मिस्टर सिम रौद्र रूप धारण किए सिगार पी रहे थे, मानो क्रोधाग्नि मुंह से निकल रही हो। राजा साहब मिस्टर जिम के बगल में बैठे थे। दीवान साहब क्रोध से आंखें लाल किए मेज पर हाथ रखे कुछ कह रहे थे और मुंशी वज्रधर हाथ बांधे एक कोने में खड़े थे।

चक्रधर को देखते ही मिस्टर जिम ने कहा—राजा साहब कहता है कि यह सब तुम्हारी शरारत है। तुम और तुम्हारा साथी लोग बहुत दिनों से रियासत के आदमियों को भड़का रहा है, और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आज भी तुम न आता, तो यह दंगा न मचता।

चक्रधर आवेश में आकर बोले—अगर राजा साहब, आपका ऐसा विचार है, तो इसका मुझे दु:ख है। हम लोग जनता में जागृति अवश्य फैलाते हैं, उनमें शिक्षा का प्रचार करते हैं, उन्हें स्वार्थांध अमलों के फंदों से बचाने का उपाय करते हैं, और उन्हें अपने आत्मसम्मान की रक्षा करने का उपदेश देते हैं। हम चाहते हैं कि वे मनुष्य बनें और मनुष्यों की भांति संसार में रहें। ये स्वार्थ के दास बनकर कर्मचारियों की खुशामद न करें, भयवश अपमान और अत्याचार न सहें। अगर इसे कोई भड़काना समझता है, तो समझे ! हम तो इसे अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

जिम—तुम्हारे उपदेश का यह नतीजा देखकर कौन कह सकता है कि तुम उन्हें नहीं भड़काता?

चक्रधर—यहां उन आदमियों पर अत्याचार हो रहा था और उन्हें यहां से चले जाने का या काम न करने का अधिकार था। अगर उन्हें शांति के साथ चले जाने दिया जाता, तो यह नौबत कभी नहीं आती।

राजा—हमें परंपरा से बेगार लेने का अधिकार है और उसे हम नहीं छोड़ सकते। आप आदमियों को बेगार देने से मना करते हैं, और आज के हत्याकांड का सारा भार आपके ऊपर है।

चक्रधर—कोई अन्याय केवल इसलिए मान्य नहीं हो सकता कि लोग उसे परंपरा से सहते आए हैं।

जिम—हम तुम्हारे ऊपर बगावत का मुकदमा चलाएगा। तुम dangerous (खतरनाक) आदमी है।

राजा—हुजूर, मैं इनके साथ कोई सख्ती नहीं करना चाहता, केवल यह प्रतिज्ञा लिखाना चाहता हूं कि यह अथवा इनके सहकारी लोग मेरी रियासत में न जाएं।

चक्रधर—मैं ऐसी प्रतिज्ञा नहीं कर सकता। दीनों पर अत्याचार होते देखकर दूर खड़े रहना वह दशा है, जो हम किसी तरह नहीं सह सकते। अभी बहुत दिन नहीं गुजरे कि राजा साहब के विचार मेरे विचारों से पूरे-पूरे मिलते थे। उन्हें अपने विचारों को बदलने के नए कारण हो गए हों, मेरे लिए कोई कारण नहीं।

राजा—मेरे प्रजा-हित के विचारों में कोई अंतर नहीं हुआ है, मैं अब भी प्रजा का सेवक हूं, लेकिन आप उन्हें राजनीतिक यंत्र बनाना चाहते हैं, और इसी उद्देश्य से आप उनके हितचिंतक बनते हैं। मैं उन्हें राजनीति में नहीं डालना चाहता। आप उनके आत्मसम्मान की रक्षा करते हैं और मैं उनके प्राणों को। बस, आपके और मेरे विचारों में केवल यही अंतर है।

मिस्टर जिम ने सब-इंस्पेक्टर से कहा—इनको हवालात में रखो, कल इजलास पर पेश करो।

वज्रधर ने आगे बढ़कर जिम के पैरों पर पगड़ी रख दी और बोले—हुजूर, यह गुलाम का लड़का है। हुजूर, इसकी जांवख्शी करें। हुजूर का पुराना गुलाम हूं। जब खुरजे में तहसीलदार था, तब हुजूर से सनद अता फरमाई थी, हुजूर !

मिस्टर जिम—ओ ! तहसीलदार साहब, यह तुम्हारा लड़का है? तुमने उसको घर से निकाल क्यों नहीं दिया? सरकार तुमको इसलिए पेंशन नहीं देता कि तुम बागियों को पालो। हम तुम्हारा पेंशन बंद कर देगा। पेंशन इसलिए दिया जाता है कि तुम सरकार का वफादार नौकर बना रहे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वज्रधर--हुजूर मेरे मालिक हैं। आज इसका कुसूर माफ कर दिया जाए। आज से मैं इसे घर से निकलने ही न दूंगा।

चक्रधर ने पिता को तिरस्कार भाव से देखकर कहा—आप क्यों ऐसी बातों से मुझे लज्जित करते हैं ! मिस्टर जिम और राजा साहब मुझे जेल के बाहर भी कैद करना चाहते हैं। मेरे लिए जेल की कैद इस कैद से कहीं आसान है।

वज्रधर—बेटा, मैं अब थोड़े ही दिनों का मेहमान हूं। मुझे मर जाने दो, फिर तुम्हारे जी में जो आए करना। मैं मना करने न आऊंगा।

हरिसेवक—तहसीलदार साहब, आप व्यर्थ हैरान होते हैं। आपका काम समझा देना है। वह समझदार हैं। अपना भला-बुरा समझ सकते हैं। जब वह खुद आग में कूद रहे हैं, तो आप कब तक उन्हें रोकिएगा?

वज्रधर—मेरी यह अर्ज़ है हुजूर, कि मेरी पेंशन पर रेप न आए।

जिम—तुमको इस मुकदमे में शहादत देना होगा। तुमने अच्छा शहादत दिया, तो तुम्हारा पेंशन बहाल रखा जाएगा।

चक्रधर—लीजिए, आपकी पेंशन बहाल हो गई, केवल मेरे विरुद्ध गवाही भर दे दीजिएगा।

राजा—बाबू चक्रधर, अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। आप प्रतिज्ञा लिखकर शौक से घर जा सकते हैं। मैं आपको तंग नहीं करना चाहता। हां, इतना ही चाहता हूं कि ऐसे हंगामे न खड़े हों।

चक्रधर—राजा साहब, क्षमा कीजिएगा, जब तक असंतोष के कारण दूर न होंगे, ऐसी दुर्घटनाएं होंगी और फिर होंगी। मुझे आप पकड़ सकते हैं, कैद कर सकते हैं। इससे चाहे आपको शांति हो, पर वह असंतोष अणुमात्र भी कम न होगा, जिससे प्रजा का जीवन असह्य हो गया है। असंतोष को भड़काकर आप प्रजा को शांत नहीं कर सकते। हां, कायर बना सकते हैं। अगर आप उन्हें कर्महीन, बुद्धिहीन, पुरुषार्थहीन मनुष्य का तन धारण करने वाले सियार और सुअर बनाना चाहते हैं, तो बनाइए, पर इससे न आपकी कीर्ति होगी, न ईश्वर प्रसन्न होंगे और न स्वयं आपकी आत्मा ही तुष्ट होगी।

पंद्रह

राजाओं-महाराजाओं को क्रोध आता है, तो उनके सामने जाने की हिम्मत नहीं पड़ती। जाने क्या गजब हो जाय, क्या आफत आ जाय। विशालसिंह किसी को फांसी न दे सकते थे, यहां तक कि कानून की रू से वह किसी को गालियां भी न दे सकते थे। कानून उनके लिए भी था, वह भी सरकार की प्रजा थे, किन्तु नौकरी तो छीन सकते थे, जुर्माना तो कर सकते थे। इतना अख्तियार क्या थोड़ा है? सारी रात गुजर गई, पर राजा साहब अपने कमरे से बाहर नहीं निकले। उनकी पलकें तक न झपकी थीं। आधी रात तक तो उनकी तलवार हरिसेवक पर खिंची रही; इसी बुड्ढे खूसट के कुप्रबन्ध ने यह सारा तूफान खड़ा किया। उसके बाद तलवार के वार अपने ऊपर होने लगे। मुझे इस उत्सव की जरूरत ही क्या थी? रियासत मुझे मिल ही चुकी थी। टीके-तिलक की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिमाकत में क्यों पड़ा? पिछले पहर क्रोध ने फिर पहलू बदला और तलवार की चोटें चक्रधर पर पड़ने लगीं। यह सारी शरारत इसी लौंडे की है। न्याय, धर्म और परोपकार सब बहुत अच्छी बातें हैं; लेकिन हर एक काम के लिए एक अवसर होता है। इसने प्रजा में असंतोष की आग भड़काई; दो-चार दिन आधे ही पेट खाकर रह जाते, तो क्या मजदूरों की जान निकल जाती? अपने घर ही पर उन्हें कौन दोनों वक्त पकवान मिलता है। जब बारहों मास एक वक्त आधे पेट खाकर रहते हैं, तो यहां रसद के लिए दंगा कर बैठना साफ बतला रहा है कि यह दूसरों का मंत्र था। बाप तो तलुवे सहलाता फिरता है और आप परोपकारी बनते फिरते हैं। पांच साल तक चक्की न पिसवाई, तो नाम नहीं!

राजभवन में सन्नाटा छाया हुआ था। रोहिणी ने तो जन्माष्टमी के दिन से ही राजा साहब से बोलना-चालना छोड़ दिया था। यों पड़ी रहती थी, जैसे कोई चिड़िया पिंजरे में। वसुमती को अपने पूजा-पाठ से फुरसत न थी। अब उसे राम और कृष्ण दोनों ही की पूजा-अर्चना करनी पड़ती थी। केवल रामप्रिया घबराती हुई इधर-उधर दौड़ रही थी। कभी चुपके-चुपके कोपभवन के द्वार तक जाती, कभी खिड़की से झांकती; पर राजा साहब की त्योरियां देखकर उलटे पांव लौट आती। डरती थी कि कहीं वह कुछ खा न लें, कहीं भाग न जाएं। निर्बल क्रोध ही तो वैराग्य है।

वह इसी चिन्ता में विकल थी कि मनोरमा आकर सामने खड़ी हो गई। उसकी दोनों आंखें बीरबहूटी हो रही थीं, भंवे चढ़ी हुई, मानो किसी गुण्डे ने सती को छेड़ दिया हो।

रामप्रिया ने पूछा—कहां थी, मनोरमा?

मनोरमा—ऊपर ही तो थी। राजा साहब कहां हैं?

रामप्रिया ने मनारेमा के मुख की ओर तीव्र दृष्टि से देखा। हृदय आंखों में रो रहा था। बोली—क्या करोगी पूछकर?

मनोरमा—उनसे कुछ कहना चाहती हूं।

रामप्रिया—कहीं उनके सामने जाना मत। कोप-भवन में हैं। मैं तो खुद उनके सामने जाते डरती हूं।

मनोरमा—आाप बतला तो दें।

रामप्रिया—नहीं, मैं न बताऊंगी। कौन जानता है, इस वक्त उनके हृदय पर क्या बीत रही है। खून का घूंट पी रहे होंगे! सुनती हूं, तुम्हारे गुरुजी ही की यह सारी करामात है। देखने में तो बड़े ही सज्जन मालूम होते हैं; पर हैं एक छंटे हुए।

मनोरमा तीर की भांति कमरे से निकलकर वसुमती के पास जा पहुंची। वसुमती अभी स्नान करके आई थी और पूजा करने जा रही थी कि मनोरमा को सामने देखकर चौंक पड़ी। मनोरमा ने पूछा—आप जानती हैं, राजा साहब कहां हैं?

वसुमती ने रुखाई से कहा—होंगे जहां उनकी इच्छा होगी। मैं तो पूछने भी न गई। जैसे राम राधा से, वैसे ही राधा राम से।

मनोरमा—आपको मालूम नहीं?

वसुमती—मैं होती कौन हूं? न सलाह में, न बात में। बेगानों की तरह घर में पड़ी दिन काट रही हूं?वह बैठी हुई हैं। उनसे पूछो, जानती होंगी।

मनोरमा रोहिणी के कमरे में आई। वह गावतकिए लगाए ठस्से से मसनद पर बैठी हुई थी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सामने आईना था। नाइन केश गूंथ रही थी। मनोरमा को देखकर मुस्कराई। पूछा—कैसे चलीं?

मनोरमा—आपको मालूम है, राजा साहब इस वक्त कहां मिलेंगे? मुझे उनसे कुछ कहना है।

रोहिणी—कहीं बैठे अपने नसीबों को रो रहे होंगे। यह मेरी हाय का फल है ! कैसा तमाचा पड़ा है कि याद ही करते होंगे। ईश्वर बड़ा न्यायी है। मैंने तो चिन्ता करनी ही छोड़ दी। जिन्दगी रोने के लिए थोड़े ही है। सच पूछो, तो इतना सुख मुझे कभी न था। घर में आग लगे या वज्र गिरे, मेरी बला से !

मनोरमा—मुझे सिर्फ इतना बता दीजिए कि वह कहां हैं?

रोहिणी—मेरे हृदय में ! उसे बाणों से छेद रहे हैं।

मनोरमा निराश होकर यहां से भी निकली। वह इस राजभवन में पहले ही पहल आई थी। अंदाज से दीवानखाने की तरफ चली। जब रानियों के यहां नहीं, तो अवश्य दीवानखाने में होंगे। द्वार पर पहुंचकर वह जरा ठिठक गई। झांककर अन्दर देखा, राजा साहब कमरे में टहलते थे और मूंछें ऐंठ रहे थे। मनोरमा अन्दर चली गई। पछताई कि व्यर्थ रानियों से पूछती फिरी।

राजा साहब उसे देखकर चौंक पड़े। कोई दूसरा आदमी होता, तो शायद वह उस पर झल्ला पड़ते, निकल जाने को कहते; किन्तु मनोरमा के मान-प्रदीप्त सौन्दर्य ने उन्हें परास्त कर दिया। खौलते हुए पानी ने दहकती हुई आग को शान्त कर दिया। उन्होंने पहले उसे एक बार देखा था। तब वह बालिका थी। आज वही बालिका नवयुवती हो गई थी। यह एक रात की भीषण चिन्ता, दारुण वेदना और दुस्सह तापसृष्टि थी। राजा साहब के सम्मुख आने पर भी उसे जरा भी भय या संकोच न हुआ। सरोष नेत्रों से ताकती हुई बोली-उसका कण्ठ आवेश से कांप रहा था—महाराज, मैं आपसे यह पूछने आई हूं कि क्या प्रभुत्व और पशुता एक ही वस्तु है या उनमें कुछ अन्तर है?

राजा साहब ने विस्मित होकर कहा—मैंने तुम्हारा आशय नहीं समझा, मनोरमा? बात क्या है? तुम्हारी त्योरियां चढ़ी हुई हैं। क्या किसी ने कुछ कहा है या मुझसे नाराज हो? यह भंवें क्यों तनी हुई हैं?

मनोरमा—मैं आपके सामने फरियाद करने आई हूं।

राजा—क्या तुम्हें किसी ने कटु वचन कहे हैं?

मनोरमा—मुझे किसी ने कटु वचन कहे होते, तो फरियाद करने न आती। अपने लिए आपको कष्ट न देती; लेकिन आपने-अपने तिलकोत्सव के दिन एक ऐसे प्राणी पर अत्याचार किया, जिस पर मेरी असीम भक्ति है, जिसे मैं देवता समझती हूं, जिसका हृदय कमल के जलसिंचित दल की भांति पवित्र और कोमल है, जिसमें संन्यासियों का-सा त्याग और ऋषियों का-सा सत्य है, जिसमें बालकों की-सी सरलता और योद्धाओं की-सी वीरता है। आपके न्याय और धर्म की चर्चा उसी पुरुष के मुंह से सुना करती थी। अगर यही उसका यथार्थ रूप है, तो मुझे भय है कि इस आतंक के आधार पर बने हुए राजभवन का शीघ्र ही पतन हो जाएगा और आपकी सारी कीर्ति स्वप्न की भांति मिट जाएगी। जिस समय आपके ये निर्दय हाथ बाबू चक्रधर पर उठे, अगर उस समय मैं वहां होती, तो कदाचित् कुन्दे का वह वार मेरी ही गर्दन पर पड़ता। मुझे आश्चर्य होता है कि उन पर आपके हाथ उठे क्योंकर ! उसी समय से मेरे मन में विचार हो रहा है कि क्या प्रभुत्व और पशुता एक ही वस्तु तो नहीं हैं?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मनोरमा के मुख से ये जलते हुए शब्द सुनकर राजा दंग रह गए। उनका क्रोध प्रचण्ड वायु के इस झोंके से आकाश पर छाए हुए मेघ के समान उड़ गया। आवेश में भरी हुई सरल ह्दया बालिका से वाद-विवाद करने के बदले उन्हें उस पर अनुराग उत्पन्न हो गया। सौन्दर्य के सामने प्रभुत्व भीगी बिल्ली बन जाता है। आसुरी शक्ति भी सौन्दर्य के सामने सिर झुका देती है। राजा साहब नम्रता से बोले—चक्रधर को तुम कैसे जानती हो?

मनोरमा—वह मुझे अंग्रेजी पढ़ाने आया करते हैं।

राजा—कितने दिनों से?

मनोरमा—बहुत दिन हुए।

राजा—मनोरमा, मेरे दिल में बाबू चक्रधर की इज्जत थी और है, उसकी चर्चा करते हुए शर्म आती है। जब उन पर इन्हीं कठोर हाथों से मैंने आघात किया, तो अब ऐसी बातें सुनकर तुम्हें विश्वास न आएगा। तुमने बहुत ठीक कहा है कि प्रभुत्व और पशुता एक ही वस्तु हैं। एक वस्तु चाहे न हों, पर उनमें फूस और चिनगारी का संबंध अवश्य है। मुझे याद नहीं आता कि कभी मुझे इतना क्रोध आया हो। अब मुझे याद आ रहा है कि मैंने धैर्य से काम लिया होता, तो चक्रधर चमारों को जरूर शांत कर देते। जनता पर उसी आदमी का असर पड़ता है,जिसमें सेवा का गुण हो। यह उनकी सेवा ही है, जिसने उन्हें इतना सर्वप्रिय बना दिया है, अंग्रेजों की प्राण-रक्षा करने में उन्होंने जितनी वीरता से काम लिया, उसे अलौकिक कहना चाहिए। वह द्रोहियों के सामने जाकर न खड़े हो जाते, तो शायद इस वक्त जगदीशपुर पर गोली की वर्षा होती और मेरी जो दशा होती, उसकी कल्पना ही से रोएं खड़े होते हैं। वह वीरात्मा हैं और उनके साथ मैंने जो अन्याय किया है, उसका मुझे जीवन-पर्यन्त दुःख रहेगा।

विनय क्रोध को निगल जाता है। मनोरमा शान्त होकर बोली—केवल दुःख प्रकट करने से तो अन्याय का घाव नहीं भरता?

राजा—क्या करूं मनोरमा, अगर मेरे वश की बात होती, तो मैं इसी क्षण जाता और चक्रधर को अपने कन्धे पर बैठाकर लाता, पर अब मेरा अख्तियार नहीं है। अगर उनकी जगह मेरा ही पुत्र होता, तो भी मैं कुछ न कर सकता।

मनोरमा—आप मिस्टर जिम से कह सकते हैं?

राजा—हां,कह सकता हूं, पर आशा नहीं कि वह मानें। राजनीतिक अपराधियों के साथ ये लोग जरा भी रिआयत नहीं करते, उनके विषय में कुछ सुनना नहीं चाहते। हां, एक बात हो सकती है, अगर चक्रधर जी यह प्रतिज्ञा कर लें कि अब वह कभी सार्वजनिक कामों में भाग न लें,तो शायद मिस्टर जिम उन्हें छोड़ दें। तुम्हें आशा है कि चक्रधर यह प्रतिज्ञा करेंगे?

मनोरमा ने संदिग्ध भाव से सिर हिलाकर कहा—न,मुझे इसकी आशा नहीं। वह अपनी खुशी से कभी ऐसी प्रतिज्ञा न करेंगे।

राजा—तुम्हारे कहने से न मान जाएंगे?

मनोरमा—मेरे कहने से क्या; वह ईश्वर के कहने से भी न मानेंगे और अगर मानेंगे भी तो उसी क्षण मेरे आदर्श से गिर जाएंगे। मैं यह कभी न चाहूंगी कि वह उन अधिकारों को छोड़ दें, जो उन्हें ईश्वर ने दिए हैं। आज के पहले मुझे उनसे वही स्नेह था, जो किसी को एक सज्जन आदमी से हो सकता है। मेरी भक्ति उन पर न थी। उनकी प्रणवीरता ही ने मुझे उनका भक्त बना दिया है, उनकी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निर्भीकता ही ने मेरी श्रद्धा पर विजय पाई है।

राजा ने बड़ी दीनता से पूछा—जब यह जानती हो, तो मुझे क्यों जिम के पास भेजती हो?

मनोरमा—इसलिए कि सच्चे आदमी के साथ सच्चा बर्ताव होना चाहिए। किसी को उसकी सच्चाई का या सज्जनता का दण्ड न मिलना चाहिए। इसी में आपका भी कल्याण है। जब तक चक्रधर के साथ न्याय न होगा, आपके राज्य में शान्ति न होगी। आपके माथे पर कलंक का टीका लगा रहेगा।

राजा—क्या करूं, मनोरमा ! अच्छे सलाहकार न मिलने से मेरी यह दशा हुई। ईश्वर जानता है, मेरे मन में प्रजाहित के लिए कैसे-कैसे हौसले थे। मैं अपनी रियासत में रामराज्य का युग लाना चाहता था, पर दुर्भाग्य से परिस्थिति कुछ ऐसी होती जाती है कि मुझे वे सभी काम करने पड़ रहे हैं जिनसे मुझे घृणा थी। न जाने वह कौन-सी शक्ति है जो मुझे अपनी आत्मा के विरुद्ध आचरण करने पर मजबूर कर देती है। मेरे पास कोई ऐसा मन्त्री नहीं है जो मुझे सच्ची सलाहें दिया करे। मैं हिंसक जन्तुओं से घिरा हुआ हूं। सभी स्वार्थी हैं, कोई मेरा मित्र नहीं। इतने आदमियों के बीच में मैं अकेला, निस्सहाय, मित्रहीन प्राणी हूं। एक भी ऐसा हाथ नहीं, जो मुझे गिरते देखकर संभाल ले। मैं अभी मिस्टर जिम के पास जाऊंगा और साफ-साफ कह दूंगा कि मुझे बाबू चक्रधर से कोई शिकायत नहीं है।

मनोरमा क सौन्दर्य ने राजा साहब पर जो जादू का-सा असर डाला था, वही असर उनकी विनय और शालीनता ने मनोरमा पर किया। सारी परिस्थिति उसकी समझ में आ गई। नरम होकर बोली—जब उनके पास जाने से आपको कोई आशा ही नहीं है, तो व्यर्थ क्यों कष्ट उठाइएगा? मैं आपसे यह आग्रह करूंगी। मैंने आपका इतना समय नष्ट किया, इसके लिए मुझे क्षमा कीजिएगा। मेरी कुछ बातें अगर कटु और अप्रिय लगी हों....।

राजा ने बात काटकर कहा—मनोरमा, सुधा-वृष्टि भी किसी को कड़वी और अप्रिय लगती है? मैंने ऐसी मधुर वाणी कभी न सुनी थी। तुमने मुझ पर अनुग्रह किया है, उसे कभी न भूलूंगा।

मनोरमा कमरे से चली गई। विशालसिंह द्वार पर खड़े उसकी ओर ऐसे तृषित नेत्रों से देखते रहे, मानो उसे पी जाएंगे। जब वह आंखों से ओझल हो गई, तो वह कुर्सी पर लेट गए। उनके हृदय में एक विचित्र आकांक्षा अंकुरित हो रही थी।

किन्तु वह आकांक्षा क्या थी ! मृगतृष्णा ! मृगतृष्णा !

सोलह

संध्या हो गयी है। ऐसी उमस है कि सांस लेना कठिन है, और जेल की कोठरियों में यह उमस और भी असह्य हो गई है। एक भी खिड़की नहीं; एक भी जंगला नहीं। उस पर मच्छरों का निरन्तर गान कानों के परदे फाड़े डालता है। सबके सब दावत खाने के पहले गा-गाकर मस्त हो रहे हैं। एक आध मरभुक्खे पत्तलों की राह न देखकर कभी-कभी रक्त का स्वाद ले लेते हैं; लेकिन अधिकांश मण्डली उस समय का इन्तजार कर रही है, जब निद्रा देवी उनके सामने पत्तल रखकर कहेंगी—प्यारे,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आओ जितना खा सको खाओ, जितना पी सको पिओ। रात तुम्हारी है और भण्डार भरपूर।

यहीं एक कोठरी में चक्रधर को भी स्थान दिया गया है। स्वाधीनता की देवी अपने सच्चे सेवकों को यही पद प्रदान करती है।

वह सोच रहे हैं— यह भीषण उत्पात क्यों हुआ? हमने तो कभी भूलकर भी किसी से यह प्रेरणा नहीं की। फिर लोगों के मन में यह बात कैसे समायी?इस प्रश्न का उन्हें यही उत्तर मिल रहा है कि हमारी नीयत का नतीजा है। हमारी शान्त शिक्षा की तह में द्वेष छिपा हुआ था। हम भूल गए थे कि संगठित शक्ति आग्रहमय होती है, अत्याचार से उत्तेजित हो जाती है। अगर हमारी नीयत साफ होती, तो जनता के मन में कभी राजाओं पर चढ़ दौड़ने का आवेश न होता, लेकिन क्या जनता राजाओं के कैम्प की तरफ न जाती, तो पुलिस उन्हें बिना रोकटोक अपने घर जाने देती? कभी नहीं। सवार के लिए घोड़े का अड़ जाना या बिगड़ जाना एक बात है। जो छेड़-छेड़कर लड़ना चाहे, उससे कोई क्योंकर बचे? फिर अगर प्रजा अत्याचार का विरोध न करे, तो उसके संगठन से फायदा ही क्या? इसीलिए तो उसे सारे उपदेश दिये जाते हैं। कठिन समस्या है। या तो प्रजा को उनके हाल पर छोड़ दूं, उन पर कितने ही जुल्म हों, उनके निकट न जाऊं, या ऐसे उपद्रवों के लिए तैयार रहूं। राज्य पशुबल का प्रयत्क्ष रूप है। वह साधु नहीं है, जिसका बल धर्म है, वह विद्वान नहीं है, जिसका बल तर्क है। वह सिपाही है, जो डंडे के जोर से अपना स्वार्थ सिद्ध करता है। इसके सिवा उसके पास कोई दूसरा साधन ही नहीं।

यह सोचते-सोचते उन्हें अपना खयाल आया। मैं तो कोई आन्दोलन नहीं कर रहा था। किसी को भड़का नहीं रहा था। जिन लोगों की प्राणरक्षा के लिए अपनी जान जोखिम में डाली, वही मेरे साथ यह सलूक कर रहे हैं। इतना भी नहीं देख सकते कि जनता पर किसी का असर हो। उनकी इच्छा इसके सिवा और क्या है कि सभी आदमी अपनी-अपनी आंखें बन्द कर रखें, उन्हें अपने आगे-पीछे, दाएं-बाएं देखने का हक नहीं। अगर सेवा करना पाप है, तो यह पाप तो मैं उस वक्त तक करता रहूंगा, जब तक प्राण रहेंगे। जेल की क्या चिन्ता? सेवा करने के लिए सभी जगह मौके हैं। जेल में तो और भी ज्यादा। लालाजी को दुःख होगा, अम्मा जी रोएंगी ! लेकिन मजबूरी है। जब बाहर भी जबान और हाथ-पांव बांधे जाएंगे, तो जैसे जेल, वैसे बाहर। हां, जरा उसका विस्तार अधिक है। मैं किसी तरह प्रतिज्ञा नहीं कर सकता। वह भी जेल ही है।

वह इसी सोच-विचार में पड़े हुए थे कि एकाएक मुंशी वज्रधर कमरे में दाखिल हुए। उनकी देह पर एक पुरानी अचकन थी, जिसका मैल उसके असली रंग को छिपाए हुए था, नीचे एक पतलून था, जो कमरबन्द न होने के कारण खिसककर इतना नीचा हो गया था कि घुटनों के नीचे एक झोल-सा पड़ गया था। संसार में कपड़े से ज्यादा बेवफा और कोई वस्तु नहीं होती। हमारा घर बचपन से बुढ़ापे तक हर अवस्था में हमारा है। वस्त्र हमारा होते हुए भी हमारा नहीं रहता। आज जो वस्त्र हमारा है, वह कल हमारा न रहेगा। उसे हमारे सुख-दुख की जरा भी चिन्ता नहीं होती,फौरन बेवफाई कर जाता है। हम जरा बीमार हो जाएं, किसी स्थान की जलवायु जरा हमारे अनुकूल हो जाए कि बस, हमारे प्यारे वस्त्र, जिनके लिए हमने दर्जी की दुकान की खाक छान डाली थी, हमारा साथ छोड़ देते हैं। उन्हें अपना बनाओ, अपने नहीं होते। अगर जबरदस्ती गले लगाओ, तो चिल्ला-चिल्लाकर कहते हैं, हम तुम्हारे नहीं। वे केवल हमारी पूर्वावस्था के चिह्न होते हैं।

मुंशी वज्रधर की अचकन भी, जो उनकी अल्पकालीन लेकिन ऐतिहासिक तहसीलदारी की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यादगार थी, पुकार-पुकारकर कहती थी—मैं अब इनकी नहीं। किन्तु तहसीलदार साहब हुकूमत के जोर से चिपटाए हुए थे। तुम कितनी ही बेवफाई करो, मेरी कितनी ही बदनामी करो, छोड़ने का नहीं। अच्छे दिनों में तो तुमने हमारे साथ चैन किए, इन बुरे दिनों में तुम्हें क्यों छोड़ूं? यों भूत और वर्तमान के संग्राम की मूर्ति बने हुए तहसीलदार साहब चक्रधर के पास जाकर बोले—क्या करते हो बेटा?यहां तो बड़ा अंधेरा है। चलो, बाहर इक्का खड़ा है, बैठ लो। इधर ही से साहब के बंगले पर होते चलेंगे। जो कुछ वह कहें, लिख देना। बात ही कौन-सी है? हमें कौन किसी से लड़ाई करनी है। कल ही से दौड़ लगा रहा हूं। बारे आज दोपहर को जाके सीधा हुआ। पहले बहुत यों-त्यों करता रहा, लेकिन मैंने पिण्ड न छोड़ा। मेम साहब के पास पहुंचकर रोने लगा। इस फन में तुम जानो उस्ताद हूं। सरकारी मुलाजिमत और वह भी तहसीलदारी सब कुछ सिखा देती है। अंग्रेजों को तो तुम जानते ही हो, मेमों के गुलाम होते हैं। मेम ने जाकर हजरत को डांटा—क्यों तहसीलदार साहब को दिक कर रहे हो? अभी उनके लड़के को छोड़ दो, नहीं तो घर से निकल जाओ। वह डांट पड़ी, तो हजरत के होश ठिकाने हुए। बोले—वेल, तहसीलदार साहब, हम आपका बहुत इज्जत करता है। आपको हम नाउम्मेद नहीं करना चाहता, लेकिन जब तक आपका बेटा इस बात का कौल न करे कि वह फिर कभी गोलमाल न करेगा, तब तक हम उसे नहीं छोड़ सकता। हम अभी जेलर को लिखता है कि उससे पूछो राजी है? मैंने कहा—हुजूर, मैं खुद जाता हूं और उसे हुजूर की खिदमत में लाकर हाजिर करता हूं। या वहां न चलना चाहो, तो यहीं एक हलफनामा लिख दो। देर करने से क्या फायदा? तुम्हारी अम्मा रो-रोकर जान दे रही हैं।

चक्रधर ने सिर नीचा करके कहा—अभी तो मैंने कुछ निश्चय नहीं किया। सोच कर जवाब दूंगा। आप नाहक इतने हैरान हुए।

वज्रधर—कैसी बातें करते हो,यहां नाक कटी जा रही है,घर से निकलना मुश्किल हो गया है और तुम कहते हो, सोचकर जवाब दूंगा। इसमें सोचने की बात ही क्या है? इस तहसीलदारी की लाज तो रखनी है। की तो थोड़े ही दिन, लेकिन आज तक लोग याद करते हैं और हमेशा याद करेंगे। कोई हाकिम इलाके में आया नहीं कि उससे मिलने दौड़ा। रसद के ढेर लगा देता था। हाकिमों के नौकर-चाकर तक खाते-खाते ऊब जाते थे। जमींदारों की तो मेरे नाम से जान निकल जाती थी। जिस साहब ने मेरी तारीफी चिट्ठियां पढ़ीं, तो दंग रह गए। इज्जत को तो निभाना ही पड़ेगा। चलो, हलफनामा लिख दो। घर में कल से आग नहीं जली।

चक्रधर—मेरी आत्मा किसी तरह अपने पांव में बेड़ियां डालने पर राजी नहीं होती।

वज्रधर—मौका देखकर सब कुछ किया जाता है, बेटा ! दुनिया में कोई किसी का नहीं होता। यही राजा साहब पहले तुमसे कितनी मुहब्बत से पेश आते थे। अब अपने सिर पर पड़ी, तो कैसे सारी बला तुम्हारे सिर ठेलकर निकल गए। दीवान साहब का लड़का गुरुसेवक पहले जाति के पीछे कैसा लट्ठ लिये फिरता था। कल डिप्टी कलक्टरी में नामजद हो गया। कहां तो हमसे हमदर्दी करता था; कहां अब विद्रोहियों के खिलाफ जलसा करने के लिए दौड़-धूप कर रहा है। जब सारी दुनिया अपना मतलब निकालने की धुन में है, तो तुम्हीं दुनिया की फिक्र में क्यों अपने को बरबाद करो? दुनिया जाय जहन्नुम में। हमें अपने काम से काम है या दुनिया के झगड़ों से?

चक्रधर—अगर और लोग अपने मतलब के बन्दे हो जाएं और स्वार्थ के लिए अपने सिद्धांतों से मुंह मोड़ बैठें तो कोई वजह नहीं कि मैं भी उन्हीं की नकल करूं। मैं ऐसे लोगों को अपना आदर्श

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नहीं बना सकता। मेरे आदर्श इनसे बहुत ऊंचे हैं।

वज्रधर—बस, तुम्हारी इसी जिद पर मुझे गुस्सा आता है। मैंने भी अपनी जवानी में इस तरह के खिलवाड़ किए हैं, और उन लोगों को कुछ-कुछ जानता हूं जो अपने को जाति के सेवक कहते हैं। बस, मुंह न खुलवाओ। सब अपने-अपने मतलब के बन्दे हैं, दुनिया को लूटने के लिए यह सारा स्वांग फैला रखा है। हां, तुम्हारे जैसे दो-चार उल्लू भले ही फंस जाते हैं, जो अपने को तबाह कर डालते हैं। मैं तो सीधी-सी बात जानता हूं—जो अपने घरवालों की सेवा न कर सका, वह जाति की सेवा कभी कर ही नहीं सकता, घर सेवा की सीढ़ी का पहला डण्डा है। इसे छोड़कर तुम ऊपर नहीं जा सकते।

चक्रधर जब अब भी प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करने पर राजी न हुए, तो मुंशीजी निराश होकर बोले—अच्छा बेटा लो, अब कुछ न कहेंगे। जो तुम्हारी खुशी हो, वह करो। मैं जानता था कि तुम जन्म के जिद्दी हो, मेरी एक न सुनोगे, इसीलिए आता ही न था, लेकिन तुम्हारी माता ने मुझे कुरेदकर भेजा। कह दूंगा, नहीं आता। सब कुछ करके हार गया, सब्र करके बैठो, उसे अपनी बात और अपनी शान मां-बाप से प्यारी है। जितना रोना हो, रो लो।

कठोर से कठोर हृदय में भी मातृस्नेह की कोमल स्मृतियां संचित होती हैं। चक्रधर कातर होकर बोले—आप माताज़ी को समझाते रहिएगा। कह दीजिएगा, मुझे जरा भी तकलीफ नहीं है, मेरे लिए रंज न करें।

वज्रधर ने इतने दिनों तक यों ही तहसीलदारी न की थी। ताड़ गए कि अबकी निशाना ठीक पड़ा। बेपरवाही से बोले—मुझे क्या गरज पड़ी है कि किसी के लिए झूठ बोलूं। बिना किसी मतलब के झूठ बोलना मेरी नीति नहीं। जो आंखों से देख रहा हूं वही कहूंगा। रोएंगी, रोएं; इसमें मेरा क्या अख्तियार है। रोना तो उनकी तकदीर ही में लिखा है। जब से तुम आए हो, एक घूंट पानी तक मुंह में नहीं डाला। इसी तरह दो-चार दिन और रहीं, तो प्राण निकल जाएंगे। तुम्हारे सिर का बोझ टल जाएगा ! यह लो, वॉर्डन मुझे बुलाने आ रहे हैं। वक्त पूरा हो गया।

चक्रधर ने दीन-भाव से कहा—अम्मांजी को एक बार यहां न लाइएगा?

वज्रधर—तुम्हें इस दशा में देखकर तो उन्हें जो दो-चार दिन जीना है,वह भी न जिएंगी। क्या कहते हो? इकरारनामा लिखना हो, तो मेरे साथ दफ्तर में चलो।

चक्रधर करुणा से विह्वल हो गए। बिना कुछ कहे हुए मुंशीजी के साथ दफ्तर की ओर चले। मुंशीजी के चेहरे की झुर्रियां एक क्षण के लिए मिट गईं। चक्रधर को गले लगाकर बोले—जीते रहो बेटा, तुमने मेरी बात मान ली। इससे बढ़कर और क्या खुशी की बात होगी !

दोनों आदमी दफ्तर में आए, तो जेलर ने कहा--कहिए, तहसीलदार साहब, आपकी हार हुई न? मैं कहता न था, वह न सुनेंगे। आजकल के नौजवान अपनी बात के आगे किसी की नहीं सुनते।

वज्रधर--जरा कलम-दवात तो निकालिए। और बातें फिर होंगी।

दारोगा—(चक्रधर से) क्या आप इकरारनामा लिख रहे हैं ! निकल गई सारी शेखी ! इसी पर इतनी दूनकी लेते थे !

चक्रधर पर घड़ों पानी पड़ गया। मन की अस्थिरता पर लज्जित हो गए। जाति-सेवकों से सभी दृढ़ता की आशा रखते हैं, सभी उसे आदर्श पर बलिदान होते देखना चाहते हैं। जातीयता के क्षेत्र में आते ही उसके गुणों की परीक्षा अत्यन्त कठोर नियमों से होने लगती है और दोषों की सूक्ष्म

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नियमों से। परले सिरे का कुचरित्र मनुष्य भी साधुवेश रखने वालों से ऊंचे आदर्श पर चलने की आशा रखता है, और उन्हें आदर्श से गिरते देखकर उनका तिरस्कार करने में संकोच नहीं करता! जेलर के कटाक्ष ने चक्रधर की झपकी हुई आंखें खोल दीं। तुरन्त उत्तर दिया— मैं जरा वह प्रतिज्ञापत्र देखना चाहता हूं।

तहसीलदार साहब ने जेलर की मेज से वह कागज उठा लिया और चक्रधर को दिखाते हुए बोले—बेटा, इसमें कुछ नहीं है। जो कुछ मैं कह चुका हूं, वही बातें जरा कानूनी ढंग से लिखी गई हैं।

चक्रधर ने कागज को सरसरी तौर से देखकर कहा—इसमें तो मेरे लिए कोई जगह ही नहीं रही। घर पर कैदी बना रहूंगा। मेरा ऐसा खयाल न था। अपने हाथों अपने पांवों में बेड़ियां न डालूंगा। जब कैद ही होना है, तो कैदखाना क्या बुरा है? अब या तो अदालत से बरी होकर आऊंगा, या सजा के दिन काटकर।

यह कहकर चक्रधर अपनी कोठरी में चले आए और एकान्त में खूब रोए। आंसू उमड़ रहे थे; पर जेलर के सामने कैसे रोते?

एक सप्ताह बाद मिस्टर जिम के इलजास में मुकद्दमा चलने लगा। तहसीलदार साहब ने न कोई वकील खड़ा किया, न अदालत में आए। यहां तो गवाहों के बयान होते थे, और वह सारे दिन जिम के बंगले पर बैठे रहते थे। साहब बिगड़ते थे, धमकाते थे; पर वह उठने का नाम न लेते। जिम जब बंगले से निकलते, तो द्वार पर मुंशीजी खड़े नजर आते थे। कचहरी से आते, तो भी उन्हें वहीं खड़ा पाते। मारे क्रोध के लाल हो जाते। दो-एक बार घूंसा भी ताना; लेकिन मुंशीजी को सिर नीचा किए देख दया आ गई। अक्सर यह साहब के दोनों बच्चों को खिलाया करते, कन्धे पर लेकर दौड़ते, मिठाइयां ला-लाकर खिलाते और मेम साहब को हंसाने वाले लतीफे सुनाते।

आखिर एक दिन साहब ने पूछा—तुम मुझसे क्या चाहता है?

वज्रधर ने अपनी पगड़ी उतारकर साहब के पैरों पर रख दी और हाथ जोड़कर बोले—हुजूर, सब जानते हैं, मैं क्या अर्ज करूं! सरकार की खिदमत में सारी उम्र कट गई। मेरे देवता तो, ईश्वर तो, जो कुछ हैं, आप ही हैं। आपके सिवा मैं और किसके द्वार पर जाऊं? किसके सामने रोऊं? इन पके बालों पर तरस खाइए। मर जाऊंगा हुजूर, इतना बड़ा सदमा उठाने की ताकत अब नहीं रही!

जिम—हम छोड़ नहीं सकता, किसी तरह नहीं।

वज्रधर—हुजूर जो चाहें करें। मेरा तो आपसे कहने ही भर का अख्तियार है। हुजूर को दुआ देता हुआ मर जाऊंगा, पर दामन न छोड़ूंगा।

जिम—तुम अपने लड़के को क्यों नहीं समझाता?

वज्रधर— हुजूर नाखलफ है, और क्या कहूं! खुदा सताए दुश्मन को भी ऐसी औलाद न दे। जी तो यही चाहता है कि हुजूर, कम्बख्त का मुंह न देखूं लेकिन कलेजा नहीं मानता। हुजूर, मां-बाप का दिल कैसा होता है, इसे तो हुजूर भी जानते हैं।

अदालत में रोज खासी भीड़ हो जाती। वे सब मजदूर, जिन्होंने हड़ताल की थी, एक बार चक्रधर के दर्शनों को आ जाते; यदि चक्रधर को छोड़ने के लिए एक सौ आदमियों की जमानत मांगी जाती, तो उसके मिलने में बाधा न होती। सब जानते थे कि इन्हें हमारे पापों का प्रायश्चित करना पड़ रहा है। शहर से भी हजारों आदमी आ पहुंचते थे। कभी-कभी राजा विशालसिंह भी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आकर दर्शकों की गैलरी में बैठ जाते। लेकिन और कोई आए या न आए, सबेरे या देर से आए, किन्तु मनोरमा रोज ठीक दस बजे कचहरी में आ जाती और अदालत के उठने तक अपनी जगह पर मूर्ति की भांति बैठी रहती। उसके मुख पर अब पहले की-सी अरुण आभा, वह चंचलता, वह प्रफुल्लता नहीं है। उसकी जगह दृढ़ संकल्प, विशाल करुणा, अलौकिक धैर्य और गहरी चिन्ता का फीका रंग छाया हुआ है, मानो कोई वैरागिनी है, जिसके मुख पर हास्य की मृदु-रेखा कभी खिंची ही नहीं। वह न किसी से बोलती है, न मिलती है। उसे देखकर सहसा कोई यह नहीं कह सकता है कि यह वही आमोदप्रिय बालिका है, जिसकी हंसी दूसरों को हंसाती थी।

वहां बैठी हुई मनोरमा कल्पनाओं का संसार रचा करती है। उस संसार में प्रेम ही प्रेम है, आनन्द ही आनन्द है। उसे अनायास कहीं से अतुल धन मिल जाता है, कदाचित् कोई देवी प्रसन्न हो जाती है। इस विपुल धन को वह चक्रधर के चरणों पर अर्पण कर देती है, फिर भी चक्रधर उसके राजा नहीं होते, वह अब भी उसके आश्रयी ही रहते हैं। उन्हें आश्रय ही देने के लिए वह रानी बनती है, अपने लिए वह कोई मंसूबे नहीं बांधती। जो कुछ सोचती है, चक्रधर के लिए। चक्रधर से प्रेम नहीं है, केवल भक्ति है। चक्रधर को वह मनुष्य नहीं, देवता समझती है।

सन्ध्या का समय था। आज पूरे पन्द्रह दिनों की कार्रवाई के बाद मिस्टर जिम ने दो साल की कैद का फैसला सुनाया था। यह कम से कम सजा थी, जो उस धारा के अनुसार दी जा सकती थी।

चक्रधर हंस-हंसकर मित्रों से विदा हो रहे थे। सबकी आंखों में जल भरा हुआ था। मजदूरों का दल इजलास के द्वार पर खड़ा "जय-जय" का शोर मचा रहा था। कुछ स्त्रियां खड़ी रो रही थीं। सहसा मनोरमा आकर चक्रधर के सम्मुख खड़ी हो गई। उसके हाथ में एक फूलों का हार था। वह उसने उनके गले में डाल दिया और बोली—अदालत ने तो आपको सजा दे दी, पर इतने आदमियों में से एक भी ऐसा न होगा, जिसके दिल में आपसे सौगुना प्रेम न हो गया हो। आपने हमें सच्चे साहस, आत्मबल और सच्चे कर्त्तव्य का रास्ता दिखा दिया। जाइए, जिस काम का बीड़ा उठाया है, उसे पूरा कीजिए, हमारी शुभ कामनाएं आपके साथ हैं।

उसने इसी अवसर के लिए कई दिन से वाक्य रट रखे थे। इस भांति उद्गारों को न बांध रखने से वह आवेश में जाने क्या कह जाती।

चक्रधर ने केवल दबी आंखों से मनोरमा को देखा, कुछ बोल न सके। उन्हें शर्म आ रही थी कि लोग दिल में क्या खयाल कर रहे होंगे। सामने राजा विशालसिंह, दीवान साहब, ठाकुर गुरुसेवक और मुंशी वज्रधर खड़े थे। बरामदे में हजारों आदमियों की भीड़ थी। धन्यवाद के शब्द उनकी जबान पर आकर रुक गए। वह दिखाना चाहते थे कि मनोरमा की यह वीरभक्ति उसकी बालक्रीड़ा मात्र है।

एक क्षण में सिपाहियों ने चक्रधर को बन्द गाड़ी में बिठा दिया और जेल की ओर ले चले। धीरे-धीरे कमरा खाली हो गया। मिस्टर जिम ने भी चलने की तैयारी की। तहसीलदार साहब के सिवा अब कमरे में और कोई न था। जब जिम कटघरे से नीचे उतरे, तो मुंशीजी आंखों में आंसू भरे उनके पास आए और बोले—मिस्टर जिम, मैं तुम्हें आदमी समझता था, पर तुम पत्थर निकले। मैंने तुम्हारी जितनी खुशामद की, उतनी अगर ईश्वर की करता, तो मोक्ष पा जाता। मगर तुम न पसीजे। रिआया का दिल यों मुट्ठी में नहीं आता। यह धांधली उसी वक्त तक चलेगी, जब तक यहां के लोगों की आंखें बन्द हैं। यह मजा बहुत दिनों तक न उठा सकोगे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह कहते हुए मुंशीजी कमरे से बाहर चले आये। जिम ने कुपित नेत्रों से देखा, पर कुछ बोला नहीं।

चक्रधर जेल पहुंचे,तो शाम हो गई थी। जाते ही उनके कपड़े उतार लिये गए और जेल के वस्त्र मिले। लोटा और तसला भी दिया गया। गर्दन में लोहे का नम्बर डाल दिया गया। चक्रधर जब ये कपड़े पहनकर खड़े हुए, तो उनके मुख पर विचित्र शान्ति की झलक दिखाई दी, मानो किसी ने जीवन का तत्त्व पा लिया हो। इन्होंने वही किया, जो उनका कर्त्तव्य था और कर्त्तव्य का पालन ही चित्त की शान्ति का मूल मन्त्र है।

रात को जब वह लेटे, तो मनोरमा की सूरत आंखों के सामने फिरने लगी। उसकी एक-एक बात याद आने लगी और हर बात में कोई न कोई गुप्त आशय भी छिपा हुआ मालूम होने लगा: लेकिन इसका अन्त क्या? मनोरमा, तुम क्यों मेरे झोंपड़े में आग लगाती हो? तुम्हें मालूम है, तुम मुझे किधर खींचे लिए जाती हो? ये बातें कल तुम्हें भूल जायेंगी। किसी राजा-रईस से तुम्हारा विवाह हो जाएगा, फिर भूलकर भी न याद करोगी। देखने पर शायद पहचान भी न सको ! मेरे हृदय में क्यों अपने खेल के घरौंदे बना रही हो? तुम्हारे लिए जो खेल है, वह मेरे लिए मौत है। मैं जानता हूं, यह तुम्हारी बालक्रीड़ा है; लेकिन मेरे लिए वह आग की चिनगारी है। तुम्हारी आत्मा कितनी पवित्र है, हृदय कितना सरल ! धन्य होंगे उसके भाग्य, जिसकी तुम हृदयेश्वरी बनोगी; मगर इस अभागे को कभी अपनी सहानुभूति और सहृदयता से वंचित मत करना। मेरे लिए इतना ही बहुत है !

सत्रह

राजा विशालसिंह की जवानी कब की गुजर चुकी थी, किन्तु प्रेम से उनका हृदय अभी तक वंचित था। अपनी तीनों रानियों में केवल वसुमती के प्रेम की कुछ भूली हुई-सी याद उन्हें आती थी। प्रेम वह प्याला नहीं है, जिससे आदमी छक जाय, उसकी तृष्णा सदैव बनी रहती है। राजा साहब को अब अपनी रानियां गंवारिनें-सी जंचती थीं, जिन्हें इसका जरा भी ज्ञान न था कि अपने को इस नई परिस्थिति के अनुकूल कैसे बनाएं, कैसे जीवन का आनन्द उठाएं। वे केवल आभूषणों ही पर टूट रही थीं। रानी देवप्रिया के बहुमूल्य आभूषणों के लिए तो वह संग्राम छिड़ा कि कई दिन तक आपस में गोलियां-सी चलती रहीं। राजा साहब पर क्या बीत रही है, राज्य की क्या दशा है, इसकी किसी को सुध न थी। उनके लिए जीवन में यदि कोई वस्तु थी, तो वह रत्न और आभूषण थे। यहां तक कि रामप्रिया भी अपने हिस्से के लिए लड़ने-झगड़ने में संकोच न करती थी। इस आभूषण प्रेम के सिवा उनकी रुचि या विचार में कोई विकास न हुआ। कभी-कभी तो उनके मुंह से ऐसी बातें निकल जाती थीं कि रानी देवप्रिया के समय की लौंडिया-बांदियाँ मुंह मोड़कर हंसने लगतीं। उनका यह व्यवहार देखकर राजा साहब का दिल उनसे खट्टा होता जाता था।

यों अपने-अपने ढंग पर तीनों ही उनसे प्रेम करती थीं। वसुमती के प्रेम में ईर्ष्या थी, रोहिणी के प्रेम में शासन। और रामप्रिया का प्रेम तो सहानुभूति की सीमा के अन्दर ही रह जाता था। कोई राजा के जीवन को सुखमय न बना सकती थी, उनकी प्रेमतृष्णा को तृप्त न करती थी। उन सरोवरों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के बीच में यह प्यास से तड़प रहे थे—उस पथिक की भांति, जो गन्दे तालाबों के सामने प्यास से व्याकुल हो। पानी बहुत था, पर पीने लायक नहीं। उसमें दुर्गन्ध थी, विष के कीड़े थे। इसी व्याकुलता की दशा में मनोरमा मीठे, ताजे जल की गागर लिए हुए सामने से आ निकली—नहीं, उसने उन्हें जल पीने को निमन्त्रित किया—और वह उसकी ओर लपके, तो आश्चर्य की कोई बात नहीं।

राजा साहब के हृदय में नई-नई प्रेम-कल्पनाएं अंकुरित होने लगीं। उसकी एक-एक बात उन्हें अपनी ओर खींचती थी। वेश कितना सुन्दर था ! वस्त्रों से सुरुचि झलकती थी, आभूषणों से सुबुद्धि। वाणी कितनी मधुर थी, प्रतिभा में डूबी हुई, एक-एक शब्द हृदय की पवित्रता में रंगा हुआ। कितनी अद्भुत रूप छटा है, मानो ऊषा के हृदय से ज्योतिर्मय मधुर संगीत कोमल, सरस, शीतल ध्वनि निकल रही हो। वह अकेली आई थी, पर यह विशाल दीवानखाना भरा-सा मालूम होता था। हृदय कितना उदार है, कितना कोमल ! ऐसी रमणी के साथ जीवन कितना आनन्दमय, कितना कल्याणमय हो सकता है ! जो बालिका एक साधारण व्यक्ति के प्रति इतनी श्रद्धा रख सकती है, वह अपने पति के साथ कितना प्रेम करेगी, कल्पना से उनका चित्त फूल उठता था। जीवन स्वर्ग तुल्य हो जाएगा। और अगर परमात्मा की कृपा से किसी पुत्र का जन्म हुआ, तो कहना ही क्या ! उसके शौर्य और तेज के सामने बड़े-बड़े नरेश कांपेंगे। बड़ा प्रतापी, मनस्वी, कर्मशील राजा होगा, जो कुल को उज्ज्वल कर देगा। राजा साहब को इसकी लेश मात्र भी शंका न थी कि मनोरमा उन्हें वरने की इच्छा भी करेगी या नहीं। उनके विचार में अतुल सम्पत्ति अन्य सभी त्रुटियों को पूरा कर सकती थी।

दीवान साहब से पहले वह खिंचे रहते थे। अब उनका विशेष आदर-सत्कार करने लगे। उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम न करते। दो-तीन बार उनके मकान पर भी गए और अपनी सज्जनता की छाप लगा आए। ठाकुर साहब की भी कई बार दावत की। आपस में घनिष्ठता बढ़ने लगी। हर्ष की बात यह थी कि मनोरमा के विवाह की बातचीत और कहीं नहीं हो रही थी। मैदान खाली था। इन अवसरों पर मनोरमा उनके साथ कुछ इस तरह दिल खोलकर मिली कि राजा साहब की आशाएं और भी चमक उठीं। क्या उसका उनसे हंस-हंसकर बातें करना, बार-बार उनके पास आकर बैठ जाना और उनकी बातों को ध्यान से सुनना, रहस्यपूर्ण नेत्रों से उनकी ओर ताकना और नित्य नई छवि दिखाना, उसके मनोभावों को प्रकट न करता था? रहे दीवान साहब, वह सांसारिक जीव थे और स्वार्थ-सिद्धि के ऐसे अच्छे अवसर को कभी न छोड़ सकते थे, चाहे समाज इसका तिरस्कार ही क्यों न करे। हां, अगर शंका थी, तो लौंगी की ओर से थी। वह राजा साहब का आना-जाना पसन्द न करती थी। वह उनके इरादों को भांप गई थी और उन्हें दूर ही रखना चाहती थी। मनोरमा को बार-बार आंखों से इशारा करती थी कि अन्दर जा। किसी-न-किसी बहाने से उसे हटाने की चेष्टा करती रहती थी। उसका मुंह बन्द करने के लिए राजा साहब उससे लल्लो-चप्पो की बातें करते और एक बार एक कीमती साड़ी भी उसको भेंट की, पर उसने उसकी ओर देखे बिना ही उसे लौटा दिया। राजा साहब के मार्ग में यही एक कंटक था और उसे हटाए बिना वह अपने लक्ष्य पर न पहुंच सकते थे। बेचारे इसी उधेड़-बुन में पड़े रहते थे। आखिर उन्होंने मुंशीजी को अपना एक भेदिया बनाना निश्चय किया। वही ऐसे प्राणी थे, जो इस कठिन समस्या को हल कर सकते थे। एक दिन उन्हें एकान्त में बुलाया और राज-सम्बन्धी बातें करने लगे।

राजा—इलाके का क्या हाल है? फसल तो अबकी बहुत अच्छी है?

मुंशी— हुजूर, मैंने अपनी उम्र में ऐसी अच्छी फसल नहीं देखी। अगर पूरब के इलाके में दो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सौ कुएं बन जाते, तो फसल दुगुनी हो जाती। पानी का वहां बड़ा कष्ट है।

राजा—मैं खुद इसी फिक्र में हूं। कुएं क्या, मैं तो एक नहर बनवाना चाहता हूं। अरमान तो दिल में बड़े- बड़े थे, मगर सामने अंधेरा देखकर कुछ हौसला नहीं होता। सोचता हूं, किसके लिए यह जंजाल बढ़ाऊं!

इस भूमिका के बाद विवाह की चर्चा अनिवार्य थी।

राजा—मैं अब क्या विवाह करूंगा? जब ईश्वर ने अब तक संतान न दी, तो अब कौन-सी आशा है?

मुंशी—गरीबपरवर, अभी आपकी उम्र ही क्या है। मैंने अस्सी बरस की उम्र में आदमियों के भाग्य जागते देखे हैं।

राजा—फिर मुझसे अपनी कन्या का विवाह कौन करेगा?

मुंशी—अगर आपका जरा-सा इशारा पा गया होता, तो अब तक कभी की बहूजी घर में आ गई होतीं। राजा से अपनी कन्या का विवाह करना किसे बुरा लगता है?

राजा—लेकिन मुझे तो अब ऐसी स्त्री चाहिए, जो सुशिक्षित हो, विचारशील हो, राज्य के मामलों को समझती हो, अंग्रेजी रहन-सहन से परिचित हो। बड़े-बड़े अफसर आते हैं। उनकी मेमों का आदर-सत्कार कर सके। घर अंग्रेजी ढंग से सजा सके। बातचीत करने में चतुर हो। बाहर निकलने में न झिझके। ऐसी स्त्री आसानी से नहीं मिल सकती। मिली भी तो उसमें चरित्र-दोष अवश्य होंगे। जहां ऐसी स्त्रियों को देखता हूं, भ्रष्ट ही पाता हूं। मैं तो ऐसी स्त्री चाहता हूं, जो इन गुणों के साथ निष्कलंक हो। ऐसी एक कन्या मेरी निगाह में है, लेकिन वहां मेरी रसाई नहीं हो सकती।

मुंशी—क्या इसी शहर में है?

राजा—शहर में ही नहीं, घर ही में समझिए।

मुंशी—अच्छा, समझ गया। मैं तो चकरा गया कि इस शहर में ऐसा कौन राजा रईस है, जहां हुजूर की रसाई नहीं हो सकती। वह तो सुनकर निहाल हो जाएंगे, दौड़ते हुए करेंगे। कन्या सचमुच देवी है। ईश्वर ने उसे रानी बनने ही के लिए बनाया है। ऐसी विचारशील लड़की मेरी नजर से नहीं गुजरी।

राजा—आप जरा घर वालों को आजमाइए तो। आप जानते हैं न, दीवान साहब के घर की स्वामिनी लौंगी है?

मुंशी—वह क्या करेगी?

राजा—वही सब कुछ करेगी। दीवान साहब को तो उसने भेड़ा बना रखा है। और, है भी 'अभिमानिनी। न उस पर लालच का कुछ दांव चलता है, न खुशामद का।

मुंशी—हुजूर, उसकी कुंजी मेरे पास है। खुशामद से तो उसका मिजाज और भी बढ़ता है। कितने ही बड़े दरजे पर पहुंचे जाय, पर है तो वह नीच जात। उसे धमकाकर, मारने का भय दिखाकर, आप उससे जो काम चाहें करा सकते हैं। नीच जात बातों से नहीं, लातों ही से मानती है।

दूसरे दिन प्रातःकाल मुंशीजी दीवान साहब के मकान पर पहुंचे। दीवान साहब मनोरमा के साथ गंगास्नान को गए हुए थे। लौंगी अकेली बैठी हुई थी। मुंशी जी फूले न समाए। ऐसा ही मौका चाहते थे। जाते ही जाते विवाह की बात छेड़ दी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लौंगी ने कहा—तहसीलदार साहब, कैसी बातें करते हो? हमें अपनी रानी को धन के साथ बेचना थोड़े ही है। ब्याह जोड़ का होता है कि ऐसा बेजोड़? लड़की कंगाल को दे, पर बूढ़े को न दे। गरीब रहेगी तो क्या, जन्म भर का रोना-झींकना तो न रहेगा।

मुंशी—तो राजा बूढ़े हैं?

लौंगी—और नहीं क्या छैला जवान हैं?

मुंशी—अगर यह विवाह न हुआ, तो समझ लो कि ठाकुर साहब कहीं के न रहेंगे। तुम नीच जात राजाओं का स्वभाव क्या जानो? राजा लोगों को जहां किसी बात की धुन सवार हो गई, फिर उसे पूरा किए बिना न मानेंगे, चाहे उनका राज्य ही क्यों न मिट जाय। राजाओं की बात को दुलखना हंसी नहीं है, क्रोध में आकर न जाने क्या हुक्म दे बैठें। बात तो समझती ही नहीं हो, सब धान बाईस पसेरी ही तौलना चाहती हो।

लौंगी—यह तो अनोखी बात है कि या तो अपनी बेटी दे, या मेरा गांव छोड़। ऐसी धमकी देकर थोड़े ही ब्याह होता है।

मुंशी—राजाओं-महाराजाओं का काम इसी तरह होता है। अभी तुम इन राजा साहब को जानती नहीं हो। सैकड़ों आदमियों को भुनवा के रख दिया, किसी ने पूछा तक नहीं। अभी चाहे जिसे लुटवा लें, चाहे जिसके घर में आग लगवा दें। अफसरों से दोस्ती है ही, कोई उनका कर ही क्या सकता है? जहां एक अच्छी-सी डाली भेज दी, काम निकल गया।

लौंगी—तो यों कहो कि पूरे डाकू हैं।

मुंशी—डाकू कहो, लुटेरे कहो, सभी कुछ हैं। बात जो थी, मैंने साफ-साफ कह दी। यह चारपाई पर बैठकर पान चबाना भूल जाइएगा।

लौंगी—तहसीलदार साहब, तुम तो धमकाते हो, जैसे हम राजा के हाथों बिक गए हों। रानी रूठेंगी, अपना सोहाग लेंगी। अपनी नौकरी ही लेंगे, ले जाएं। भगवान् का दिया खाने को बहुत है।

मुंशी—अच्छी बात है, मगर याद रखना, खाली नौकरी से हाथ धोकर गला न छूटेगा। राजा लोग जिसे निकालते हैं, कोई-न-कोई दाग भी जरूर लगा देते हैं। एक झूठा इलजाम भी लगा देंगे, तो कुछ करते-धरते न बनेगा। यही कह दिया कि इन्होंने सरकारी रकम उड़ा ली है, तो बताओ क्या होगा? समझ से काम लो। बड़ों से रार मोल लेने में अपना निबाह नहीं है। तुम अपना मुंह बन्द रखो, हम दीवान साहब को राजी कर लेंगे। अगर तुमने भांजी मारी, तो बला तुम्हारे ही सिर आएगी। ठाकुर साहब चाहे इस वक्त तुम्हारा कहना मान जाएं, पर जब चरखे में फंसेंगे, तो सारा गुस्सा तुम्हीं पर उतारेंगे। कहेंगे, तुम्हीं ने मुझे चौपट किया। सोचो जरा।

लौंगी गहरी सोच में पड़ गई। वह और सब कुछ सह सकती थी, दीवान साहब का क्रोध न सह सकती थी। यह भी जानती थी कि दीवान साहब के दिल में ऐसा खयाल आना असम्भव नहीं है। मनोरमा के रंग-ढंग से भी उसे मालूम हो गया था कि वह राजा साहब को दुतकारना नहीं चाहती। जब वे लोग राजी हैं, तो मैं क्या बोलूं? कहीं पीछे से कोई आफत आई, तो मेरे ही सिर के बाल नोंचे जाएंगे। मुंशीजी ने भले चेता दिया, नहीं तो मुझसे बिना बोले कब रहा जाता?

अभी उसने कुछ जवाब न दिया था कि दीवान साहब स्नान करके लौट आए। उन्हें देखते ही लौंगी ने इशारे से बुलाया और अपने कमरे में ले जाकर उनके कान में बोली—राजा साहब ने मनोरमा के ब्याह के लिए संदेश भेजा है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ठाकुर—तुम्हारी क्या सलाह है?

लौंगी—जो तुम्हारी इच्छा हो, मेरी सलाह क्या पूछते हो!

ठाकुर—यही मेरी बात का जवाब है? मुझे अपनी इच्छा से करना होता, तो पूछता ही क्यों?

लौंगी—मेरी बात मानोगे तो हई नहीं, पूछने से फायदा?

ठाकुर—कोई बात बता दो, जो मैंने तुम्हारी इच्छा से न की हो?

लौंगी—कोई बात भी मेरी इच्छा से नहीं होती। एक बात हो तो बताऊं। तुम्हीं कोई बात बता दो, जो मेरी इच्छा से हुई हो? तुम करते हो अपने मन की। हां, मैं अपना धर्म समझ के भूंक लेती हूं।

ठाकुर—तुम्हारी इन्हीं बातों पर मेरा मारने को जी चाहता है। तू क्या चाहती है कि मैं अपनी जबान कटवा लूं?

लौंगी—उसकी परीक्षा तो अभी हुई जाती है। तब पूछती हूं कि मेरी इच्छा से हो रहा है कि बिना इच्छा के। मैं कहती हूं, मुझे यह विवाह एक आंख नहीं भाता। मानते हो?

ठाकुर—हां, मानता हूं! जाकर मुंशीजी से कहे देता हूं।

लौंगी—मगर राजा साहब बुरा मान जाएं, तो?

ठाकुर—कुछ परवा नहीं।

लौंगी—नौकरी जाती रहे, तो?

ठाकुर—कुछ परवा नहीं। ईश्वर का दिया बहुत है, और न भी हो तो क्या? एक बात निश्चय कर ली, तो उसे करके छोड़ेंगे चाहे उसके पीछे प्राण ही क्यों न चले जाएं।

लौंगी—मेरे सिर के बाल तो न नोंचने लगोगे कि तूने ही मुझे चौपट किया? अगर ऐसा करना हो, तो मैं साफ कहती हूं, मंजूर कर लो। मुझे बाल नुचवाने का बूता नहीं है।

ठाकुर—क्या मुझे बिलकुल गया-गुजरा समझती है? मैं जरा झगड़े से बचता हूं, तो तूने समझ लिया कि इनमें कुछ दम ही नहीं है। लत्ते-लत्ते उड़ जाऊं, पर विशालसिंह से लड़की का विवाह न करूं? तूने समझा क्या है? लाख गया-बीता हूं, तो भी क्षत्रिय हूं।

दीवान साहब उसी जोश में उठे, आकर मुंशीजी से बोले—आप राजा साहब से जाकर कह दीजिए कि हमें विवाह करना मंजूर नहीं।

लौंगी भी ठाकुर साहब के पीछे-पीछे आई थी। मुंशीजी ने उसकी तरफ तिरस्कार से देखकर कहा—आप इस वक्त गुस्से में मालूम होते हैं। राजा साहब ने बड़ी मिन्नत करके और बहुत डरते-डरते आपके पास यह संदेशा भेजा है। आपने मंजूर न किया, तो मुझे भय है कि वह जहर न खा लें।

लौंगी—भला, जब जहर खाने लगेंगे, तब देखी जाएगी। इस वक्त आप जाकर यही कह दीजिए।

मुंशी—दीवान साहब, इस मामले में जरा सोच-समझकर फैसला कीजिए।

लौंगी—राजा साहब के पास दौलत के सिवा और क्या है! दौलत ही तो संसार में सब कुछ नहीं।

मुंशी—सब कुछ न हो; लेकिन इतनी तुच्छ भी नहीं।

लौंगी—शादी-ब्याह के मामले में मैं उसे तुच्छ समझती हूं।

मुंशी—यह मैं कब कहता हूं कि दौलत संसार की सब चीजों से बढ़कर है! आप लोगों की दुआ से जानता हूं कि सुख का मूल संतोष है। एक आदमी जल और स्थल के सारे रत्न पाकर गरीब

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रह सकता है, दूसरा फटे वस्त्रों और रूखी रोटियों में भी धनी हो सकता है।

सहसा मनोरमा आकर खड़ी हो गई। यह वाक्य उसके कान में भी पड़ गया। समझी, धन की निंदा हो रही है। बात काटकर बोली—इसे संतोष नहीं मूर्खता कहना चाहिए।

ठाकुर—अगर सन्तोष मूर्खता है, तो संसार भर के नीतिग्रन्थ, उपनिषदों से लेकर कुरान तक मूर्खता के ढेर लग जाएंगे। सन्तोष से अधिक और किसी तप की महिमा नहीं गाई गई है। धन ही पाप, द्वेष और अन्याय का मूल है।

मनोरमा—संसार के धर्मग्रन्थ, उपनिषदों से लेकर कुरान तक, उन लोगों के रचे हुए हैं, जो रोटियों के मोहताज थे। उन्होंने अंगूर खट्टे समझकर धन की निन्दा की तो कोई आश्चर्य नहीं। अगर कुछ ऐसे आदमी हैं, जो धनी होकर भी धन की निन्दा करते हैं, तो मैं उन्हें धूर्त समझती हूं, जिन्हें अपने सिद्धान्त पर व्यवहार करने का साहस नहीं।

ठाकुर साहब ने समझा, मनोरमा ने यह व्यंग्य उन्हीं पर किया है। चिढ़कर बोले—ऐसे लोग भी तो हो गए हैं, जिन्होंने धन ही नहीं, राज-पाट पर भी लात मार दी है।

मनोरमा—ऐसे आदमियों के नाम उगलियों पर गिने जा सकते हैं। मेरी समझ में तो धन ही सुख और कल्याण का मूल है। संसार में जितना परोपकार होता है, धनियों ही के हाथों होता है।

ठाकुर—संसार में जितना अत्याचार होता है, वह भी तो धनियों के हाथों होता है।

मनोरमा—हां मानती हूं, धन से अत्याचार भी होता है; लेकिन कांटे से फूल का आदर कम नहीं होता। संसार में धन सर्वप्रधान वस्तु है। जिन्दगी का कौन-सा काम है, जो धन के बिना चल सके? धर्म भी बिना धन के नहीं हो सकता। यही कारण है कि संसार ने धन को जीवन का लक्ष्य मान लिया है। धन का निरादर करके हमने प्रभुत्व खो दिया और यदि हमें संसार में रहना है, तो हमें धन की उपासना करनी पड़ेगी। इसी से लोक-परलोक में हमारा उद्धार होगा।

मुंशीजी ने विजय गर्व से हंसकर कहा—कहिए, दीवान साहब, मेरी डिग्री हुई कि अब भी नहीं?

ठाकुर—मुझे मालूम होता है, धन के माहात्म्य पर इसने कोई लेख लिखा था और वही पढ़ सुनाया। क्यों मनोरमा, है न यही बात?

मनोरमा—अभी तो मैंने यह लेख नहीं लिखा, लेकिन लिखूंगी तो उसमें यही विचार प्रकट करूंगी। मेरे शब्दों में कदाचित् आपको दुराग्रह का भाव झलकता हुआ मालूम होता हो। इसका कारण यह है कि मैं अभी एक अंग्रेजी किताब पढ़े चली आती हूं, जिसमें संतोष ही का गुणानुवाद किया गया है।

मुंशीजी ने देखा, मनोरमा के मन की थाह लेने का अच्छा अवसर है। ठाकुर साहब की ओर आंखें मारकर बोले—मनोरमा मेरे विचार तुम्हारे विचार से बिलकुल मिलते हैं। धन से जितना अधर्म होता है, अगर ज्यादा नहीं, तो उतना ही धर्म भी होता है; लेकिन कभी-कभी ऐसे भी मौके आ जाते हैं, जब धन के मुकाबले में और कितनी ही बातों का लिहाज करना पड़ता है। कन्या का विवाह ऐसा ही मौका है। मेरी कन्या का विवाह होने वाला है। मेरे सामने इस वक्त दो वर हैं। एक तो अधेड़ आदमी है;पर दौलत उसके घर में गुलामी करती रहती है। दूसरा एक सुन्दर युवक है, बहुत ही होनहार लेकिन गरीब। बताओ, किससे कन्या का विवाह करूं?

ठाकुर—अगर कन्या की बात है, तो मैं यही सलाह दूंगा कि आप दौलत पर न जाइए। उसी युवक से विवाह कीजिए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लौंगी—ऐसा तो होना ही चाहिए। ब्याह जोड़े का अच्छा होता है। ऐसा ब्याह किस काम का कि वह बहू का बाप मालूम हो, बेचारी कन्या के दिन रोते ही बीतें।

मुंशी—और तुम्हारी क्या राय है, मनोरमा?

मनोरमा ने कुछ लजाते हुए कहा—आप जैसा उचित समझें, करें।

मुंशी—नहीं, इस विषय में तुम्हारी राय बुड्ढों की राय से वढ़कर है।

मनोरमा—मैं तो समझती हूं कि जो दिन खाने-पहनने, सैर-तमाशे के होते हैं, अगर वे किसी गरीब आदमी के साथ चक्की चलाने और चौका-बरतन करने में कट गए तो जीवन का सुख ही क्या? हां, इतना मैं अवश्य कहूंगी कि उम्र का एक साल एक लाख से कम मूल्य नहीं रखता।

यह कहकर मनोरमा चली गई। उसके जाने के बाद दीवान साहब कई मिनट तक जमीन की ओर ताकते रहे। अन्त में लौंगी से बोले—तुमने इसकी बातें सुनीं?

लौंगी—सुनी क्यों नहीं, क्या बहरी हूं?

ठाकुर—फिर?

लौंगी—फिर क्या, लड़के हैं, जो मुंह में आया बकते हैं, उनके बकने से क्या होता है। मां-बाप का धर्म है कि लड़कों के हित ही की करें। लड़का माहुर मांगे, तो क्या मां-बाप उसे माहुर दे देंगे? कहिए, मुंशीजी !

मुंशी—हां, यह तो ठीक ही है; लेकिन जब लड़के अपना भला-बुरा समझने लगें, तो उनका रुख देखकर ही काम करना चाहिए।

लौंगी—जब तक मां-बाप जीते हैं, तब तक लड़कों को बोलने का अख्तियार ही क्या है? आप जाकर राजा साहब से यही कह दीजिए।

मुंशी—दीवान साहब, आपका भी यही फैसला है?

ठाकुर—साहब, मैं इस विषय में सोचकर जवाब दूंगा। हां, आप मेरे दोस्त हैं; इस नाते आपसे इतना कहता हूं कि आप कुछ इस तरह गोल-मोल बातें कीजिए कि मुझ पर कोई इल्जाम न आने पाए। आपने तो बहुत दिनों अफसरी की है, और अफसर लोग ऐसी बातें करने में निपुण भी होते हैं।

मुंशीजी मन में लौंगी को गालियां देते हुए यहां से चले। जब फाटक के पास पहुंचे, तो देखा कि मनोरमा एक वृक्ष के नीचे घास पर लेटी हुई है। उन्हें देखते ही वह उठकर खड़ी हो गई। मुंशीजी जरा ठिठक गए और बोले—क्यों मनोरमा रानी, तुमने जो मुझे सलाह दी, उस पर खुद अमल कर सकती हो?

मनोरमा ने शर्म से सुर्ख होकर कहा—यह तो मेरे माता-पिता के निश्चय करने की बात है।

मुंशीजी ने सोचा, अगर जाकर राजा साहब से कहे देता हूं कि दीवान साहब ने साफ इनकार कर दिया, तो मेरी किरकिरी होती है। राजा साहब कहेंगे, फिर गए ही किस बिरते पर थे? शायद यह भी समझें कि इसे मामला तय करने की तमीज ही नहीं। तहसीलदारी नहीं की, भाड़ झोंकता रहा, इसलिए आपने जाकर दूर की हांकनी शुरू की—हुजूर, बुढ़िया बला की चुड़ैल है, हत्थे पर तो आती ही नहीं, इधर भी झुकती है, उधर भी; और दीवान साहब तो निरे मिट्टी के ढेले हैं।

राजा साहब ने अधीर होकर पूछा—आखिर आप तय क्या कर आए?

मुंशी—हुजूर के इकबाल से फतह हुई, मगर दीवान साहब खुद आपसे शादी की बातचीत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करते झेंपते हैं। आपकी तरफ से बातचीत शुरू हो, तो शायद उन्हें इनकार न होगा। मनोरमा रानी तो सुनकर बहुत खुश हुईं।

राजा—अच्छा ! मनोरमा खुश हुई। खूब हंसी होगी। आपने कैसे जाना कि खुश है?

मुंशी—हुजूर, सब कुछ साफ-साफ कह डाला, उम्र का फर्क कोई चीज नहीं, आपस में मुहब्बत होनी चाहिए। मुहब्बत के साथ दौलत भी हो, तो क्या पूछना ! हां, दौलत इतनी होनी चाहिए, जो किसी तरह कम न हो। और कितनी ही बातें इसी किस्म की हुईं। बराबर मुस्कराती रहीं।

राजा—तो मनोरमा को पसन्द है?

मुंशी—उन्हीं की बातें सुनकर तो लौंगी भी चकराई।

राजा—तो मैं आज ही बातचीत शुरू कर दूं? कायदा तो यही है कि उधर से 'श्रीगणेश' होता, लेकिन राजाओं में अक्सर पुरुष की ओर से भी छेड़छाड़ होती है। पश्चिम में तो सनातन से यही प्रथा चली आई है। मैं आज ठाकुर साहब की दावत करूंगा और मनोरमा को भी बुलाऊंगा। आप भी जरा तकलीफ कीजिएगा।

राजा साहब ने बाकी दिन दावत का सामान करने में काटा। हजामत बनवाई। एक भी पका बाल न रहने दिया। उबटन मलवाया। अपनी अच्छी-से-अच्छी अचकन निकाली, केसरिये रंग का रेशमी साफा बांधा, गले में मोतियों की माला डाली, आंखों में सुरमा लगाया, माथे में केसर का तिलक लगाया; कमर में रेशमी कमरबन्द लपेटा, कन्धे पर शाह रूमाल रखा, मखमली गिलाफ में रखी हुई तलवार कमर से लटकाई और यों सज-सजाकर जब वह खड़े हुए, तो खासे छैला मालूम होते थे। ऐसा बांका जवान शहर में किसी ने कम देखा होगा। उनके सौम्य स्वरूप और सुगठित शरीर पर यह वस्त्र और आभूषण खूब खिल रहे थे।

निमंत्रण तो जा ही चुका था। रात के नौ बजते-बजते दीवान साहब और मनोरमा आ गए। राजा साहब उनका स्वागत करने दौड़े। मनोरमा ने उनकी ओर देखा तो मुस्कराई, मानो कह रही थी—ओ हो ! आज तो कुछ और हो ठाट हैं। उसने आज और ही वेश रचा था। उसकी देह पर एक भी आभूषण न था। केवल एक सुफेद साड़ी पहने हुए थीं। उसका रूप माधुर्य कभी इतना प्रस्फुटित न हुआ था। अलंकार भावों के अभाव का आवरण है। सुन्दरता को अलंकारों की जरूरत नहीं। कोमलता अलंकारों का भार नहीं सह सकती।

दीवान साहब इस समय बहुत चिन्तित मालूम होते थे। उनकी रक्षा करने के लिए यहां लौंगी न थी और बहुत जल्द उनके सामने एक भीषण समस्या आनेवाली थी। दावत की मंशा वह खूब समझ रहे थे। कुछ समझ ही में न आता था, क्या कहूंगा। लौंगी ने चलते-चलते उनसे समझा के कह दिया था—हां, न करना। साफ-साफ कह देना, यह बात नहीं हो सकती। मगर ठाकुर साहब उन वीरों में थे, जिनकी पीठ पर पाली में भी हाथ फेरने की जरूरत रहती है। बेचारे बिल-सा ढूंढ़ रहे थे, कि कहां भाग जाऊं ! सहसा मुंशी वज्रधर आ गए। दीवान साहब को आंखें-सी मिल गईं। दौड़े और उन्हें लेकर एक अलग कमरे में सलाह करने लगे। मनोरमा पहले ही झूले-घर में आकर इधर-उधर टहल रही थी। अब न वह हरियाली थी, न वह रौनक, न वह सफाई। सन्नाटा छाया हुआ था। राजा साहब ने उसे इधर आते देख लिया। वह उससे एकान्त में बातें करना चाहते थे। मौका पाया, तो उसके सामने आकर खड़े हो गए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मनोरमा ने कहा—रानीजी के सामने इस झूले-घर में कितनी रौनक थी ! अब जिधर देखती हूं, सूना-ही-सूना दिखाई देता है।

राजा—अब तुम्हीं से इसकी फिर रौनक होगी, मनोरमा ! यह भी मेरे हृदय की तरह तुम्हारी ओर आंखें लगाए बैठा है।

प्रणय के ये शब्द पहली बार मनोरमा के कानों में पड़े। उसका मुखमंडल लज्जा से आरक्त हो गया। वह सहमी-सी खड़ी रही। कुछ बोल न सकी।

राजा साहब फिर बोले—मनोरमा, यद्यपि मेरे तीन रानियां हैं; पर मेरा हृदय अब तक अक्षुण्ण है, उस पर आज तक किसी का अधिकार नहीं हुआ। कदाचित् वह अज्ञात रूप से तुम्हारी राह देख रहा था। तुमने मेरी रानियों को देखा है, उनकी बातें भी सुनी हैं। उनमें ऐसी कौन है, जिसकी प्रेमोपासना की जाए ! मुझे तो यही आश्चर्य होता है कि इतने दिन उनके साथ कैसे काटे !

मनोरमा ने गम्भीर होकर कहा—मेरे लिए यह सौभाग्य की बात होगी कि आपकी प्रेम-पात्री बनूं; पर...मुझे भय है कि मैं आदर्श पत्नी न बन सकूंगी। कारण तो नहीं बतला सकती, मैं स्वयं नहीं जानती; पर मुझे यह भय अवश्य है। मेरी हार्दिक इच्छा सदैव यही रही है कि किसी बन्धन में न पड़ूं। पक्षियों की भांति स्वाधीन रहना चाहती हूं।

राजा ने मुस्कराते हुए कहा—मनोरमा, प्रेम तो कोई बन्धन नहीं है।

मनोरमा—प्रेम बन्धन न हो; पर धर्म तो बन्धन है। मैं प्रेम के बन्धन से नहीं घबराती,धर्म के बन्धन से घबराती हूं। आपको मुझ पर बड़ी कठोरता से शासन करना होगा। मैं आपको अपनी कुंजी पहले ही से बताए देती हूं। मैं आपको धोखा नहीं देना चाहती। मुझे आपसे प्रेम नहीं है। शायद हो भी न सकेगा। (मुस्कराकर) मैं रानी तो बनना चाहती हूं; पर किसी राजा की रानी नहीं। हां, आपको प्रसन्न रखने की चेष्टा करूंगी। जब आप मुझे भटकते देखें, टोक दें। मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं प्रेम करने के लिए नहीं, केवल विलास करने के लिए ही बनाई गई हूं।

राजा—तुम अपने ऊपर जुल्म कर रही हो, मनोरमा ! तुम्हारा वेष तुम्हारी बातों का विरोध कर रहा है। तुम्हारे हृदय में वह प्रकाश है, जिसकी एक ज्योति मेरे समस्त जीवन के अंधकार का नाश कर देगी।

मनोरमा—मैं दोनों हाथों से धन उड़ाऊंगी। आपको बुरा तो न लगेगा? मैं धन की लौंडी बनकर नहीं, उसकी रानी बनकर रहूंगी।

राजा—मनोरमा, राज्य तुम्हारा है, धन तुम्हारा है, मैं तुम्हारा हूं। सब तुम्हारी इच्छा के दास होंगे।

मनोरमा—मुझे बातें करने की तमीज नहीं है। यह तो आप देख ही रहे हैं। लौंगी अम्मा कहती है कि तू बातें करती है, तो लाठी-सी मारती है।

राजा—मनोरमा, उषा में अगर संगीत होता, तो वह भी इतना कोमल न होता।

मनोरमा—पिताजी से तो अभी आपकी बातें नहीं हुईं?

राजा—अभी तो नहीं, मनोरमा, अवसर पाते ही करूंगा पर कहीं इनकार कर दिया तो?

मनोरमा—मेरे भाग्य का निर्णय वही कर सकते हैं। मैं उनका अधिकार नहीं छीनूंगी।

दोनों आदमी बरामदे में पहुंचे, तो मुंशीजी और दीवान साहब खड़े थे। मुंशीजी ने राजा साहब से कहा—हुजूर को मुबारकबाद देता हूं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दीवान—मुंशीजी....

मुंशी—हुजूर, आज जलसा होना चाहिए। (मनोरमा से) महारानी, आपका सुहाग सदा सलामत रहे।

दीवान—जरा मुझे सोच....

मुंशी—जनाब, शुभ काम में सोच-विचार कैसा? भगवान जोड़ी सलामत रखें!

सहसा बाग में बैंड बजने लगा और राजा के कर्मचारियों का समूह इधर-उधर से आ-आकर राजा साहब को मुबारकबाद देने लगा। दीवान साहब सिर झुकाए खड़े थे। न कुछ कहते बनता था, न सुनते। दिल में मुंशीजी को हजारों गालियां दे रहे थे कि इसने मेरे साथ कैसी चाल चली! आखिर यह सोचकर दिल को समझाया कि लौंगी से सब हाल कह दूंगा। भाग्य में यही बदा था, तो मैं करता क्या? मनोरमा भी तो खुश है।

बारह बजते-बजते मेहमान लोग सिधारे। राजा साहब के पांव जमीन पर न पड़ते थे। सारे आदमी सो रहे थे, पर वह बगीचे में हरी-हरी घास पर टहल रहे थे। चैत्र की शीतल,सुखद मन्द समीर; चन्द्रमा की शीतल, सुखद मन्द छटा और बाग की शीतल, सुखद,मन्द सुगन्ध में उन्हें कभी ऐसा उल्लास, ऐसा आनन्द न प्राप्त हुआ था। मन्द समीर में मनोरमा थी, चन्द्र की छटा में मनोरमा थी, शीतल सुगन्ध में मनोरमा थी, और उनके रोम-रोम में मनोरमा थी। सारा विश्व मनोरमामय हो रहा था।

अठारह

चक्रधर को जेल में पहुंचकर ऐसा मालूम हुआ कि वह एक नई दुनिया में आ गए, जहां मुनष्य ही मनुष्य हैं, ईश्वर नहीं। उन्हें ईश्वर के दिये हुए वायु और प्रकाश के मुश्किल से दर्शन होते थे। मनुष्य के रचे हुए संसार में मनुष्य की कितनी हत्या हो सकती है, इसका उज्ज्वल प्रमाण सामने था। भोजन ऐसा मिलता था, जिसे शायद कुत्ते भी सूंघकर छोड़ देते। वस्त्र ऐसे, जिन्हें कोई भिखारी भी पैरों से ठुकरा देता, और परिश्रम इतना करना पड़ता था, जितना बैल भी न कर सके। जेल शासन का विभाग नहीं, पाशविक व्यवसाय है, आदमियों से जबरदस्ती काम लेने का बहाना, अत्याचार का निष्कंटक साधन। दो रुपये रोज का काम लेकर, दो आने का खाना खिलाना ऐसा अन्याय है, जिसकी कहीं नजीर नहीं मिल सकती। जिस परिश्रम से एक कुनबे का पालन होता हो, वह अपना पेट भी नहीं भर सकता। इन्साफ तो हम तब जानें, जब अपराधी को दंड दीजिए, उससे खूब काम लीजिए; लेकिन उसकी मेहनत के पैसे उसके घर पहुंचा दीजिए। अपराधी के साथ उसके घरवालों की प्राण-हत्या न कीजिए। अगर यह कहिए कि अपराधी घरवालों की सलाह से अपराध करता है, तो उसका प्रमाण दीजिए। बहुत-से कुकर्म ऐसे होते हैं, जिनकी घर-वालों को गन्ध तक नहीं मिलती। ऐसी दशा में घरवालों को क्यों दण्ड दिया जाय? फिर नाबालिगों का क्या दोष! वह तो कुकर्म में शरीक नहीं होते। उनका क्यों खून करते हो? आदि से अन्त तक सारा व्यापार घृणित, जघन्य, पैशाचिक और निंद्य है। अनीति की अक्ल यहां दंग है, दुष्टता भी यहां दांतों तले उंगली दबाती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मगर कुछ ऐसे भी भाग्यवान् हैं, जिनके लिए ये जेल कल्पवृक्ष से कम नहीं। बैल अनाज पैदा करता है, तो अनाज का भूसा खाता है। कभी-कभी खली-चोकर और दाना भी उसके कंठ तले पहुंच जाता है। कैदी बैल से भी गया-गुजरा है। वह नाना प्रकार के शाक-भाजी और फल-फूल पैदा करता है; पर उसकी गन्ध भी उसे नहीं मिलती। नित्य प्रति सब्जी, फल और फूलों से भरी हुई डालियां हुक्काम के बंगलों पर पहुंच जाती हैं। कैदी देखता है और किस्मत ठोककर रह जाता है।

चक्रधर को चक्की पीसने का काम दिया गया। प्रात:काल गेहूं तौलकर दे दिया जाता और संध्या तक उसे पीसना जरूरी था। कोई उज्र या बहाना न सुना जाता था। बीच में केवल एक बार खाने की छुट्टी मिलती थी। इसके बाद फिर चक्की में जुत जाना पड़ता था। वह बराबर सावधान रहते थे कि किसी कर्मचारी को उन्हें कुछ कहने का मौका न मिले, लेकिन गालियों में बात करना जिनकी आदत हो, उन्हें कोई क्योंकर रोकता? प्राय: रोज फटकार और गालियां खानी पड़ती थीं। और उनकी रातें सोने के बदले रोने और दिल को शान्त करने में कट जाती थीं।

किन्तु विपत्ति का अन्त यहीं तक न था। कैदी लोग उन पर ऐसी अश्लील, ऐसी अपमानजनक आवाजें कसते थे कि क्रोध और घृणा से उनका रक्त खौल उठता, पर लहू का घूंट पीकर रह जाते थे। न कोई शिकायत सुनने वाला था, न घाव पर मरहम रखने वाला! सबसे बड़ी मुसीबत का सामना रात को होता था, जब दरवाजे बन्द हो जाते थे और अपने आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए बाहुबल के सिवा कोई साधन न होता था। उनके कर्मों में पांच कैदी रहते थे। उनमें धन्नासिंह नाम का एक ठाकुर भी था, बहुत ही बलिष्ठ और ग़जब का शैतान। वह उनका नेता था। वे सब इतना शोर मचाते, इतनी गन्दी, घृणोत्पादक बातें करते कि चक्रधर को कानों में उंगलियां डालनी पड़ती थीं। उन्हें प्रतिक्षण यह भय रहता था कि ये सब न जाने कब मेरी दुर्गति कर डालें। रात को जब तक वे सो न जाएं, वह खुद न सोते थे। हुक्म तो यह था कि कोई कैदी तम्बाकू भी न पीने पाए, पर यहां गांजा, भंग, शराब, अफीम—यहां तक कि कोकेन भी न जाने किस तिकड़म से पहुंच जाते थे। नशे में वे इतने उद्दंड हो जाते, मानो नर-तनधारी राक्षस हों।

धीरे-धीरे चक्रधर को इन आदमियों से सहानुभूति होने लगी। सोचा, इन परिस्थितियों में पड़कर कौन ऐसा प्राणी है, जिसका पतन न हो जाएगा? बहुत दिनों से सेवा-कार्य करते रहने पर भी पहले उनको कैदियों से मिलने-जुलने में झिझक होती थी। उनकी गन्दी बातें सुनकर वह घृणा से मुंह फेर लेते थे। उन्हें सभी श्रेणी के मनुष्यों से साबिका पड़ चुका था; पर ऐसे निर्लज्ज, गालियां खाकर हंसने वाले, दुर्व्यसनों में डूबे हुए, मुंहफट बेहया आदमी उन्होंने अब तक न देखे थे। उन्हें न गालियों की लाज थी, न मार का भय। कभी-कभी उन्हें ऐसी-ऐसी अस्वाभाविक ताड़नाएं मिलती थीं कि चक्रधर के रोएं खड़े हो जाते थे, मगर क्या मजाल कि किसी कैदी की आंखों में आंसू आए। वह व्यापार देख-देखकर चक्रधर अपने कष्टों को भूल जाते थे। कोई कैदी उन्हें गाली देता, तो चुप हो जाते और इस ताक में रहते थे कि कब इसके साथ सज्जनता दिखाने का अवसर मिले।

तहसीलदार साहब का हुक्काम से मेल-जोल था ही। रियासत में नौकर हुए थे, यह मेल-जोल और भी बढ़ गया था। उन लोगों को देहातों से ला-लाकर कोई न कोई सौगात भेजते रहते थे। उसी मुलाहजे की बदौलत उन्हें समय-समय पर चक्रधर के पास खाने-पीने की चीजें भेजने में कोई दिक्कत न होती थी। चक्रधर इन चीजों को पाते ही कैदियों में बांट देते। ऐसी लूट मचती कि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कभी-कभी उनको अपने मुंह में जरा-सा भी रखने की नौबत न आती। जेल के छोटे कर्मचारी तो चाहते थे कि हमीं सब कुछ हड़प कर जाएं, इसलिए जब वे चीजें उनके हाथ न लगकर कैदियों को मिल जाती थीं तो वे इसकी कसर चक्रधर से निकालते थे—काम लेने में और भी सख्ती करते, जरा-जरा सी बात पर गालियां देने पर तैयार हो जाते, लेकिन कैदियों पर चक्रधर की सज्जनता का कुछ न कुछ असर अवश्य होता था। चक्रधर के साथ उनका बर्ताव कुछ नम्र होता जाता था। जहां चक्रधर की हंसी उड़ाते थे, उन्हें मुंह चिढ़ाते थे, वहां अब उनकी बातों की ओर ध्यान देने लगे। आत्मा को आत्मा ही की आवाज जगा सकती है।

चक्रधर का जीवन कभी इतना आदर्श न था। कैदियों को मौका मिलने पर धर्म-कथाएं सुनाते, ईश्वर की दया और क्रोध का स्वरूप दिखाते। ईश्वर अपने भक्तों से कितना प्रसन्न होता है। उनके पापों को कितनी दया से क्षमा कर देता है। ईश्वर-भक्तों की कथा इसका उज्ज्वल प्रमाण थी। केवल पश्चात्ताप का भाव मन में आना चाहिए। अजामिल और वाल्मीकि तर गए, तो क्या तुम और हम न तरेंगे? इन कथाओं को कैदी लोग इतने चाव से सुनते, मानो एक-एक शब्द उनके हृदय पर अंकित हो जाता था; किन्तु इनका असर बहुत जल्दी मिट जाता था, इतनी जल्दी कि आश्चर्य होता था। उधर कथा हो रही है और इधर लात-मुक्के चल रहे हैं। कभी वे इन कथाओं पर अविश्वासपूर्ण टीकाएं करते और बात हंसी में उड़ा देते। एक कहता—लो धन्नासिंह, अब हम लोग बैकुण्ठ चलेंगे, कोई डर नहीं है। भगवान् क्षमा कर ही देंगे, वहां खूब जलसा रहेगा। दूसरा कहता—धन्नासिंह, मैं तुझे न जाने दूंगा, ऊपर से ऐसा ढकेलूंगा कि हड्डियां टूट जाएंगी। भगवान से कह दूंगा कि ऐसे पापी को बैकुण्ठ में रखोगे तो तुम्हारे नरक में सियार लोटेंगे। तीसरा कहता—यार, वहां गांजा मिलेगा कि नहीं? अगर गांजे को तरसना पड़ा, तो बैकुण्ठ ही किस काम का? बैकुण्ठ तो तब जानें कि वहां ताड़ी और शराब की नदियां बहती हों। चौथा कहता—अजी, यहां से बोरियों गांजा और चरस लेते चलेंगे, वहां के रखवाले क्या घूस न खाते होंगे? उन्हें भी कुछ दे-दिलाकर काम निकाल लेंगे। जब यहां जुटा लिया, तो वहां भी जुटा ही लेंगे। पर ऐसी अभक्तिपूर्ण आलोचनाएं सुनकर भी चक्रधर हताश न होते। शनैः-शनैः उनकी भक्ति-चेतना स्वयं दृढ़ होती जाती थी। भक्ति की ऐसी शिक्षा उन्हें कदाचित् और कहीं न मिल सकती।

बलवान् आत्माएं प्रतिकूल दशाओं ही में उत्पन्न होती हैं। कठिन परिस्थितियों में उनका धैर्य और साहस, उनकी सहृदयता और सहिष्णुता, उनकी बुद्धि और प्रतिभा अपना मौलिक रूप दिखाती है। आत्मोन्नति के लिए कठिनाइयों से बढ़कर कोई विद्यालय नहीं। कठिनाइयों ही में ईश्वर के दर्शन होते हैं और हमारी उच्चतम शक्तियां विकास पाती हैं। जिसने कठिनाइयों का अनुभव नहीं किया, उसका चरित्र बालू की भीत है, जो वर्षा के पहले ही झोंके में गिर पड़ती है। उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। महान् आत्माएं कठिनाइयों का स्वागत करती हैं, उनसे घबराती नहीं; क्योंकि यहां आत्मोत्कर्ष के जितने मौके मिलते हैं, उतने और किसी दशा में नहीं मिल सकते। चक्रधर इस परिस्थिति को एक शिक्षार्थी की दृष्टि से देखते थे और विचलित न होते थे। उन्हें विश्वास था कि प्रकृति उन्हीं प्राणियों को परीक्षा में डालती है, जिनके द्वारा उसे संसार में कोई महान उद्देश्य पूरा कराना होता है।

इस भांति कई महीने गुजर गए। एक दिन सन्ध्या समय चक्रधर दिन भर के कठिन श्रम के बाद बैठे सन्ध्या कर रहे थे कि कई कैदी आपस में बातें करते हुए निकले—आज इस दारोगा की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खबर लेनी चाहिए। जब देखो, गालियां दिया करता है, सीधे मुंह तो बात ही नहीं करता। बात-बात पर मारने दौड़ता है। हम भी तो आदमी हैं। कहां तक सहें ! अब आता ही होगा। ऐसा मारो कि जन्म भर को दाग हो जाए ! यही न होगा कि साल-दो साल की मीयाद बढ़ जाएगी। बचा की आदत तो छूट जाएगी। चक्रधर इस तरह की बातें अक्सर सुनते थे, इसलिए उन्होंने इस पर कुछ विशेष ध्यान न दिया; मगर भोजन के समय ज्योंही दारोगा साहब आकर खड़े हुए और एक कैदी को देर से आने के लिए मारने दौड़े कि कई कैदी चारों तरफ से दौड़ पड़े और 'मारो-मारो' का शोर मच गया। दारोगाजी की सिट्टी-पिट्टी भूल गई। कहीं भागने का रास्ता नहीं, कोई मददगार नहीं। चारों तरफ दीन नेत्रों से देखा, जैसे कोई बकरा भेड़ियों के बीच में फंस गया हो। सहसा धन्नासिंह ने आगे बढ़कर दारोगाजी की गर्दन पकड़ी और इतनी जोर से दबायी कि उनकी आंखें बाहर निकल आईं। चक्रधर ने देखा, अब अनर्थ हुआ चाहता है, तो तीर की तरह झपटे, कैदियों के बीच में घुसकर धन्नासिंह का हाथ पकड़ लिया और बोले—हट जाओ, क्या करते हो?

धन्नासिंह का हाथ ढीला पड़ गया; लेकिन अभी तक उसने गर्दन न छोड़ी।

चक्रधर—छोड़ो, ईश्वर के लिए।

धन्नासिंह—जाओ भी, बड़े ईश्वर की पूंछ बने हो। जब यह रोज गालियां देता है, बात-बात पर हंटर जमाता है, तब ईश्वर कहां सोया रहता है, जो इस घड़ी जाग उठा? हट जाओ सामने से नहीं तो सारा बाबूपन निकाल दूंगा। पहले इससे पूछो, अब तो किसी को गालियां न देगा, मारने तो न दौड़ेगा?

दारोगा—कसम कुरान की, जो कभी मेरे मुंह से गाली का एक हरफ भी निकले।

धन्नासिंह—कान पकड़ो।

दारोगा—कान पकड़ता हूं।

धन्नासिंह—जाओ बचा, भले का मुंह देखकर उठे थे, नहीं तो आज जान न बचती; यहां कौन कोई रोनेवाला बैठा हुआ है।

चक्रधर—दारोगाजी, कहीं ऐसा न कीजिएगा कि जाकर वहां से सिपाहियों को चढ़ा लाइए और इन गरीबों को भुनवा डालिए।

दारोगा—लाहौल विला कूबत ! इतना कमीना नही हूं।

दारोगा चलने लगे, तो धन्नासिंह ने कहा—मियां, गारद-सारद बुलाई, तो तुम्हारे हक में बुरा होगा, समझाए देते हैं। हमको क्या ! न जीने की खुशी है, न मरने का रंज; लेकिन तुम्हारे नाम को कोई रोनेवाला न रहेगा।

दारोगाजी तो यहां से जान बचाकर भागे; लेकिन दफ्तर में जाते ही गारद के सिपाहियों को ललकारा, हाकिम-जिला को टेलीफोन किया और खुद बन्दूक लेकर समर के लिए तैयार हुए। दम, के दम में सिपाहियों का दल संगीनें चढ़ाए आ पहुंचा और लपक कर भीतर घुस पड़ा। पीछे-पीछे दारोगाजी भी दौड़े । कैदी चारों ओर से घिर गए।

चक्रधर पर चारों ओर से बौछार पड़ने लगी।

धन्नासिंह—अब कहो, भगतजी, छुड़वा तो दिया, जाकर समझाते क्यों नहीं? गोली चली तो?

एक कैदी—गोली चली, तो पहले इन्हीं की चटनी की जाएगी।

चक्रधर—तुम लोग अब भी शान्त रहोगे, तो गोली न चलेगी। मैं इसका जिम्मा लेता हूं।

धन्नासिंह—तुम उन सबों से मिले हुए हो। हमें फंसाने के लिए यह ढोंग रचा है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दूसरा कैदी—दगाबाज है, मारके गिरा दो।

चक्रधर—मुझे मारने से अगर तुम्हारी भलाई होती हो तो यही सही।

तीसरा कैदी—तुम जैसे सीधे आप हो, वैसे ही सबको समझते हो; लेकिन तुम्हारे कारण हम लोग सेंत-मेंत में पिटे कि नहीं?

धन्नासिंह—सीधा नहीं, उनसे मिला हुआ है। भगत सभी दिल के मैले होते हैं। कितनों को देख चुका।

तीसरा कैदी—तुम्हारी ऐसी-तैसी, तुम्हें फांसी दिलाकर इन्हें राज ही तो मिल जाएगा। छोटा मुंह बड़ी बात।

चक्रधर ने आगे बढ़कर कहा—दारोगाजी, आखिर आप क्या चाहते हैं? इन गरीबों को क्यों घेर रखा है?

दारोगा ने सिपाहियों की आड़ से कहा—यही उन सब बदमाशों का सरगना है। खुदा जाने, किस हिकमत से उन सबों को मिलाए हुए है। इसे गिरफ्तार कर लो। बाकी जितने हैं, उन्हें खूब मारो, मारते-मारते हलवा निकाल लो सूअर के बच्चों का! इनकी हिम्मत कि मेरे साथ गुस्ताखी करें।

चक्रधर—आपको कैदियों को मारने का कोई मजाज नहीं है।

धन्नासिंह—जबान संभाल के दारोगाजी!

दारोगा—मारो इन सूअरों को।

सिपाही कैदियों पर टूट पड़े और उन्हें बन्दूकों के कुन्दों से मारना शुरू किया। चक्रधर ने देखा कि मामला संगीन हुआ चाहता है, तो बोले—दारोगाजी, खुदा के वास्ते यह गजब न कीजिए।

कैदियों में खलबली पड़ गई। कुछ इधर-उधर से फावड़े, कुदालें और पत्थर ला-लाकर लड़ने पर तैयार हो गए। मौका नाजुक था। चक्रधर ने बड़ी दीनता से कहा—मैं आपको फिर समझाता हूं।

दारोगा—चुप रह सूअर का बच्चा!

इतना सुनना था कि चक्रधर बाज की तरह लपककर दारोगाजी पर झपटे। कैदियों पर कुन्दों की मार पड़नी शुरू हो गई थी। चक्रधर को बढ़ते देखकर उन सब ने पत्थरों की वर्षा शुरू की। भीषण संग्राम होने लगा।

एकाएक चक्रधर ठिठक गए। ध्यान आ गया, स्थिति और भयंकर हो जायगी। अभी सिपाही बन्दूक चलाना शुरू कर देंगे, लाशों के ढेर लग जाएंगे। अगर हिंसक भावों को दबाने का कोई मौका हो सकता है, तो वह यही मौका है। ललकारकर बोले—पत्थर न फेंको, पत्थर न फेंको! सिपाहियों के हाथों से बन्दूक छीन लो।

सिपाहियों ने संगीनें चढ़ानी चाहीं; लेकिन उन्हें इसका मौका न मिल सका। एक-एक सिपाही पर दस-दस कैदी टूट पड़े और दम-के-दम में उनकी बन्दूकें छीन लीं। सिपाहियों ने रोब के बल पर आक्रमण किया था। उन्हें विश्वास था कि कुंदों की मार पड़ते ही कैदी भाग जाएंगे। अब उन्हें मालूम हुआ कि हम धोखे में थे। फिर वे एक साथ में नहीं, इधर-उधर बिखरे खड़े थे। इससे उनकी शक्ति और भी कम हो गई थी। उन पर आगे-पीछे, दाएं-बाएं चारों तरफ से चोट पड़ सकती थी। संगीनें चढ़ाकर भी वे किसी तरह न बच सकते थे। कैदियों में पिल पड़ना उनकी सबसे बड़ी भूल थी। उनके ऐसे हाथ-पांव फूले, होश ऐसे गायब हुए कि कुछ निश्चय न कर सके कि इस समय क्या करना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चाहिए। कैदियों ने तुरन्त उनकी मुश्कें चढ़ा दीं और बन्दूकें ले-लेकर उनके सिर पर खड़े हो गए। यह सब कुछ पांच मिनट में हो गया। ऐसा दांव पड़ा कि वही लोग जो जरा देर पहले हेकड़ी जताते थे, कैदियों को पांव की धूल समझते थे, अब उन्हीं कैदियों के सामने खड़े दया-प्रार्थना कर रहे थे, घिघियाते थे, मत्थे टेकते थे और रोते थे। दारोगाजी की सूरत तो तसवीर खींचने योग्य थी। चेहरा फक, हवाइयां उड़ी हुईं, थर-थर कांप रहे थे कि देखें, जान बचती है या नहीं।

कैदियों ने देखा, इस वक्त हमारा राज्य है, तो पुराने बदले चुकाने पर तैयार हो गए। धन्नासिंह लपका हुआ दारोगा के पास आया और जोर से एक धक्का देकर बोला—क्यों खां साहब, उखाड़ लूं दाढ़ी के एक-एक बाल?

चक्रधर— धन्नासिंह, हट जाओ।

धन्नासिंह—मरना तो है ही, अब इन्हें क्यों छोड़ें ?

चक्रधर—हम कहते हैं, हट जाओ, नहीं तो अच्छा न होगा।

धन्नासिंह—अच्छा हो चाहे बुरा, हमारे साथ इन लोगों ने जो सलूक किए हैं, उसका मजा चखाए बिना न छोड़ेंगे।

एक कैदी—हमारी जान तो जाती ही है, पर इन लोगों को न छोड़ेंगे।

दूसरा कैदी—एक-एक की हड्डियां तोड़ दो। दो-दो, चार-चार साल और सही। अभी कौन सुख भोग रहे हैं, जो सजा को डरें? आखिर घूम-घामके यहीं तो फिर आना है।

चक्रधर—मेरे देखते तो यह अनर्थ न होने पाएगा। हां, मर जाऊं तो जो चाहे करना !

धन्नासिंह—अगर ऐसे बड़े धर्मात्मा हो, तो इनको क्यों नहीं समझाया? देखते नहीं हो, कितनी सांसत होती है। तुम्हीं कौन बचे हुए हो। कुत्तों को भी मारते दया आती है। क्या हम कुत्तों से भी गये बीते हैं?

इतने में सदर फाटक पर शोर मचा। जिला-मैजिस्ट्रेट मिस्टर जिम सशस्त्र पुलिस के सिपाहियों और अफसरों के साथ आ पहुंचे थे। दारोगाजी ने अन्दर आते वक्त किवाड़ बन्द कर लिए थे, जिससे कोई कैदी भागने न पाए। यह शोर सुनते ही चक्रधर समझ गया कि पुलिस आ गई। बोले—अरे भाई, क्यों अपनी जान के दुश्मन हुए हो। बन्दूकें रख दो और फौरन जाकर किवाड़ खोल दो। पुलिस आ गई।

धन्नासिंह—कोई चिन्ता नहीं। हम भी इन लोगों का वारा-न्यारा कर डालते हैं। मरते ही हैं, तो दो-चार को मारके मरें।

कैदियों ने फौरन संगीनें चढ़ाईं और सबसे पहले धन्नासिंह दारोगाजी पर झपटा। करीब था कि संगीन की नोक उनके सीने में चुभे कि चक्रधर यह कहते हुए, 'धन्नासिंह, ईश्वर के लिए...' दारोगाजी के सामने आकर खड़े हो गए। धन्नासिंह वार कर चुका था। चक्रधर के कन्धे पर संगीन का भरपूर हाथ पड़ा। आधी संगीन धंस गई। दाहिने हाथ से कन्धे को पकड़कर बैठ गए। कैदियों ने उन्हें गिरते देखा, तो होश उड़ गए। आ-आकर उनके चारों तरफ खड़े हो गए। घोर अनर्थ की आशंका ने उन्हें स्तंभित कर दिया। भगत को चोट आ गई—ये शब्द उनकी पशु-वृत्तियों को दबा बैठे।

धन्नासिंह ने बन्दूक फेंक दी और फूट-फूटकर रोने लगा। मैंने भगत के प्राण लिए ! जिस भगत ने गरीबों की रक्षा करने के लिए सजा पाई, जो हमेशा उनके लिए अफसरों से लड़ने को तैयार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहता था, जो नित्य उन्हें अच्छे रास्ते पर ले जाने की चेष्टा करता था, जो उसके बुरे व्यवहारों को हंस-हंसकर सह लेता था, वही भगत धन्नासिंह के हाथ जख्मी पड़ा है। धन्नासिंह को कई कैदी पकड़े हुए हैं। ग्लानि के आवेश में वह बार-बार चाहता है कि अपने को उनके हाथों से छुड़ाकर वही संगीन अपनी छाती में चुभा ले; लेकिन कैदियों ने इतने जोर से जकड़ रखा है कि उसका कुछ बस नहीं चलता।

दारोगा ने मौका पाया तो सदर फाटक की तरफ दौड़े कि उसे खोल दूं। धन्नासिंह ने देखा कि यह हजरत, जो सारे फिसाद की जड़ हैं, बेदाग बचे जाते हैं, तो उसकी हिंसक वृत्तियों ने इतना जोर मारा कि एक ही झटके में वह कैदियों के हाथ से मुक्त हो गया और बन्दूक उठाकर उनके पीछे दौड़ा। चक्रधर के खून का बदला लेना जरूरी था। करीब था कि दारोगाजी पर फिर वार पड़े कि चक्रधर फिर संभलकर उठे और एक हाथ से अपना कन्धा पकड़े, लड़खड़ाते हुए चले। धन्नासिंह ने उन्हें आते देखा, तो उसके पांव रुक गए। भगत अभी जीते हैं, इसकी उसे इतनी खुशी हुई कि वह बन्दूक लेकर पीछे की ओर चला और उनके चरणों पर सिर रखकर रोने लगा। ऐसी सच्ची खुशी उसे अपने जीवन में कभी न हुई थी !

चक्रधर ने कहा—सिपाहियों को छोड़ दो।

धन्नासिंह—बहुत अच्छा, भैया ! तुम्हारा जी कैसा है?

चक्रधर—देखना चाहिए, बचता हूं या नहीं।

धन्नासिंह—दारोगा के बच जाने का कलंक रह गया।

सहसा मिस्टर जिम सशस्त्र पुलिस के साथ जेल में दाखिल हुए। उन्हें देखते ही सारे कैदी भर से भागे। केवल दो आदमी चक्रधर के पास खड़े रहे। धन्नासिंह उसमें एक था। सिपाहियों ने छूटते ही अपनी-अपनी बन्दूकें संभालीं और एक कतार में खड़े हो गए।

जिम—वेल दारोगा, क्या हाल है?

दारोगा—हुजूर के अकबाल से फतह हो गई। कैदी भाग गए।

जिम—यह कौन आदमी पड़ा है?

दारोगा—इसी ने हम लोगों की मदद की है, हुजूर ! चक्रधर नाम है।

जिम—अच्छा ! यह चक्रधर है, जो बगावत के मामले में हमारे इजलास से सजा पाया था।

दारोगा—जी हां, हुजूर ! अभी उसी के बदौलत हमारी जान बची। जो जख्म उसके कन्धे में है, यह शायद इस वक्त मेरे सीने में होता।

जिम—इसने कैदियों को भड़काया होगा?

दारोगा— नहीं हुजूर, इसने तो कैदियों को समझा-बुझाकर ठंडा किया।

जिम—तुम कुछ नहीं समझता। यह लोग पहले कैदियों को भड़काता है, फिर उनकी तरफ से हाकिम लोगों से लड़ता है, जिसमें कैदी समझें कि यह हमारी तरफ से लड़ रहा है। यह कैदियों को मिलाने का हिकमत है। वह कैदियों को मिलाकर जेल का काम बन्द कर देना चाहता है।

दारोगा—देखने में तो हुजूर, बहुत सीधा मालूम होता है, दिल का हाल खुदा जाने !

जिम—खुदा के जानने से कुछ नहीं होगा, तुमको जानना चाहिए। तुमको हर एक कैदी पर निगाह रखनी चाहिए। यही तुम्हारा काम है। यह आदमी कैदियों से मजहब की बातचीत तो नहीं करता?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दारोगा—मजहबी बातें तो बहुत करता है, हुजूर ! इसी से कैदियों ने उसे 'भगत' का लकब दे दिया है।

जिम—ओह ! तब तो यह बहुत ही खतरनाक आदमी है। मजहबवाले आदमी पर बहुत कड़ी निगाह रखनी चाहिए। कोई पढ़ा-लिखा आदमी दिल से मजहब को नहीं मानता। मजहब पढ़े-लिखे आदमियों के लिए नहीं है। उसके लिए तो Ethics काफी है। जब कोई पढ़ा-लिखा आदमी मजहब की बात करे, तो फौरन समझ लो कि वह कोई साजिश करना चाहता है। Religion (धर्म) के साथ Politics (राजनीति) बहुत खतरनाक हो जाता है। यह आदमी कैदियों से बड़ी हमदर्दी करता होगा।

दारोगा—जी हां, हमेशा !

जिम—सरकारी हुक्म को खूब मानता होगा।

दारोगा—जी हां, हमेशा !

जिम—कभी कोई शिकायत न करता होगा। कड़े से कड़े काम खुशी से करता होगा?

दारोगा—जी हां, शिकायत नहीं करता। ऐसा बेजबान आदमी तो मैंने कभी देखा ही नहीं।

जिम—ऐसा आदमी निहायत खौफनाक होता है। उस पर कभी एतबार नहीं करना चाहिए। हम इस पर मुकदमा चलाएगा। इसको बहुत कड़ी सजा देगा। सिपाहियों को दफ्तर में बुलाओ। हम सबका बयान लिखेगा।

दारोगा—हुजूर,पहले तो उसे डॉक्टर साहब को दिखा लूं? ऐसा न हो कि मर जाय, गुलाम को दाग लगे।

जिम—वह मरेगा नहीं। ऐसा खौफनाक आदमी कभी नहीं मरता; और मर भी जाएगा, तो हमारा कोई नुकसान नहीं।

दारोगा—जरा हुजूर उसकी हालत देखें। चेहरा जर्द हो गया है, खून से जमीन लाल हो गई है।

जिम—कुछ परवा नहीं।

यह कहकर साहब दफ्तर की ओर चले। धन्नासिंह अब तक इन्तजार में खड़ा था कि डॉक्टर साहब आते होंगे। जब देखा कि जिम साहब इधर मुखातिब भी न हुए, तो उसने चक्रधर को गोद में उठाया और अस्पताल की ओर चला।

उन्नीस

ठाकुर हरिसेवकसिंह दावत खाकर घर पहुंचे, तो डर रहे थे कि लौंगी पूछेगी तो क्या जवाब दूंगा। अगर यह कहूं कि मुंशीजी ने मेरे साथ चाल चली, तो जिन्दा न छोड़ेगी, तानों से कलेजा छलनी कर देगी। जो कहूं कि मनोरमा को पसन्द है, तो मैं क्या करता, तो भी न बचने पाऊंगा। चुड़ैल वकीलों की तरह तो बहस करती है। बस, उसे राजी करने की एक ही तरकीब है। किसी पण्डित को फांसना चाहिए, जो उसके सामने यह कह दे कि राजा साहब की आयु एक सौ पचीस वर्ष की है। जब तक इस बात का उसे विश्वास न आ जाएगा, वह किसी तरह न राजी होगी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ज्यों ही ठाकुर साहब घर में पहुंचे, लौंगी ने पूछा—वहां क्या बातचीत हुई?

दीवान—शादी ठीक हो गई, और क्या !

लौंगी—और मैंने इतना समझा जो दिया था?

दीवान—भाग्य भी तो कोई चीज है !

लौंगी—भाग्य पर वह भरोसा करता है, जिसमें पौरुष नहीं होता। लड़की को डुबो दिया, ऊपर से शरमाते नहीं, कहते हो भाग्य भी कोई चीज है?

दीवान—तुम मुझे जैसा गधा समझती हो, वैसा गधा नहीं हूं। मैंने राजा साहब की कुंडली एक बड़े विद्वान ज्योतिषी को दिखलाई और जब उसने कह दिया कि राजा साहब की उम्र बहुत बड़ी है, कोई संकट नहीं है, तब जाकर मैने मंजूर कर लिया।

लौंगी—राजा ने किसी पंडित को सिखा-पढ़ाकर खड़ा कर दिया होगा।

दीवान—क्या मुझे बिलकुल अनाड़ी ही समझ लिया है?

लौंगी—अनाड़ी तो तुम हो ही, न जाने किस तरह दीवानी कर लेते हो। अच्छा बताओ,वह कौन पंडित था?

दीवान—इसी शहर का नामी पंडित है। मेरी उनसे पुरानी मुलाकात है। वह मुझे कभी धोखा न देंगे। अगर कोई गड़बड़ होती, तो वह साफ-साफ कह देते। हम और वह अलग एक कमरे में बैठे थे। उन्होंने बड़ी देर तक कुंडली को देखकर कहा—कोई शंका की बात नहीं, आप भगवान का नाम लेकर विवाह स्वीकार कर लीजिए। राजा साहब की आयु एक सौ पच्चीस वर्ष की है।

लौंगी—तुम कल उन पंडितजी को यहां बुला देना। जब तक मेरे सामने न कह देंगे, मुझे विश्वास न आएगा।

दूसरे दिन प्रातःकाल लौंगी ने पंडित की रट लगाई और दीवान साहब को विवश होकर मुंशी वज्रधर के पास जाना पड़ा।

वज्रधर सारी कथा सुनकर बोले—आपने यह बुरा रोग पाल रखा है। एक बार डांटकर कह दीजिए—चुपचाप बैठी रह, तुझे इन बातों से क्या मतलब? फिर देखूं वह कैसे बोलती है !

दीवान—भाई, इतनी हिम्मत मुझमें नहीं है। वह कभी जरा रूठ जाती है,तो मेरे हाथ-पांव फूल जाते हैं। मैं तो कल्पना भी नहीं कर सकता कि उसके बिना मैं जिन्दा कैसे रहूंगा। मैं तो उससे बिना पूछे भोजन भी नहीं कर सकता। वह मेरे घर की लक्ष्मी है। आपकी किसी ज्योतिषी से जान-पहचान है?

मुंशी—जान-पहचान तो बहुतों से है; लेकिन देखना तो यह है कि काम किससे निकल सकता है। कोई सच्चा आदमी तो यह स्वांग भरने न जाएगा। कोई पंडित बनाना पड़ेगा।

दीवान—यह तो बड़ी मुश्किल हुई।

मुंशी—मुश्किल क्या हुई ! मैं अभी बनाए देता हूं। ऐसा पंडित बना दूंगा कि कोई भांप न सके। इन बातों में क्या रखा है?

यह कहकर मुंशीजी ने झिनकू को बुलाया। वह एक ही छंटा हुआ था। फौरन तैयार हो गया। घर जाकर माथे पर तिलक लगाया। गले में रामनामी चादर डाली, सिर पर एक टोपी रखी और एक बस्ता बगल में दबाए आ पहुंचा। मुंशीजी उसे देखकर बोले—यार, जरा-सी कसर रह गई। तोंद के बगैर पंडित कुछ जंचता नहीं। लोग यही समझते हैं कि इनको तर माल नहीं मिलते, जभी तो तांत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हो रहे हैं। तोंदल आदमी की शान ही और होती है; चाहे पंडित बने, चाहे सेठ, चाहे तहसीलदार ही क्यों न बन जाए। उसे सब कुछ भला मालूम होता है। मैं तोंदल होता तो अब तक न जाने किस ओहदे पर होता। सच पूछो, तो तोंद न रहने के कारण अफसरों पर मेरा रोब न जमा। बहुत घी-दूध खाया पर तकदीर में बड़ा आदमी होना न बदा था, तोंद न निकली; न निकली। तोंद बना लो, नहीं तो उल्लू बनाकर निकाल दिए जाओगे, या किसी तोंदूमल को पकड़ो।

झिनकू—सरकार, तोंद होती, तो आज मारा-मारा क्यों फिरता? मुझे भी न लोग झिनकू उस्ताद कहते! कभी तबला न होता तो तोंद ही बजा देता; मगर तोंद न रहने में कोई हरज नहीं है, यहां कई पंडित बिना तोंद के भी हैं।

मुंशी— कोई बड़ा पंडित भी है बिना तोंद का?

झिनकू—नहीं सरकार, कोई बड़ा पंडित तो नहीं है। तोंद के बिना कोई बड़ा कैसे हो जायगा? कहिए तो कुछ कपड़े लपेटूं?

मुंशी—तुम तो कपड़े लपेटकर पिंडरोगी से मालूम होगे। तकदीर पेट पर सबसे ज्यादा चमकती है, इसमें कोई शक नहीं; लेकिन और अंगों पर भी तो कुछ न कुछ असर होता ही है; यह राग न चलेगा, भाई किसी और को फांसो।

झिनकू—सरकार, अगर मालकिन को खुश न कर दूं तो नाक काट लीजिएगा। कोई अनाड़ी थोड़े ही हूं!

खैर, तीनों आदमी मोटर पर बैठे और एक क्षण में घर जा पहुंचे। दीवान साहब ने जाकर कहा—पंडितजी आ गए, बड़ी मुश्किल से आये हैं।

इतने में मुंशीजी भी आ पहुंचे और बोले—कोई नया आसन बिछाइएगा। कुर्सी पर नहीं बैठते। आज न जाने क्या समझकर इस वक्त आ गए, नहीं तो दोपहर के पहले कोई लाख रुपये दे, तो नहीं जाते।

पंडितजी बड़े गर्व के साथ मोटर से उतरे और जाकर आसन पर बैठे। लौंगी ने उनकी ओर ध्यान से देखा और तीव्र स्वर में बोली—आप जोतसी हैं? ऐसी ही सूरत होती है जोतसियों की? मुझे तो कोई भांड से मालूम होते हो!

मुंशीजी ने दांतों तले जबान दबा ली; दीवान साहब ने छाती पर हाथ रखा और झिनकू के चेहरे पर तो मुर्दनी छा गई। कुछ जवाब देते ही न बन पड़ा। आखिर मुंशीजी बोले—यह क्या गजब करती हो, लौंगी रानी! अपने घर पर बुलाकर महात्माओं की यह इज्जत की जाती है?

लौंगी—लाला, तुमने बहुत दिनों तहसीलदारी की है, तो मैंने भी धूप में बाल नहीं पकाए हैं। एक बहरूपिए को लाकर खड़ा कर दिया, ऊपर से कहते हैं, जोतसी हैं! ऐसी ही सूरत होती है जोतसी की? मालूम होता है, महीनों से दाने की सूरत नहीं देखी। मुझे क्रोध तो इन दीवान पर आता है, तुम्हें क्या कहूं?

झिनकू—माता, तूने मेरा बड़ा अपमान किया है। अब मैं यहां एक क्षण भी नहीं ठहरूंगा। तुमको इसका फल मिलेगा, अवश्य मिलेगा।

लौंगी—लो, बस चले ही जाओ मेरे घर से! धूर्त, पाखण्डी कहीं का! बड़ा जोतसी है तो बता मेरी उम्र कितनी है? लाला, अगर तुम्हें धन का लोभ हो, तो जितना चाहो, मुझसे ले जाओ। मेरी बिटिया को कुएं में न ढकेलो। क्यों उसके दुश्मन बने हुए हो? जो कुछ कर रहे हो, उसका दोष

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तुम्हारे ही सिर जाएगा। तुम इतना भी नहीं समझते कि बूढ़े आदमी के साथ कोई लड़की कैसे सुख से रह सकती है ! धन से बूढ़े जवान तो नहीं हो जाते।

झिनकू—माताजी राजा साहब की ज्योतिष विद्या के अनुसार—.

लौंगी—तू फिर बोला? चुपका खड़ा क्यों नहीं रहता।

झिनकू—दीवान साहब, अब नहीं ठहर सकता।

लौंगी—क्यों, ठहरोगे क्यों नहीं? दच्छिना तो लेते जाओ !

यह कहते हुए लौंगी ने कोठरी में जाकर कजलौटे से काजल निकाला और तुरन्त बाहर आ, एक हाथ से झिनकू को पकड़, दूसरे से उसके मुंह पर काजल पोत दिया। बहुत उछले-कूदे, बहुत फड़फड़ाए; पर लौंगी ने जौ भर भी न हिलने दिया, मानो बाज ने कबूतर को दबोच लिया हो। दीवान साहब अब अपनी हंसी न रोक सके। मारे हंसी के मुंह से बात तक न निकलती थी। मुंशीजी अभी तक झिनकू की विद्या का राग अलाप रहे थे और लौंगी झिनकू को दबोचे हुए चिल्ला रही थी—थोड़ा चूना लाओ, तो इसे पूरी दच्छिना दे दूं। मेरे धन्य भाग कि आज जोतसीजी के दर्शन हुए !

आखिर मुंशीजी को गुस्सा आ गया। उन्होंने लौंगी का हाथ पकड़कर चाहा कि झिनकू का गला छुडा दें। लौंगी ने झिनकू को तो न छोड़ा; एक हाथ से तो उसकी गर्दन पकड़े हुए थी, दूसरे हाथ से मुंशीजी की गर्दन पकड़ ली और बोली—मुझसे जोर दिखाते हो, लाला? बड़े मर्द हो, तो छुड़ा लो गर्दन ! बहुत दूध-घी बेगार में लिया होगा। देखें वह जोर कहां है !

दीवान—मुंशीजी, आप खड़े क्या हैं, छुड़ा लीजिए गर्दन।

मुंशी—मेरी यह सांसत हो रही है और आप खड़े हंस रहे हैं।

दीवान—तो क्या कर सकता हूं। आप भी तो देवनी से जोर अजमाने चले थे। आज आपको मालूम हो जायगा कि मैं इससे क्यों इतना दबता हूं।

लौंगी—जोतसीजी, अपनी विद्या का जोर क्यों नहीं लगाते? क्यों रे, अब तो कभी जोतसी न बनेगा?

झिनकू—नहीं माताजी, बड़ा अपराध हुआ, क्षमा कीजिए।

लौंगी ने दीवान साहब की ओर सरोष नेत्रों से देखकर कहा—मुझसे यह चाल चली जाती है, क्यों? लड़की को राजा से ब्याहकर तुम्हारा मरतबा बढ़ जाएगा, क्यों? धन और मरतबा सन्तान से भी ज्यादा प्यारा है, क्यों? लगा दो आग घर में। घोंट दो लड़की का गला। अभी मर जाएगी; मगर जन्म-भर के दुःख से तो छूट जायगी। धन और मरतबा अपने पौरुष से मिलता है। लड़की बेचकर धन नहीं कमाया जाता। यह नीचों का काम है, भलेमानसों का नहीं। मैं तुम्हें इतना स्वार्थी न समझती थी, लाला साहब ! तुम्हारे मरने के दिन आ गए हैं, क्यों पाप की गठरी लादते हो? मगर तुम्हें समझाने से क्या होगा ! इसी पाखण्ड में तुम्हारी उम्र कट गई, अब क्या संभलोगे ! अब मरती बार भी पाप करना बदा था। क्या करते ! और तुम भी सुन लो, जोतसीजी ! अब कभी भूलकर भी यह स्वांग न भरना। धोखा करके पेट पालने से मर जाना अच्छा है। जाओ।

यह कहकर लौंगी ने दोनों आदमियों को छोड़ दिया। झिनकू तो बगटुट भागा, लेकिन मुंशीजी वहीं सिर झुकाए खड़े रहे। जरा देर-के बाद बोले—दीवान साहब, अगर आपकी मरजी हो, तो मैं जाकर राजा साहब से कह दूं कि दीवान साहब को मंजूर नहीं है।

दीवान—अब भी आप मुझसे पूछ रहे हैं? क्या अभी कुछ और सांसत कराना चाहते हैं?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुंशी—सांसत तो मेरी यह क्या करती, मैंने औरत समझकर छोड़ दिया।

दीवान—आप आज जाके साफ-साफ कह दीजिएगा।

लौंगी—क्या साफ-साफ कह दीजिएगा? अब क्या साफ-साफ कहलाते हो? किसी को खाने का नेवता न दो, तो वह बुरा न मानेगा; लेकिन नेवता देकर अपने द्वार से भगा दो, तो तुम्हारी जान का दुश्मन हो जायगा। अब साफ-साफ कहने का अवसर नहीं रहा। जब नेवता दे चुके, तब तो खिलाना ही पड़ेगा, चाहे लोटा-थाली बेचकर ही क्यों न खिलाओ। कहके मुकरने से बैर हो जायगा।

दीवान—बैर की चिन्ता नहीं। नौकरी की मैं परवा नहीं करता।

लौंगी—हां, तुमने तो कारूं का खजाना घर में गाड़ रखा है। इन बातों से अब काम न चलेगा। अब तो जो होनी थी, हो चुकी। राम का नाम लेकर ब्याह करो। पुरोहित को बुलाकर साइत-सगुन पूछ-ताछ लो और लगन भेज दो। एक ही लड़की है, दिल खोलकर काम करो।

मुंशीजी को अपनी सांसत का पुरस्कार मिल गया। मारे खुशी के बगलें बजाने लगे। विरोध की अन्तिम क्रिया हो गई।

आज ही से विवाह की तैयारियां होने लगीं। दीवान साहब स्वभाव से कृपण थे, कम से कम खर्च में काम निकालना चाहते थे; लेकिन लौंगी के आगे उनकी एक न चलती थी। उसके पास रुपये न जाने कहां से निकलते आते थे, मानो किसी रसिक के प्रेमोद्‌गार हों। तीन महीने तैयारियों में गुजर गए। विवाह का मुहूर्त निकट आ गया।

सहसा एक दिन शाम को खबर मिली कि जेल में दंगा हो गया और चक्रधर के कन्धे में गहरा घाव लगा है। बचना मुश्किल है।

मनोरमा के विवाह की तैयारियां तो हो ही रही थीं और यों भी देखने में वह बहुत खुश नजर आती थी; पर उसका हृदय सदैव रोता रहता था। कोई अज्ञात भय, कोई अलक्षित वेदना, कोई अतृप्त कामना, कोई गुप्त चिन्ता, हृदय को मथा करती थी। अन्धों की भांति इधर-उधर टटोलती थी; पर न चलने का मार्ग मिलता था, न विश्राम का आधार। उसने मन में एक बात निश्चय की थी और उसी में संतुष्ट रहना चाहती थी; लेकिन कभी-कभी वह जीवन इतना शून्य, इतना अंधेरा, इतना नीरस मालूम होता कि घंटों वह मूर्च्छित-सी बैठी रहती; मानो कहीं कुछ नहीं है, अनन्त आकाश में केवल वही अकेली है।

यह भयानक समाचार सुनते ही मनोरमा को हौलदिल-सा हो गया। आकर लौंगी से बोली—लौंगी अम्मा, मैं क्या करूं? बाबूजी को देखे बिना अब नहीं रहा जाता। क्यों अम्मा, घाव अच्छा हो जायगा न?

लौंगी ने करुण नेत्रों से देखकर कहा—अच्छा क्यों न होगा, बेटी ! भगवान चाहेंगे, तो जल्द अच्छा हो जायगा।

लौंगी मनोरमा के मनोभावों को जानती थी। उसने सोचा, इस अबला को कितना दुःख है ! मन-ही-मन तिलमिलाकर रह गई। हाय ! चारे पर गिरनेवाली चिड़िया को मोती चुगाने की चेष्टा की जा रही है। तड़प-तड़पकर पिंजड़े में प्राण देने के सिवा वह और क्या करेगी ! मोती में चमक है, वह अनमोल है; लेकिन उसे कोई खा तो नहीं सकता। उसे गले में बांध लेने से क्षुधा तो न मिटेगी।

मनोरमा ने फिर पूछा—भगवान् सज्जन लोगों को क्यों इतना कष्ट देते हैं, अम्मा? बाबूजी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का-सा सज्जन दूसरा कौन होगा ! उनको भगवान् इतना कष्ट दे रहे हैं ! मुझे कभी कुछ नहीं होता; कभी सिर भी नहीं दुखता। मुझे क्यों कभी कुछ नहीं होता, अम्मा?

लौंगी—तुम्हारे दुश्मन को कुछ हो बेटी, तुम तो कभी घड़ी भर चैन न पाती थीं। तुम्हें गोद में लिये रात भर भगवान् का नाम लिया करती थी।

सहसा मनोरमा के मन में एक बात आई। उसने बाहर आकर मोटर तैयार कराई और दम-के-दम में राजभवन की ओर चली। राजा साहब इसी तरफ आ रहे थे। मनोरमा को देखा, तो चौंके। मनोरमा घबरायी हुई थी।

राजा—तुमने क्यों कष्ट किया? मैं तो आ रहा था।

मनोरमा—आपको जेल के दंगे की खबर मिली?

राजा—हां, मुंशी वज्रधर अभी कहते थे।

मनोरमा—मेरे बाबूजी को गहरा घाव लगा है।

राजा—हां, यह भी सुना।

मनोरमा—तब भी आपने उन्हें जेल से बाहर अस्पताल में लाने के लिए कार्रवाई नहीं की? आपका हृदय बड़ा कठोर है।

राजा ने कुछ चिढ़कर कहा—तुम्हारे जैसा उदार हृदय कहां से लाऊं !

मनोरमा—मुझसे मांग क्यों नहीं लेते? बाबूजी को बहुत गहरा घाव लगा है, और अगर यत्न न किया गया, तो उनका बचना कठिन है। जेल में जैसा इलाज होगा, आप जानते ही हैं। न कोई आगे, न कोई पीछे; न मित्र, न बन्धु। आप साहब को एक खत लिखिए कि बाबूजी को अस्पताल में लाया जाय।

राजा—साहब मानेंगे?

मनोरमा—इतनी जरा-सी बात न मानेंगे?

राजा—न जाने दिल में क्या सोचें।

मनोरमा—आपको अगर बहुत मानसिक कष्ट हो रहा हो तो रहने दीजिए। मैं खुद साहब से मिल लूंगी।

राजा साहब यह तिरस्कार सुनकर कांप उठे। कातर होकर बोले—मुझे किस बात का कष्ट होगा। अभी जाता हूं।

मनोरमा—लौटिएगा कब तक?

राजा—कह नहीं सकता।

यह कहकर राजा साहब मोटर पर जा बैठे और शोफर से मिस्टर जिम के बंगले पर चलने को कहा। मनोरमा की निष्ठुरता से उनका चित्त बहुत खिन्न था। मेरे आराम और तकलीफ का इसे जरा भी खयाल नहीं। चक्रधर से न जाने क्यों इतना स्नेह है। कहीं उससे प्रेम तो नहीं करती? नहीं, यह बात नहीं। सरल हृदय बालिका है। ये कौशल क्या जाने ! चक्रधर आदमी ही ऐसा है कि दूसरों को उससे मुहब्बत हो जाती है। जवानी में सहृदयता कुछ अधिक होती ही है। कोई मायाविनी स्त्री होती, तो मुझसे अपने मनोभावों को गुप्त रखती। जो कुछ करना होता, चुपके-चुपके करती; पर इसके निश्छल हृदय में कपट कहां? जो कुछ कहती है, मुझी से कहती है; जो कष्ट होता है, मुझी को सुनाती है। मुझ पर पूरा विश्वास करती है। ईश्वर करे, साहब से मुलाकात हो जाय और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वह मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लें! जिस वक्त मैं आकर यह शुभ समाचार कहूंगा, कितनी खुश होगी!

यह सोचते हुए राजा साहब मिस्टर जिम के बंगले पर पहुंचे। शाम हो गई थी। साहब बहादुर सैर करने जा रहे थे। उनके बंगले में वह ताजगी और सफाई थी कि राजा साहब का चित्त प्रसन्न हो गया। उनके यहां दर्जनों माली थे, पर बाग इतना हरा-भरा न रहता था। यहां की हवा में आनन्द था। इकबाल हाथ बांधे हुए खड़ा मालूम होता था। नौकर-चाकर कितने सलीकेदार थे, घोड़े कितने समझदार, पौधे कितने सुन्दर, यहां तक कि कुत्तों के चेहरे पर भी इकबाल की आभा झलक रही थी।

राजा साहब को देखते ही जिम साहब ने हाथ मिलाया और पूछा—आपने जेल में दंगे का हाल सुना?

राजा—जी हां! सुनकर बड़ा अफसोस हुआ।

जिम—सब उसी का शरारत है, उसी बागी नौजवान का।

राजा—हुजूर का मतलब चक्रधर से है?

जिम—हां, उसी से! बहुत ही खौफनाक आदमी है। उसी ने कैदियों को भड़काया है।

राजा—लेकिन अब तो उसको अपने किए की सजा मिल गई। अगर बच भी गया, तो महीनों चारपाई से न उठेगा।

जिम—ऐसे आदमी के लिए इतनी ही सजा काफी नहीं। हम उस पर मुकदमा चलाएगा।

राजा—मैंने सुना है कि उसके कन्धे में गहरा जख्म है और आपसे यह अर्ज करता हूं कि उसे शहर के बड़े अस्पताल में रखा जाय, जहां उसका अच्छा इलाज हो सके। आपकी इतनी कृपा हो जाय तो उस गरीब की जान बच जाय, और जिले में आपका नाम हो जाय। मैं इसका जिम्मा ले सकता हूं कि अस्पताल में उसकी पूरी निगरानी रखी जायगी।

जिम—हम एक बागी के साथ कोई रिआयत नहीं कर सकता। आप जानता है, मुगलों या मरहठों का राज होता, तो ऐसे आदमी को क्या सजा मिलता? उसका खाल खींच लिया जाता, उसके दोनों हाथ काट लिये जाते। हम अपने दुश्मन को कोई रिआयत नहीं कर सकता।

राजा—हुजूर, दुश्मनों के साथ रिआयत करना उनको सबसे बड़ी सजा देना है। आप जिस पर दया करें, वह कभी आपसे दुश्मनी नहीं कर सकता। वह अपने किए पर लज्जित होगा और सदैव के लिए आपका भक्त हो जायगा।

जिम—राजा साहब, आप समझता नहीं। ऐसा सलूक उस आदमी के साथ किया जाता है, जिसमें कुछ आदमियत बाकी रह गया हो। बागी का दिल बालू का मैदान है। उसमें पानी का बूंद भी नहीं होता, और न उसे पानी से सींचा जा सकता है। आदमी में जितना धर्म और शराफत है उसके मिट जाने पर वह बागी हो जाता है। उसे भलमनसी में आप नहीं जीत सकता।

राजा साहब को आशा थी कि साहब मेरी बात आसानी से मान लेंगे। साहब के पास वह रोज ही कोई-न-कोई तोहफा भेजते रहते थे। उनकी जिद पर चिढ़कर बोले—जब मैं आपको विश्वास दिला रहा हूं कि उस पर अस्पताल में काफी निगरानी रखी जायगी; तो आपको मेरी अर्ज मानने में क्या आपत्ति है?

जिम ने मुस्कराकर कहा—यह जरूरी नहीं कि मैं आपसे अपनी पालिसी बयान करूं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राजा—मैं उसकी जमानत करने को तैयार हूं

जिम—(हंसकर) आप उसकी जबान की जमानत तो नहीं कर सकते? हजारों आदमी उसे देखने को रोज आएगा। आप उन्हें रोक तो नहीं सकते? गंवार लोग यही समझेगा कि सरकार इस आदमी पर बड़ा जुल्म कर रही है। उसे देख-देखकर लोग भड़केगा। इसको आप कैसे रोक सकते हैं?

राजा साहब के जी में आया कि इसी वक्त यहां से चल दूं और फिर इसका मुंह न देखूं। पर खयाल किया, मनोरमा बैठी मेरी राह देख रही होगी। यह खबर सुनकर उसे कितनी निराशा होगी। ईश्वर ! इस निर्दयी के हृदय में थोड़ी-सी दया डाल दो ! बोले—आप यह हुक्म दे सकते हैं कि उनके निकट सम्बन्धियों के सिवा कोई उनके पास न जाने पाए !

जिम—मेरे हुक्म में इतनी ताकत नहीं है कि वह अस्पताल को जेल बना दे।

यह कहते-कहते मिस्टर जिम फिटन पर बैठे और सैर करने चल दिए।

राजा साहब को एक क्षण के लिए मनोरमा पर क्रोध आ गया। उसी के कारण मैं यह अपमान सह रहा हूं, नहीं तो मुझे क्या गरज पड़ी थी कि इसकी इतनी खुशामद करता। जाकर कहे देता हूं कि साहब नहीं मानते, मैं क्या करूं। मगर उसके आंसुओं के भय ने फिर कातर कर दिया। आह ! उसका कोमल हृदय टूट जायगा। आंखों में आंसू की झड़ी लग जायगी। नहीं, मैं कभी इसका पिण्ड न छोड़ूंगा। मेरा अपमान हो, इसकी चिन्ता नहीं। लेकिन उसे दुःख न हो।

थोड़ी देर तक तो राजा साहब बाग में टहलते रहे। फिर मोटर पर जा बैठे और घण्टे भर इधर-उधर घूमते रहे। आठ बजे वह लौटकर आए, तो मालूम हुआ, अभी साहब नहीं आए। फिर लौटे, इसी तरह घण्टे-घण्टे भर के बाद वह तीन बार आए, मगर साहब बहादुर अभी तक न लौटे थे।

सोचने लगे, इतनी रात गए अगर मुलाकात हो भी गई, तो बातचीत करने का मौका कहां? शराब के नशे में चूर होगा। आते-ही-आते सोने चला जायगा। मगर कम-से-कम मुझे देखकर इतना तो समझ जायगा कि यह बेचारे अभी तक खड़े हैं। शायद दया आ जाए।

एक बजे के करीब बग्घी की आवाज आई। राजा साहब मोटर से उतरकर खड़े हो गए। जिम भी फिटन से उतरा। नशे से आंखें सुर्ख थीं। लड़खड़ाता हुआ चल रहा था। राजा को देखते ही बोला—ओ, ओ ! तुम यहां क्यों खड़ा है? बाग जाओ, अभी जाओ, बागो !

राजा—हुजूर, मैं हूं राजा विशालसिंह।

जिम—ओ ! डैम राजा, अबी निकल जाओ। तुम भी बागी है। तुम बागी का सिफारिश करता है, बागी को पनाह देता है। सरकार का दोस्त बनता है। अबी निकल जाओ। राजा और रैयत सब एक है। हम किसी पर भरोसा नहीं करता। अपने जोर का भरोसा है। राजा का काम बागियों को पकड़वाना, उनका पता लगाना है। उनका सिफारिश करना नहीं। अबी निकल जाओ।

यह कहकर वह राजा साहब की ओर झपटा। राजा साहब बहुत ही बलवान् मनुष्य थे। वह ऐसे-ऐसे दो को अकेले काफी थे; लेकिन परिणाम के भय ने उन्हें पंगु बना दिया था। एक घूंसा भी लगाया और पांच करोड़ रुपये की जायदाद हाथ से निकली। वह घूंसा बहुत महंगा पड़ेगा। परिस्थिति भी उनके प्रतिकूल थी। इतनी रात को उसके बंगले पर आना इस बात का सबूत समझा जायगा कि उनकी नीयत अच्छी नहीं थी। दीन भाव से बोले—साहब, इतना जुल्म न कीजिए। इसका जरा भी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खयाल न कीजिएगा कि मैं शाम से अब तक आपके दरवाजे पर खड़ा हूं? कहिए तो आपके पैरों पड़ूं। जो कहिए, करने को हाजिर हूं। मेरी अर्ज कबूल कीजिए।

जिम—कबी नईं होगा. कबी नईं होगा। तुम मतलब का आदमी है। हम तुम्हारी चालों को खूब समझता है।

राजा—इतना तो आप कर ही सकते हैं कि मैं उनका इजाल करने के लिए अपना डॉक्टर जेल के अन्दर भेज दिया करूं?

जिम—ओ डैमिट! बक-बक मत करो। सुअर, अभी निकल जाओ, नहीं तो हम ठोकर मारेगा।

अब राजा साहब से जब्त न हुआ। क्रोध ने सारी चिन्ताओं को, सारी कमजोरियों को निगल लिया। राज्य रहे या जाय, बला से! जिम ने ठोकर चलाई ही थी कि राजा साहब ने उसकी कमर पकड़कर इतने जोर से पटका कि वह चारों खाने चित्त जमीन पर गिर पड़ा। फिर उठना चाहता था कि राजा साहब उसकी छाती पर चढ़ बैठे और उसका गला जोर से दबाया। कौड़ी-सी आंखें निकल आईं, मुंह से फिचकुर बहने लगा। सारा नशा, सारा क्रोध, सारा रौब, सारा अभिमान, रफूचक्कर हो गया।

राजा ने गला छोड़कर कहा—गला घोंट दूंगा, इस फेर में मत रहना। कच्चा ही चबा जाऊंगा। चपरासी या अहलकर नहीं हूं कि तुम्हारी ठोकरें सह लूंगा।

जिम—राजा साहब, आप सचमुच नाराज हो गया। मैं तो आपसे दिल्लगी करता था। आप तो पहलवान हैं। आप दिल्लगी में बुरा मान गया!

राजा—बिल्कुल नहीं। मैं भी दिल्लगी कर रहा हूं। अब तो आप फिर मेरे साथ दिल्लगी न करेंगे?

जिम—कबी नईं, कबी नईं।

राजा—मैंने जो अर्ज की थी, वह आप मानेंगे या नहीं?

जिम—मानेंगे, मानेंगे; हम सुबह होते ही हुक्म देगा।

राजा—दगा तो न करोगे?

जिम—कबी नईं, कभी नईं। आप भी किसी से यह बात न कहना।

राजा—दगा की, तो इसी तरह फिर पटकूंगा, याद रखना। यह कहकर राजा साहब मिस्टर जिम को छोड़कर उठ गये। जिम भी गर्द झाड़कर उठा और राजा साहब से बड़े तपाक के साथ हाथ मिलाकर उन्हें रुखसत किया। जरा भी शोरगुल न हुआ। जिम साहब के साईस के सिवा और किसी ने मल्लयुद्ध नहीं देखा था, और उसकी मारे डर के बोलने की हिम्मत न पड़ी।

राजा साहब दिल में सोचते जाते थे कि देखें, वादा पूरा करता है या मुकर जाता है। कहीं कल कोई शरारत न करे। उंह, देखी जायगी। इस वक्त तो ऐसी पटकनी दी है कि बचा याद करते होंगे। यह सब वादे के तो सच्चे होते हैं। सुबह को देखूंगा। अगर हुक्म न दिया, तो फिर जाऊंगा। इतना डर तो उसे भी होगा कि मैंने दगा की, तो वह भी कलई खोल देगा। सज्जनता से तो नहीं, पर इस भय से जरूर वादा पूरा करेगा। मनोरमा अपने घर चली गई होगी। तड़के ही जाकर उसे यह खबर सुनाऊंगा। खिल उठेगी। आह! उस वक्त उसकी छवि देखने ही योग्य होगी!

राजा साहब घर पहुंचे, तो डेढ़ बज गए थे; पर अभी तक सोता न पड़ा था। नौकर-चाकर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उनकी राह देख रहे थे। राजा साहब मोटर से उतरकर ज्योंही बरामदे में पहुंचे, तो देखा मनोरमा खड़ी है। राजा साहब ने विस्मित होकर पूछा—क्या तुम अभी घर नहीं गई? तब से यहीं हो? रात तो बहुत बीत गई।

मनोरमा—एक किताब पढ़ रही थी। क्या हुआ?

राजा—कमरे में चलो, बताता हूं।

राजा साहब ने सारी कथा आदि से अन्त तक बड़े गर्व के साथ नमक-मिर्च लगाकर बयान की। मनोरमा तन्मय होकर सुनती रही। ज्यों-ज्यों वह वृत्तान्त सुनती थी, उसका मन राजा साहब की ओर खिंच जाता था। मेरे लिए इन्होंने इतना कष्ट, इतना अपमान सहा। वृत्तान्त समाप्त हुआ, तो वह प्रेम और भक्ति से गद्‌गद होकर राजा साहब के पैरों पर गिर पड़ी और कांपती हुई आवाज से बोली—मैं आपका यह एहसान कभी न भूलूंगी।

आज ज्ञात रूप से उसके हृदय में प्रेम का अंकुर पहली बार जमा। वह एक उपासक की भांति अपने उपास्य देव के लिए बाग में फूल तोड़ने आई थी; पर बाग की शोभा देखकर उस पर मुग्ध हो गई। फूल लेकर चली, तो बाग की सुरम्य छटा उसकी आंखों में समाई हुई थी। उसके रोम-रोम से यही ध्वनि निकलती थी—आपका एहसान कभी न भूलूंगी। स्तुति के शब्द उसके मुंह तक आकर रह गए।

वह घर चली, तो चारों ओर अंधकार और सन्नाटा था; पर उसके हृदय में प्रकाश फैला हुआ था और प्रकाश में संगीत की मधुर ध्वनि प्रवाहित हो रही थी। एक क्षण के लिए वह चक्रधर की दशा भी भूल गई, जैसे मिठाई हाथ में लेकर बालक अपने छिदे हुए कान की पीड़ा भूल जाता है।

बीस

मिस्टर ज़िम ने दूसरे दिन हुक्म दिया कि चक्रधर को जेल से निकालकर शहर के बड़े अस्पताल में रखा जाय। वह उन जिद्दी आदमियों में न थे, जो मार खाकर भी बेहयाई करते हैं। सवेरे परवाना पहुंचा। राजा साहब भी तड़के ही उठकर जेल पहुंचे। मनोरमा वहां पहले ही से मौजूद थी; लेकिन चक्रधर ने साफ कह दिया—मैं यहीं रहना चाहता हूं। मुझे और कहीं भेजने की जरूरत नहीं।

दारोगा—आप कुछ सिड़ी तो नहीं हो गए हैं? कितनी कोशिश से तो राजा साहब ने यह हुक्म दिलायां, और आप सुनते ही नहीं? क्यों जान देने पर तुले हो? यहां इलाज-विलाज खाक न होगा।

चक्रधर—कई आदमियों को मुझसे भी ज्यादा चोट आई है। मेरा मरना-जीना उन्हीं के साथ होगा। उनके लिए ईश्वर है, तो मेरे लिए भी ईश्वर है।

दारोगा ने बहुत समझाया, राजा साहब ने भी समझाया, मनोरमा ने रो-रोकर मिन्नतें कीं; लेकिन चक्रधर किसी तरह राजी न हुए। तहसीलदार साहब को अन्दर आने की आज्ञा न मिली; लेकिन शायद उनके समझाने का भी कुछ असर न होता। दोपहर तक सिरमगजन करने के बाद लोग निराश होकर लौटे।

मुंशीजी ने कहा—दिल नहीं मानता; पर जी यही चाहता है कि इस लौंडे का मुंह न देखूं!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राजा—इसमें बात ही क्या थी ! मेरी सारी दौड़-धूप मिट्टी में मिल गई।

मनोरमा कुछ न बोली। चक्रधर जो कुछ कहते या करते थे, उसे उचित जान पड़ता था। भक्त को आलोचना से प्रेम नहीं। चक्रधर का यह विशाल त्याग उसके हृदय में खटकता था; पर उसकी आत्मा को मुग्ध कर रहा था। उसकी आंखें गर्व से मतवाली हो रही थीं।

मिस्टर जिम को यह खबर मिली, तो तिलमिला उठे, मानो किसी रईस ने एक भिखारी को पैसे जमीन पर फेंककर अपनी राह ली हो। कीर्ति का इच्छुक जब दान करता है, तो चाहता है कि नाम हो, यश मिले। दान का अपमान उससे नहीं सहा जाता। जिसने समझा था कि चक्रधर की आत्मा का मैंने दमन कर दिया। अब उसे मालूम हुआ कि मैं धोखे में था। वह आत्मा अभी तक मस्तक उठाए उसकी ओर ताक रही थी। जिम ने मन में ठान लिया कि मैं उसे कुचलकर छोड़ूंगा।

चक्रधर दो महीने अस्पताल में पड़े रहे। दवा-दर्पण तो जैसी हुई, वही जानते होंगे, लेकिन जनता की दुआओं में जरूर असर था। हजारों आदमी नित्य उनके लिए ईश्वर से प्रार्थना करते थे और मनोरमा को तो दान, व्रत और तप के सिवाय और कोई काम न था। जिन बातों को वह पहले ढकोसला समझती थी, उन्हीं बातों में अब उसकी आत्मा को शान्ति मिलती थी। पहली बार उसे प्रार्थना शक्ति का विश्वास हुआ। कमजोरी ही में हम लकड़ी का सहारा लेते हैं।

चक्रधर तो अस्पताल में पड़े थे, इधर उन पर नया अभियोग चलाने की तैयारियां हो रही थीं। ज्यों ही वह चलने-फिरने लगे, उन पर मुकदमा चलने लगा। जेल के भीतर ही इजलास होने लगा। ठाकुर गुरुसेवकसिंह आजकल डिप्टी मैजिस्ट्रेट थे। उन्हीं को यह मुकदमा सुपुर्द किया गया।

हमारे ठाकुर साहब बड़े जोशीले आदमी थे। वह जितने जोश से किसानों का संगठन करते थे, अब उतने ही जोश से कैदियों को सजाएं भी देते थे। पहले उन्होंने निश्चय किया था कि सेवा में ही अपना जीवन बिता दूंगा; लेकिन चक्रधर की दशा देखकर आंखें खुल गईं। समझ गए कि इन परिस्थितियों में सेवा कार्य टेढ़ी खीर है। जीवन का उद्देश्य यही तो नहीं है कि हमेशा एक पैर जेल में रहे, हमेशा प्राण सूलों पर रहें, खुफिया पुलिस हमेशा ताक में बैठी रहे, भगवद्गीता का पाठ करना मुश्किल हो जाय। यह तो न स्वार्थ है, न परमार्थ, केवल आग में कूदना है, तलवार पर गर्दन रखना है। सेवा-कार्य को दूर से सलाम किया और सरकार के सेवक बन बैठे। खानदान अच्छा था ही, सिफारिश भी काफी थी, जगह मिलने में कोई कठिनाई न हुई। अब वह बड़े ठाठ से रहते थे। रहन-सहन भी बदल डाला, खान-पान भी बदल डाला। उस समाज में घुलमिल गए, जिसकी वाणी में, वेश में, व्यवहार में पराधीनता का चोखा रंग चढ़ा होता है। उन्हें लोग अब 'साहब', कहते हैं। 'साहब', हैं भी पूरे 'साहब', बल्कि 'साहबों' से भी दो अंगुल ऊंचे। किसी को छोड़ना तो जानते ही नहीं। कानून की मंशा चाहे कुछ हो, कड़ी से कड़ी सजा देना उनका काम है। उनका नाम सुनकर बदमाशों की नानी मर जाती है। विधाताओं को उन पर जितना विश्वास है, उतना और किसी हाकिम पर नहीं है इसीलिए यह मुकदमा उनके इजलास में भेजा गया है।

ठाकुर साहब सरकारी काम में जरा भी रू-रिआयत न करते थे; लेकिन यह मुकदमा पाकर वह धर्मसंकट में पड़ गए। धन्नासिंह और अन्य अपराधियों के विषय में कोई चिन्ता न थी, उनकी मीयाद बढ़ा सकते थे, काल कोठरी में डाल सकते थे, सेशन सिपुर्द कर सकते थे; पर चक्रधर को क्या करें! अगर सजा देते हैं, तो जनता में मुंह दिखाने लायक नहीं रहते। मनोरमा तो शायद उनका

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुंह न देखे। छोड़ते हैं, तो अपने समाज में तिरस्कार होता है, क्योंकि वहां सभी चक्रधर से खार खाए बैठे थे। ठाकुर साहब के कानों में किसी ने यह बात भी डाल दी थी कि इसी मुकदमे पर तुम्हारे भविष्य का बहुत कुछ दारमदार है।

मुकदमे को पेश हुए आज तीसरा दिन था। गुरुसेवक बरामदे में बैठे सावन की रिमझिम वर्षा का आनन्द उठा रहे थे। आकाश में मेघों की घुड़दौड़-सी हो रही थी। घुड़दौड़ नहीं, संग्राम था। एक दल आगे वेग से भागा चला जाता था और उसके पीछे विजेताओं का काला दल तोपें दागता, भाले चमकाता, गम्भीर भाव से बढ़ रहा था, मानो भगोड़ों का पीछा करना अपनी शान के खिलाफ समझता हो।

सहसा मनोरमा मोटर से उतरकर उनके समीप ही कुर्सी पर बैठ गई।

गुरुसेवक ने पूछा—कहां से आ रही हो?

मनोरमा—घर से ही आ रही हूं। जेलवाले मुकदमे में क्या हो रहा है?

गुरुसेवक—अभी तो कुछ नहीं हुआ। गवाहों के बयान हो रहे हैं।

मनोरमा—बाबूजी पर जुर्म साबित हो गया?

गुरुसेवक—हो भी गया और नहीं भी हुआ।

मनोरमा—मैं नहीं समझी।

गुरुसेवक—इसका मतलब यह है कि जुर्म का साबित होना या न होना दोनों बराबर हैं, मुझे मुलजिमों को सजा करनी पड़ेगी। अगर बरी कर दूं, तो सरकार अपील करके उन्हें फिर सजा दिला देगी। हां, मैं बदनाम हो जाऊंगा। मेरे लिए यह आत्मबलिदान का प्रश्न है, सारी देवता मंडली मुझ पर कुपित हो जायगी।

मनोरमा—तुम्हारी आत्मा क्या कहती है?

गुरुसेवक—मेरी आत्मा क्या कहेगी? मौन है।

मनोरमा—मैं यह न मानूंगी। आत्मा कुछ-न-कुछ जरूर कहती है, अगर उससे पूछा जाय। कोई माने या न माने, यह उसका अख्तियार है। तुम्हारी आत्मा भी अवश्य तुम्हें सलाह दे रही होगी और उसकी सलाह मानना तुम्हारा धर्म है। बाबूजी के लिए सजा का दो-एक साल बढ़ जाना कोई बात नहीं, वह निरपराध हैं और यह विश्वास उन्हें तस्कीन देने को काफी है; लेकिन तुम कहीं के न रहोगे। तुम्हारे देवता तुमसे भले ही सन्तुष्ट हो जायं; पर तुम्हारी आत्मा का सर्वनाश हो जाएगा।

गुरुसेवक—चक्रधर बिल्कुल बेकसूर तो नहीं है। पहले-पहल जेल के दारोगा पर वही गर्म पड़े थे। वह उस वक्त जब्त कर जाते, तो यह फिसाद न खड़ा होता। यह अपराध उनके सिर से कैसे दूर होगा?

मनोरमा—आपके कहने का यह मतलब है कि वह गालियां खाकर चुप रह जाते? क्यों?

गुरुसेवक—जब उन्हें मालूम था कि मेरे बिगड़ने से उपद्रव की सम्भावना है, तो मेरे खयाल में उन्हें चुप ही रह जाना चाहिए था।

मनोरमा—और मैं कहती हूं कि उन्होंने जो कुछ किया, वही उनका धर्म था। आत्मसम्मान की रक्षा हमारा सबसे पहला धर्म है। आत्मा की हत्या करके अगर स्वर्ग भी मिले, तो वह नरक है। आपको अपने फैसले में साफ-साफ लिखना चाहिए कि बाबूजी बेकसूर हैं। आपको सिफारिश

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करनी चाहिए कि एक महान् संकट में, अपने प्राणों को हथेली पर लेकर, जेल के कर्मचारियों की जान बचाने के बदले में उनकी मीयाद घटा दी जाय। सरकार अपील करे, इससे आपको कोई प्रयोजन नहीं। आपका कर्त्तव्य वही है जो मैं कह रही हूं।

गुरुसेवक ने अपनी नीचता को मुस्कराइट से छिपाकर कहा—आग में कूद पड़ूं?

मनोरमा—धर्म की रक्षा के लिए आग में कूद पड़ना कोई नई बात नहीं है। आखिर आपको किस बात का डर है? यही न, कि आपसे आपके अफसर नाराज हो जाएंगे? आप शायद डरते हों कि कहीं आप अलग न कर दिए जायं। इसकी जरा भी चिन्ता न कीजिए ! मैं आशा करती हूं.... मुझे विश्वास है कि आपका नुकसान न होने पाएगा।

गुरुसेवक अपनी स्वार्थपरता पर झेंपते हुए बोले—नौकरी की मुझे परवाह नहीं है, मनोरमा ! मैं इन लोगों के कमीनेपन से डरता हूं। इनको फौरन खयाल होगा कि मैं भी उसी टुकड़ी में मिला हुआ हूं, और आश्चर्य नहीं कि मैं भी किसी जुल्म में फांस दिया जाऊं। मुझे इनके साथ मिलने-जुलने से इनकी नीचता का कई बार अनुभव हो चुका है। इनमें उदारता और सज्जनता नाम को भी नहीं होती। बस, अपने मतलब के यार हैं। इनका धर्म, इनकी राजनीति, इनका न्याय, इनकी सभ्यता केवल एक शब्द में आ जाती है, और वह शब्द है—'स्वार्थ'। मैं सब कुछ सह सकता हूं, जेल के कष्ट नहीं सह सकता। जानता हूं, यह मेरी कमजोरी है; पर क्या करूं? मुझमें तो इतना साहस नहीं।

मनोरमा—भैयाजी, आपकी यह सारी शंकाएं निर्मूल हैं। मैं आपका जरा भी नुकसान न होने दूंगी। गवाहों के बयान हो गए कि नहीं?

गुरुसेवक—हां, हो गए। अब तो केवल फैसला सुनाना है।

मनोरमा—तो लिखिए, लाऊं कलम-दावात?

गुरुसेवक—लिख लूंगा, जल्दी क्या है?

मनोरमा—मैं बिना लिखवाए यहां से जाऊंगी ही नहीं। यही इरादा करके आज आई हूं।

गुरुसेवक—जरा घर में जाकर लोगों से मिल आओ। शिकायत करती थीं कि अभी से हमें भूल गईं।

मनोरमा—टालमटोल न कीजिए। मैं सब सामान यहीं लाए देती हूं। आपको इसी वक्त लिखना पड़ेगा।

गुरुसेवक—तो तुम कब तक बैठी रहोगी? फैसला लिखना कोई मुंह का कौर थोड़े ही है।

मनोरमा—आधी रात तक खत्म हो जायगा? आज न होगा, कल होगा? मैं फैसला पढ़कर ही यहां से जाऊंगी। तुम दिल से चक्रधर को निर्दोष मानते हो, केवल स्वार्थ और भय तुम्हें दुविधा में डाले हुए हैं ! मैं देखना चाहती हूं कि तुम कहां तक सत्य का निर्वाह करते हो।

सहसा दूसरी मोटर आ पहुंची। इस पर राजा साहब बैठे हुए थे। गुरुसेवक बड़े तपाक से उन्हें लेने दौड़े। राजा ने उनकी ओर विशेष ध्यान न दिया। मनोरमा के पास आकर बोले—तुम्हारे घर से चला आ रहा हूं। वहां पूछा तो मालूम हुआ—कहीं गई हो; पर यह किसी को न मालूम था कि कहां ! वहां से पार्क गया, पार्क से चौक पहुंचा, सारे जमाने की खाक छानता हुआ यहां पहुंचा हूं। मैं कितनी बार कह चुका हूं कि घर से चला करो, तो जरा बतला दिया करो।

मनोरमा—मैंने समझा था, आपके आने के वक्त तक लौट आऊंगी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राजा—खैर, अभी कुछ ऐसी देर नहीं हुई। कहिए, डिप्टी साहब, मिजाज तो अच्छे हैं? कभी-कभी भूलकर हमारी तरफ भी आ जाया कीजिए। (मनोरमा से) चलो, नहीं तो शायद जोर से पानी आ जाय।

मनोरमा—मैं तो आज न जाऊँगी।

राजा—नहीं-नहीं, ऐसा न कहो। वे लोग हमारी राह देख रहे होंगे।

मनोरमा—मेरा तो जाने को जी नहीं चाहता।

राजा—तुम्हारे बगैर सारा मजा किरकिरा हो जायगा, और मुझे बहुत लज्जित होना पड़ेगा। मैं तुम्हें जबरदस्ती ले जाऊंगा।

यह कहकर राजा साहब ने मनोरमा का हाथ आहिस्ता से पकड़ लिया और उसे मोटर की तरफ खींचा। मनोरमा ने एक झटके से अपना हाथ छुड़ा लिया और त्योरियां बदलकर बोली—एक बार कह दिया कि मैं न जाऊंगी।

राजा—आखिर क्यों?

मनोरमा—अपनी इच्छा !

गुरुसेवक—हूजूर, यह मुझसे जबरदस्ती जेलवाले मुकदमे का फैसला लिखाने बैठी हुई हैं। कहती हैं, विना लिखवाए न जाऊंगी।

गुरुसेवक ने तो यह बात दिल्लगी से कही थी, पर समयोचित बात उनके मुंह से कम निकलती थी। मनोरमा का मुंह लाल हो गया। समझी कि यह मुझे राजा साहब के सम्मुख गिराना चाहते हैं। तनकर बोली—हां, इसीलिए बैठी हूं, तो फिर? आपको यह कहते हुए शर्म आनी चाहिए थी। एक निरपराध आदमी को आपके हाथों स्वार्थमय अन्याय से बचाने के लिए मेरी निगरानी की जरूरत है। क्या यह आपके लिए शर्म की बात नहीं है? अगर मैं समझती कि आप निष्पक्ष होकर फैसला करेंगे, तो मेरे बैठने की क्यों जरूरत होती ? आप मेरे भाई हैं, इसलिए मैं आपसे सत्याग्रह कर रही हूं। आपकी जगह कोई दूसरा आदमी बाबूजी पर जान-बूझकर ऐसा घोर अन्याय करता, तो शायद मेरा बस चलता, तो उसके हाथ कटवा लेती। चक्रधर की मेरे दिल में जितनी इज्जत है, उसका आप लोग अनुमान नहीं कर सकते।

एक क्षण के लिए सन्नाटा छा गया। गुरुसेवक का मुंह नन्हा-सा हो गया, और राजा साहब तो मानो रो दिए। आखिर चुपचाप अपनी मोटर की ओर चले। जब वह मोटर पर बैठ गए तो मनोरमा भी धीरे से उनके पास आई और स्नेह सिंचित नेत्रों से देखकर बोली—मैं कल आपके साथ अवश्य चलूंगी।

राजा ने सड़क की ओर ताकते हुए कहा—जैसी तुम्हारी खुशी।

मनोरमा—अगर इस मामले में सच्चा फैसला करने के लिए भैयाजी पर हाकिमों की अकृपा हुई, तो आपको भैयाजी के लिए कुछ फिक्र करनी पड़ेगी।

राजा—देखी जायगी।

मनोरमा तनकर बोले—क्या कहा?

राजा—कुछ तो नहीं।

मनोरमा—भैयाजी को रियासत में जगह देनी होगी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राजा—तो दे देना, मैं रोकता कब हूं?

मनोरमा—कल चार बजे आने की कृपा कीजिएगा। मुझे आपके साथ आज न चलने का बड़ा दु:ख है, पर मजबूर हूं। मैं चली जाऊंगी, तो भैयाजी कुछ का कुछ कर बैठेंगे। आप नाराज तो नहीं हैं?

यह कहते-कहते मनोरमा की आंखें सजल हो गईं। राजा ने मन्त्र-मुग्ध नेत्रों से उसकी ओर ताका और गद्‌गद होकर बोले—तुम इसकी जरा भी चिन्ता न करो। तुम्हारा इशारा काफी है। लो, अब खुश होकर मुस्करा दो। देखो, वह हंसी आई!

मनोरमा मुस्करा पड़ी। पानी में कमल खिल गया। राजा साहब ने उससे हाथ मिलाया और चले गए। तब मनोरमा आकर कुर्सी पर बैठ गई।

इस समय गुरुसेवक की दशा उस आदमी की-सी थी, जिसके सामने कोई महात्मा धूनी रमाए बैठे हों, और बगल में कोई विहसित, विकसित रमणी मधुर संगीत अलाप रही हो। उसका मन तो संगीत की ओर आकर्षित होता है; लेकिन लज्जावश उधर न देखकर वह जाता है और महात्मा के चरणों पर सिर झुका देता है।

मनोरमा कुर्सी पर बैठी उनकी ओर इस तरह ताक रही थी, मानो किसी बालक ने अपनी कागज की नाव लहरों में डाल दी हो और उसको लहरों के साथ हिलते हुए बहते देखने में मग्न हो। नाव कभी झोंके खाती है, कभी लहरों के साथ बहती है और कभी डगमगाने लगती है। बालक का हृदय भी उसी भांति कभी उछलता है, कभी घबराता है और कभी बैठ जाता है।

कुर्सी पर बैठे-बैठे मनोरमा को एक झपकी आ गई। सावन-भादों की ठंडी हवा निद्रामय होती है। उसका मन स्वप्न-साम्राज्य में जा पहुंचा। क्या देखती है कि उसके बचपन के दिन हैं। वह अपने द्वार पर सहेलियों के साथ गुड़िया खेल रही है। सहसा एक ज्योतिषी पगड़ी बांधे, पोथी-पत्रा बगल में दबाए आता है। सब लड़कियां अपनी गुड़ियों का हाथ दिखाने के लिए दौड़ी हुई ज्योतिषी के पास जाती हैं। ज्योतिषी गुड़ियों के हाथ देखने लगता है। न जाने कैसे गुड़ियों के हाथ लड़कियों के हाथ बन जाते हैं। ज्योतिषी एक बालिका का हाथ देखकर कहता है—तेरा विवाह एक बड़े भारी अफसर से होगा। बालिका हंसती हुई अपने घर चली जाती है। तब ज्योतिषी दूसरी बालिका का हाथ देखकर कहता है—तेरा विवाह एक बड़े सेठ से होगा। तू पालकी में बैठकर चलेगी। वह बालिका भी खुश होकर घर चली जाती है। तब मनोरमा की बारी आती है। ज्योतिषी उसका हाथ देखकर चिन्ता में डूब जाते हैं और अन्त में संदिग्ध स्वर में कहते हैं—तेरे भाग्य में जो कुछ लिखा है, तू उसके विरुद्ध करेगी और दु:ख उठाएगी। यह कहकर वह चल पड़ते हैं; पर मनोरमा उनका हाथ पकड़कर कहती है—आपने मुझे तो कुछ नहीं बताया। मुझे उसी तरह बता दीजिए, जैसे आपने मेरी सहेलियों को बताया है। ज्योतिषी झुंझलाकर कहते हैं—तू प्रेम को छोड़कर धन के पीछे दौड़ेगी; पर तेरा उद्धार प्रेम ही से होगा। यह कहकर ज्योतिषीजी अन्तर्धान हो गए और मनोरमा खड़ी रोती रह गई।

यही विचित्र दृश्य देखते-देखते मनोरमा की आंखें खुल गईं। उसकी आंखों से अभी तक आंसू बह रहे थे। सामने उसकी भावज खड़ी कह रही थी—घर में चलो, बीबी! मुझसे क्यों इतना भागती हो? क्या मैं कुछ छीन लूंगी? और गुरुसेवक लैम्प के सामने बैठे तजवीज लिख रहे थे। मनोरमा ने भावज से पूछा—भाभी, क्या मैं सो गई थी? अभी तो शाम हुई है।

गुरुसेवक ने कहा—शाम नहीं हुई है, बारह बज रहे हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मनोरमा—तो आपने तजवीज लिख डाली होगी?

गुरुसेवक—बस, जरा देर में खत्म हुई जाती है।

मनोरमा ने कांपते हुए स्वर में कहा—आप यह तजवीज फाड़ डालिए।

गुरुसेवक ने बड़ी-बड़ी आंखें करके पूछा—क्यों, फाड़ क्यों डालूं?

मनोरमा—यों ही! आपने इस मुकद्दमे का जिक्र ऐसे बेमौके कर दिया कि राजा साहब नाराज हो गए होंगे। मुझे चक्रधर से कुछ रिश्वत तो लेनी नहीं है। वह तीन वर्ष की जगह तीस वर्ष क्यों न जेल में पड़े रहें, पुण्य और पाप आपके सिर। मुझसे कोई मतलब नहीं।

गुरुसेवक—नहीं मनोरमा, मैं अब यह तजवीज नहीं फाड़ सकता। बात यह है कि मैंने पहले ही से दिल में एक बात स्थिर कर ली थी, और सारी शहादतें मुझे उसी रंग में रंगी नजर आती थीं। सत्य की मैंने तलाश न की थी, तो सत्य मिलता कैसे? अब मालूम हुआ कि पक्षपात क्योंकर लोगों की आंखों पर परदा डाल देता है। अब जो सत्य की इच्छा से बयानों को देखता हूं, तो स्पष्ट मालूम होता है कि चक्रधर बिलकुल निर्दोष हैं। जान-बूझकर अन्याय न करूंगा।

मनोरमा—आपने राजा साहब की त्योरियां देखीं?

गुरुसेवक—हां, खूब देखीं; पर उनकी अप्रसन्नता के भय से अपनी तजवीज नहीं फाड़ सकता। यह पहली तजवीज है, जो मैंने पक्षपात रहित होकर लिखी है और जितना संतोष आज मुझे अपने फैसले पर है, उतना और कभी न हुआ था। अब तो कोई लाख रुपये भी दे, तो भी इसे न फाड़ूं।

मनोरमा—अच्छा, तो लाइए, मैं फाड़ दूं।

गुरुसेवक—नहीं मनोरमा, औंघते हुए आदमी को मत ठेलो, नहीं तो फिर वह इतने जोर से गिरेगा कि उसकी आत्मा तक चूर-चूर हो जाएगी। मुझे तो विश्वास है कि इस तज़वीज से चक्रधर की पहली सजा भी घट जायगी। शायद सत्य कलम को भी तेज कर देता है। मैं इन तीन घंटों में बिना चाय का एक प्याला पिये चालीस पृष्ठ लिख गया, नहीं तो हर दस मिनट में चाय पीनी पड़ती थी। बिना चाय की मदद के कलम ही न चलती थी।

मनोरमा—लेकिन मेरे सिर इसका एहसान न होगा?

गुरुसेवक—सचाई आप ही अपना इनाम है, यह पुरानी कहावत है। सत्य से आत्मा भी बलवान हो जाती है। मैं तुमसे सत्य कहता हूं, अब मुझे जरा भी भय नहीं है।

मनोरमा—अच्छा,अब मैं जाऊंगी। लालाजी घबरा रहे होंगे।

भाभी—हां-हां, जरूर जाओ, वहां माताजी के स्तनों में दूध उतर आया होगा। यहां कौन अपना बैठा हुआ है?

मनोरमा—भाभी, लौंगी अम्मां को तुम जितना नीच समझती हो, उतनी नीच नहीं हैं। तुम लोगों के लिए वह अब भी रोया करती हैं।

भाभी—अब बहुत बखान न करो, जी जलता है। वह तो मरती भी हो, तो भी देखने न जाऊं। किसी दूसरे घर में होती, तो अभी तक बरतन मांजती होती। यहां आकर रानी बन गई। लो उठो चलो; आज तुम्हारा गाना सुनूंगी। बहुत दिनों के बाद पंजे में आयी हो।

मनोरमा घर न जा सकी। भोजन करके भावज के साथ लेटी; बड़ी रात तक दोनों में बातें होती रहीं। आखिर भाभी को नींद आ गई, पर मनोरमा की आंखों में नींद कहां? वह तो पहले ही सो चुकी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थी, वही स्वप्न उसके मस्तिष्क में चक्कर लगा रहा था। वह बार-बार सोचती थी, इस स्वप्न का आशय क्या यही है कि राजा साहब से विवाह करके वह सचमुच अपना भाग्य पलट रही है? क्या वह प्रेम को छोड़कर धन के पीछे भागी जा रही है?वह प्रेम कहां है, जिसे उसने छोड़ दिया है? उसने तो उसे पाया ही नहीं। वह जानती है कि उसे कहां पा सकती है; पर पाए कैसे? वह वस्तु तो उसके हाथ से निकल गई। वह मन में कहने लगी—बाबूजी, तुमने कभी मेरी ओर आंख उठाकर देखा है? नहीं, मुझे इसकी लालसा रह ही गई। तुम दूसरों के लिए मरना जानते हो, अपने लिए जीना भी नहीं जानते। तुमने एक बार मुझे इशारा भी कर दिया होता, तो मैं दौड़कर तुम्हारे चरणों में लिपट जाती। इस धन-दौलत पर लात मार देती, इस बन्धन को कच्चे धागे की भांति तोड़ देती; लेकिन तुम इतने विद्वान होकर भी इतने सरल हृदय हो ! इतने अनुरक्त होकर भी इतने विरक्त ! तुम समझते हो, तुम्हारे मन का हाल नहीं जानती? मैं सब जानती हूं, एक-एक अक्षर जानती हूं; लेकिन क्या करूं? मैंने अपने मन के भाव उससे अधिक प्रकट कर दिए थे, जितना मेरे लिए उचित था। मैंने बेशर्मी तक की, लेकिन तुमने मुझे न समझा, या समझने की चेष्टा ही न की। अब तो भाग्य मुझे उसी ओर लिये जा रहा है, जिधर मेरी चिता बनी हुई है। उसी चिता पर बैठने जाती हूं। यही हृदयदाह मेरी चिता होगी और यही स्वप्न-सन्देश मेरे जीवन का आधार होगा। प्रेम से मैं वंचित हो गई और अब मुझे सेवा ही से अपना जीवन सफल करना होगा। वह स्वप्न नहीं, आकाशवाणी है ! अभागिनी इससे अधिक और क्या अभिलाषा रख सकती है?

यही सोचते-सोचते वह लेटे-लेटे यह गीत गाने लगी—

करूं क्या, प्रेम समुद्र अपार !
स्नेह सिन्धु में मग्न हुई मैं, लहरें रहीं हिलोर,
हाथ न आए तुम जीवन धन, पाया कहीं न छोर,
करूं क्या, प्रेम समुद्र अपार !
झूम-झूमकर जब इठलायी सुरभित स्निग्ध समीर,
नभ मंडल में लगा विचरने मेरा हृदय अधीर।
करूं क्या, प्रेम समुद्र अपार।

इक्कीस

हुक्काम के इशारों पर नाचने वाले गुरुसेवकसिंह ने जब चक्रधर को जेल के दंगे के इलजाम से बरी कर दिया, तो अधिकारी मंडल में सनसनी-सी फैल गई। गुरुसेवक से ऐसे फैसले की किसी को आशा न थी। फैसला क्या था, मानपत्र था, जिसका एक-एक शब्द वात्सल्य के रस में सराबोर था। जनता में धूम मच गई। ऐसे न्यायवीर और सत्यवादी प्राणी विरले ही होते हैं, सबके मुंह से यही बात निकलती थी। शहर के कितने ही आदमी तो गुरुसेवक के दर्शनों को आए और यह कहते हुए लौटे कि यह हाकिम नहीं, साक्षात् देवता है। अधिकारियों ने सोचा था, चक्रधर को चार-पांच साल जेल में सड़ाएंगे, लेकिन अब तो खूंटा ही उखड़ गया, उछलें किस बिरते पर? चक्रधर इस इल्जाम से बरी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ही न हुए, बल्कि उनकी पहली सजा भी एक साल घटा दी गई।

मिस्टर जिम तो ऐसा जामे से बाहर हुए कि बस चलता, तो गुरुसेवक को गोली मार देते। और कुछ न कर सके, तो चक्रधर को तीसरे ही दिन आगरे भेज दिया, लेकिन ईश्वर न करे कि किसी पर हाकिमों की टेढ़ी निगाह हो। चक्रधर की मीयाद घटा दी गई, लेकिन कर्मचारियों को सख्त ताकीद कर दी गयी थी कि कोई कैदी उनसे बोलने तक न पाए, कोई उनके कमरे के द्वार तक भी न जाने पाए, यहां तक कि कोई कर्मचारी भी उनसे न बोले। साल भर में दस साल की कैद का मजा चखाने की हिकमत सोच निकाली गई। मजा यह कि इस धुन में चक्रधर को कोई काम भी न दिया गया। बस, चारों पहर उसी चार हाथ लम्बी और तीन हाथ चौड़ी कोठरी में पड़े रहो।

जेल के विधाताओं में चाहे जितने अवगुण हों, पर वे मनोविज्ञान के पण्डित होते हैं। किस दंड से आत्मा को अधिक से अधिक कष्ट हो सकता है, इसका उन्हें सम्पूर्ण ज्ञान होता है। मनुष्य के लिए बेकारी से बड़ा और कोई कष्ट नहीं है, इसे वे खूब जानते हैं। चक्रधर के कमरे का द्वार दिन में केवल दो बार खुलता था। वार्डन खाना रखकर किवाड़ बन्द कर देता था। आह ! कालकोठरी ! तू मानवी पशुता की सबसे क्रूर लीला, सबसे उज्ज्वल कीर्ति है। तू वह जादू है, जो मनुष्य को आंखें रहते अन्धा, कान रहते बहरा, जीभ रहते गूंगा बना देती है। कहां हैं सूर्य की वे किरणें जिन्हें देखकर आंखों को अपने होने का विश्वास हो?कहां है वह वाणी,जो कानों को जगाए? गंध है, किन्तु ज्ञान तो भिन्नता में है। जहां दुर्गन्ध के सिवा और कुछ नहीं, वहां गंध का ज्ञान कैसे हो? बस, शून्य है, अंधकार है ! वहां पंच भूतों का अस्तित्व ही नहीं। कदाचित् ब्रह्मा ने इस अवस्था की कल्पना ही न की होगी, कदाचित् उनमें यह सामर्थ्य ही न थी। मनुष्य की आविष्कार शक्ति कितनी विलक्षण है ! धन्य हो देवता, धन्य हो !

चक्रधर के विचार और भाव इतनी जल्द बदलते रहते थे कि कभी-कभी उन्हें भ्रम होने लगता था कि मैं पागल तो नहीं हुआ जा रहा हूं? कभी सोचते ईश्वर ने ऐसी सृष्टि की रचना ही क्यों की, जहां इतना स्वार्थ, द्वेष और अन्याय है? क्या ऐसी पृथ्वी न बन सकती थी, जहां सभी मनुष्य, सभी जातियां प्रेम और आनन्द के साथ संसार में रहतीं? यह कौन-सा इंसाफ है कि कोई तो दुनिया के मजे उड़ाए, कोई धक्के खाए? एक जाति दूसरी का रक्त चूसे और मूंछों पर ताव दे? दूसरी कुचली जाए और दाने-दाने को तरसे? ऐसा अन्यायमय संसार ईश्वर की सृष्टि नहीं हो सकता। पूर्व संसार का सिद्धान्त ढोंग मालूम होता है, जो लोगों ने दुखियों और दुर्बलों के आंसू पोंछने के लिए गढ़ लिये हैं। दो-चार दिन यही संशय उनके मन को मथा करता। फिर एकाएक विचारधारा पलट जाती। अंधकार में प्रकाश की ज्योति फैल जाती, कांटों की जगह फूल नजर आने लगते। पराधीनता एक ईश्वरीय विधान का रूप धारण कर लेती, जिसमें विकास और जागृति का मंत्र छिपा हुआ है। नहीं, पराधीनता दंड नहीं है; यह शिक्षालय है, जो हमें स्वराज्य के सिद्धान्त सिखाता है, हमारे पुराने कुसंस्कारों को मिटाता है; हमारी मुंदी हुई आंखें खोलता है, इसके लिए ईश्वर का गिला करने की जरूरत नहीं। हमें उनको धन्यवाद देना चाहिए।

अन्त को इस अन्तर्द्वन्द्व में उनकी आत्मा ने विजय पाई। सारी मन की अशांति, क्रोध और हिंसात्मक वृत्तियां उसी विजय में मग्न हो गईं। मन पर आत्मा का राज्य हो गया। इसकी परवाह न रही कि ताजी हवा मिलती है या नहीं, भोजन कैसा मिलता है, कपड़े कितने मैले हैं, उनमें कितने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चिलवे पड़े हुए हैं कि खुजाते-खुजाते देह में दिदोरे पड़ जाते हैं। इन कष्टों की ओर उनका ध्यान ही न जाता। मन अन्तर्जगत् की सैर करने लगा। यह नई दुनिया, जिसका अभी तक चक्रधर को बहुत कम ज्ञान था, इस लोक से कहीं ज्यादा पवित्र, उज्ज्वल और शांतिमय थी। यहां रवि की मधुर प्रभात किरणों में, इन्दु की मनोहर छटा में, वायु के कोमल संगीत में. आकाश की निर्मल नीलिमा में एक विचित्र ही आनन्द था। वह किसी समाधिस्थ योगी की भांति घंटों इस अन्तर्लोक में विचरते रहते। शारीरिक कष्टों से अब उन्हें विराग-सा होने लगा। उनकी ओर ध्यान देना वह तुच्छ समझते थे। कभी-कभी वह गाते। मनोरंजन के लिए कई खेल निकाले। अंधेरे में अपनी लुटिया लुढ़का देते और उसे एक ही खोज में उठा लाने की चेष्टा करते। अगर उन्हें किसी चीज की जरूरत मालूम होती, तो वह प्रकाश था। इसलिए नहीं कि वह अंधकार से ऊब गये थे, बल्कि इसलिए कि वह अपने मन में उमड़ने वाले भावों को लिखना चाहते थे। लिखने की सामग्रियों के लिए उनका मन तड़पकर रह जाता। धीरे-धीरे उन्हें प्रकाश की भी जरूरत न रही। उन्हें ऐसा विश्वास होने लगा कि मैं अंधेरे में भी लिख सकता हूं। यही न होगा कि पंक्तियां सीधी न होंगी, पर पंक्तियों को दूर-दूर रखकर और शब्दों को अलग-अलग लिखकर वह इस मुश्किल को आसान कर सकते थे। सोचते, कभी यहां से बाहर निकलने पर उस लिखावट को पढ़ने में कितना आनन्द आएगा, कितना मनोरंजन होगा ! लेकिन लिखने का सामान कहां? बस, यही एक ऐसी चीज थी, जिसके लिए वह कभी-कभार विकल हो जाते थे। विचार को ऐसे अथाह सागर में डूबने का मौका फिर न मिलेगा और ये मोती फिर हाथ न आएंगे, लेकिन कैसे मिलें?

चक्रधर के पास कभी-कभी एक बूढ़ा वार्डन भोजन लाया करता था, वह बहुत ही हंसमुख आदमी था। चक्रधर को प्रसन्नमुख देखकर दो-चार बातें कर लेता था। आह ! बार पूछ चुका था कि बाबूजी चरस-तम्बाकू की इच्छा हो, तो हमसे कहना। चक्रधर को खयाल आया, क्यों न उससे एक पेंसिल और थोड़े-से कागज के लिए कहूं? इस उपकार का बदला कभी मौका मिला तो चुका दूंगा। कई दिनों तक तो वह इसी संकोच में पड़े रहे कि उससे कहूं या नहीं। आखिर एक दिन उनसे न रहा गया, पूछ ही बैठे—क्यों जमादार, यहां कहीं कागज-पेंसिल तो मिलेगी?

बूढ़ा वार्डन उनकी पूर्व कथा सुन चुका था, कुछ लिहाज करता था। मालूम नहीं किस देवता के आशीर्वाद से उसमें इतनी इंसानियत बच रही थी। और जितने वार्डन भोजन लाते, वे या तो चक्रधर को अनायास दो-चार ऐंड़ी-बेंड़ी सुना देते, या चुपके से खाना रखकर चले जाते। चक्रधर को चरित्र-ज्ञान प्राप्त करने का यह बहुत ही अच्छा अवसर मिलता था। बूढ़े वार्डन ने सतर्क भाव से कहा—मिलने को तो मिल जाएगा, पर किसी ने देख लिया, तो क्या होगा?

इस वाक्य ने चक्रधर को संभाल लिया। उनकी विवेक बुद्धि जो क्षण भर के लिए मोह में फंस गई थी, जाग उठी। बोले—नहीं, मैं यों ही पूछता था। यह कहते-कहते लज्जा से उनकी जबान बन्द हो गई। जरा-सी बात के लिए इतना पतन !

इसके बाद उस वार्डन ने फिर कई बार पूछा—कहो तो पिंसिन-कागद ला दूं, मगर चक्रधर ने हर दफा यही कहा—मुझे जरूरत नहीं।

बाबू यशोदानंदन को ज्यों ही मालूम हुआ कि चक्रधर आगरा जेल में आ गए हैं, वह उनसे मिलने की कई बार चेष्टा कर चुके थे, पर आज्ञा न मिलती थी। साधारणत: कैदियों को छठे महीने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपने घर के किसी प्राणी से मिलने की आज्ञा मिल जाती थी। चक्रधर के साथ इतनी रियायत भी न की गई थी, पर यशोदानंदन अवसर पड़ने पर खुशामद भी कर सकते थे। अपना सारा जोर लगाकर अन्त में उन्होंने आज्ञा प्राप्त कर ही ली—अपने लिए नहीं, अहिल्या के लिए। उस विरहणी की दशा दिनोंदिन खराब होती जाती थी। जब से चक्रधर ने जेल में कदम रखा, उसी दिन से वह भी कैदियों की-सी जिंदगी बसर करने लगी। चक्रधर जेल में भी स्वतन्त्र थे, वह भाग्य को अपने पैरों पर झुका सकते थे। अहिल्या घर में भी कैद थी; वह भाग्य पर विजय न पा सकती थी। वह केवल एक बार बहुत थोड़ा-सा खाती और वह भी रूखा-सूखा। वह चक्रधर को अपना पति समझती थी। पति की ऐसी कठिन तपस्या देखकर उसे आप ही आप बनाव-श्रृंगार से, खाने-पीने से, हंसने-बोलने से अरुचि होती थी। कहां पुस्तकों पर जान देती थी, कहां अब उनकी ओर आंख उठाकर न देखती। चारपाई पर सोना भी छोड़ दिया था। केवल जमीन पर एक कंबल बिछाकर पड़ी रहती। बैसाख-जेठ की गरमी का क्या पूछना, घर की दीवारें तवे की तरह तपती हैं। घर भाड़-सा मालूम होता है। रात को खुले मैदान में भी मुश्किल से नींद आती है, लेकिन अहिल्या ने सारी गरमी एक छोटी-सी बन्द कोठरी में सोकर काट दी।

माघ की सरदी का क्या पूछना? प्राण तक कांपते हैं। लिहाफ के बाहर मुंह निकालना मुश्किल होता है। पानी पीने से जूड़ी-सी चढ़ आती है। लोग आग पर पतंगों की भाँति गिरते हैं, लेकिन अहिल्या के लिए वही कोठरी की जमीन थी और एक फटा हुआ कंबल। सारा घर समझाता था—क्यों इस तरह प्राण देती हो? तुम्हारे प्राण देने से चक्रधर का कुछ उपकार होता, तो एक बात भी थी। व्यर्थ काया को क्यों कष्ट देती हो? इसका उसके पास यही जवाब था—मुझे जरा भी कष्ट नहीं। आप लोगों को न जाने कैसे मैदान में गरमी लगती है, मुझे तो कोठरी में खूब नींद आती है। आप लोगों को न जाने कैसे सरदी लगती है, मुझे तो कम्बल में ऐसी गहरी नींद आती है कि एक बार भी आंख नहीं खुलती। ईश्वर में पहले भी उसकी भक्ति कम न थी, अब तो उसकी धर्मनिष्ठा और भी बढ़ गई। प्रार्थना में इतनी शांति है, इसका उसे पहले अनुमान न था। जब वह हाथ जोड़कर आंखें बंद करके ईश्वर से प्रार्थना करती, तो उसे ऐसा मालूम होता कि चक्रधर स्वयं मेरे सामने खड़े हैं। एकाग्रता और निरंतर ध्यान से उसकी आत्मा दिव्य होती जाती थी। इच्छाएं आप ही आप गायब हो गईं। चित्त की वृत्ति ही बदल गई। उसे अनुभव होता था कि मेरी प्रार्थनाएं उस मातृ-स्नेहपूर्ण अंचल की भाँति, जो बालक को ढंक लेता है, चक्रधर की रक्षा करती रहती हैं।

जिस दिन अहिल्या को मालूम हुआ कि चक्रधर से मिलने की आज्ञा मिल गई है उसे आनन्द के बदले भय होने लगा—वह न जाने कितने दुर्बल हो गए होंगे, न जाने उनकी सूरत कैसी बदल गई होगी। कौन जाने, हृदय बदल गया हो। यह भी शंका होती थी कि कहीं मुझे उनके सामने जाते ही मूर्च्छा न आ जाय, कहीं मैं चिल्लाकर रोने न लगूं। अपने दिल को बार-बार मजबूत करती थी।

प्रातःकाल उसने उठकर स्नान किया और बड़ी देर तक बैठी बंदना करती रही। माघ का महीना था, आकाश में बादल छाए हुए थे। इतना कुहरा पड़ रहा था कि सामने की चीज न सूझती थी। सर्दी के मारे लोगों का बुरा हाल था। घरों की महरियां अंगीठियां लिये ताप रही थीं, धन्धा करने कौन जाय। मजदूरों को फाका करना मंजूर था; पर काम पर जाना मुश्किल मालूम होता था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दुकानदारों को दुकान की परवाह न थी, बैठे आग तापते थे; यमुना में नित्य स्नान करने वाले भक्तजन भी आज तट पर नजर न आते थे। सड़कों पर, बाजार में, गलियों में, सन्नाटा छाया हुआ था। ऐसा ही कोई विपत्ति का मारा दुकानदार था, जिसने दुकान खोली हो। बस, अगर चलते-फिरते नजर आते थे, तो वे दफ्तर के बाबू थे, जो सर्दी से सिकुड़े, जेब में हाथ डाले, कमर टेढ़ी किए, लपके चले जाते थे। अहिल्या इसी वक्त यशोदानन्दनजी के साथ गाड़ी में बैठकर जेल चली। उसे उल्लास न था, शंका और भय से दिल कांप रहा था, मानो कोई अपने रोगी मित्र को देखने जा रहा हो।

जेल में पहुंचते ही एक औरत ने उसकी तलाशी ली और उसे पास के एक कमरे में ले गई, जहां एक टाट का टुकड़ा पड़ा था। उसने अहिल्या को उस टाट पर बैठने का इशारा किया। तब एक कुर्सी मंगवाकर आप उस पर बैठ गई और चौकीदार से कहा—अब यहां सब ठीक है, कैदी को लाओ।

अहिल्या का कलेजा धड़क रहा था। उस स्त्री को अपने समीप बैठे देखकर उसे कुछ ढाढ़स हो रहा था, नहीं तो शायद वह चक्रधर को देखते ही उनके पैरों से लिपट जाती। सिर झुकाए बैठी थी कि चक्रधर दो चौकीदारों के साथ कमरे में आए। उनके सिर पर कनटोप था और देह पर एक आधी आस्तीन का कुरता; पर मुख पर आत्मबल की ज्योति झलक रही थी। उनका रंग पीला पड़ गया था, दाढ़ी के बाल बढ़े हुए थे और आंखें भीतर को घुसी हुई थीं; पर मुख पर एक हल्की-सी मुस्कराहट खेल रही थी। अहिल्या उन्हें देखकर चौंक पड़ी, उसकी आंखों से बे-अख्तियार आंसू निकल आए। शायद कहीं और देखती तो पहचान भी न सकती। घबरायी-सी उठकर खड़ी हो गई। अब दो के दोनों खड़े हैं, दोनों के मन में हजारों बातें हैं, उद्गार पर उद्गार उठते हैं, दोनों एक-दूसरे को कनखियों में देखते हैं, जिनमें प्रेम, आकांक्षा और उत्सुकता की लहरें-सी उठ रही हैं; पर किसी के मुंह से शब्द नहीं निकलता। अहिल्या सोचती है, क्या पूछूं, इनका एक-एक अंग अपनी दशा आप सुना रहा है। उसकी आंखों में बार-बार आंसू उमड़ आते हैं पर पी जाती है। चक्रधर भी यही सोचते हैं, क्या पूछूं, इसका एक-एक अंग इसकी तपस्या और वेदना की कथा सुना रहा है। बार-बार ठंडी सांसें खींचते हैं, पर मुंह नहीं खुलता। वह माधुर्य कहां है, जिस पर ऊषा की लालिमा बलि जाती थी? वह चपलता कहां है, वह सहास छवि कहां है, जो मुखमंडल की बलाएं लेती थी। मालूम होता है, बरसों की रोगिणी है। आह ! मेरे ही कारण इसकी यह दशा हुई है। अगर कुछ दिन और इसी तरह घुली, तो शायद प्राण ही न बचें। किन शब्दों में दिलासा दूं, क्या कहकर समझाऊं?

इसी असमंजस और कण्ठावरोध की दशा में खड़े-खड़े दोनों को दस मिनट हो गए। शायद उन्हें ख्याल ही न रहा कि मुलाकात का समय केवल बीस मिनट है। यहां तक कि उस लेडी को उनकी दशा पर दया आई, घड़ी देखकर बोली—तुम लोग यों ही कब तक खड़े रहोगे? दस मिनट गुजर गए, केवल दस मिनट और बाकी हैं।

चक्रधर मानो समाधि से जाग उठे। बोले—अहिल्या, तुम इतनी दुबली क्यों हो? बीमार हो क्या?

अहिल्या ने सिसकियों को दबाकर कहा—नहीं तो, मैं बिलकुल अच्छी हूं। आप अलबत्ता इतने दुबले हो गए हैं कि पहचाने नहीं जाते।

चक्रधर—खैर, मेरे दुबले होने के तो कारण हैं; लेकिन तुम क्यों ऐसी घुली जा रही हो? कम-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से-कम अपने को इतना तो बनाए रखो कि जब मैं छूटकर आऊं, तो मेरी कुछ मदद कर सको। अपने लिए नहीं, तो मेरे लिए तो तुम्हें अपनी रक्षा करनी ही चाहिए। अगर तुमने इसी भांति घुल-घुलकर प्राण दे दिए, तो शायद जेल से मेरी भी लाश ही निकले। तुम्हें वचन देना पड़ेगा कि तुम अब से अपनी ज्यादा फिक्र रखोगी। मेरी ओर से तुम निश्चिन्त रहो। मुझे यहां कोई तकलीफ नहीं है। बड़ी शांति से दिन कट रहे हैं। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि मेरे आत्म-सुधार के लिए इस तपस्या की बड़ी जरूरत थी। मैंने अंधेरी कोठरी में जो कुछ पाया, वह पहले प्रकाश में रहकर न पाया था। मुझे अगर उसी कोठरी में सारा जीवन बिताना पड़े, तो भी मैं न घबराऊंगा। हमारे साधु-संत अपनी इच्छा से जीवन-पर्यन्त कठिन-से कठिन तपस्या करते हैं। मेरी तपस्या उनसे कहीं सरल और सुसाध्य है। अगर दूसरों ने मुझे इस संयम का अवसर दिया, तो मैं उनसे बुरा क्यों मानूं? मुझे तो उनका उपकार मानमा चाहिए। मुझे वास्तव में इस संयम की बड़ी जरूरत थी, नहीं तो मेरे मन की चंचलता मुझे न जाने कहां ले जाती। प्रकृति सदैव हमारी कमी को पूरा करती रहती है, यह बात अब तक मेरी समझ में न आई थी। अब तक मैं दूसरों का उपकार करने का स्वप्न देखा करता था। अब ज्ञात हुआ कि अपना उपकार ही दूसरों का उपकार है ! जो अपना उपकार नहीं कर सकता, वह दूसरों का उपकार क्या करेगा? मैं तुमसे सत्य कहता हूं, यहां बड़े आराम से हूं और इस परीक्षा में पड़ने से प्रसन्न हूं। बाबूजी तो कुशल से हैं?

अहिल्या—हां, आपको बराबर याद किया करते हैं। मेरे साथ वह भी आए हैं; पर यहां न आने पाए। अम्मां और बाबूजी में कई महीनों से खटपट है। वह कहती हैं, बहुत दिन तो समाज की चिंता में दुबले हुए, अब आराम से घर बैठो, क्या तुम्हीं ने समाज का ठेका ले लिया है? बाबूजी कहते हैं, यह काम तो उसी दिन छोडूंगा, जिस दिन प्राण शरीर को छोड़ देगा। बेचारे बराबर दौड़ते रहते हैं। एक दिन भी आराम से बैठना नसीब नहीं होता। तार से बुलावे आते रहते हैं। फुरसत मिलती है, तो लिखते हैं। न जाने ऐसी क्या हवा बदल गई है कि नित्य कहीं-न-कहीं से उपद्रव की खबर आती रहती है। आजकल स्वास्थ्य भी बिगड़ गया है; पर आराम करने की तो उन्होंने कसम खा ली है। बूढ़े ख्वाजा महमूद से न जाने किस बात पर अनबन हो गई है। आपके चले जाने के बाद कई महीने तक खूब मेल रहा; लेकिन अब फिर वही हाल है।

अहिल्या ने ये बातें महत्त्व की समझकर न कहीं; बल्कि इसलिए कि वह चक्रधर का ध्यान अपनी तरफ से हटा देना चाहती थी। चक्रधर विरक्त होकर बोले—दोनों आदमी फिर धर्मान्धता के चक्कर में पड़ गए होंगे। जब तक हम सच्चे धर्म का अर्थ न समझेंगे, हमारी यही दशा रहेगी। मुश्किल यह है कि जिन महान् पुरुषों से अच्छी धर्मनिष्ठा की आशा की जाती है, वे अपने अशिक्षित भाइयों से भी बढ़कर उद्दंड हो जाते हैं। मैं तो नीति ही को धर्म समझता हूं और सभी सम्प्रदायों की नीति एक-सी है। अगर अन्तर है तो बहुत थोड़ा। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, सभी सत्कर्म और सद्विचार की शिक्षा देते हैं। हमें कृष्ण, राम, ईसा, मुहम्मद, बौद्ध सभी महात्माओं का समान आदर करना चाहिए। ये मानव जाति के निर्माता हैं। जो इनमें से किसी का अनादर करता है या उनकी तुलना करने बैठता है, वह अपनी मूर्खता का परिचय देता है। बुरे हिन्दू से अच्छा मुसलमान उतना ही अच्छा है, जितना बुरे मुसलमान से अच्छा हिन्दू। देखना यह चाहिए कि वह कैसा आदमी है, न कि यह कि किस धर्म का आदमी है, संसार का भावी धर्म, सत्य, न्याय और प्रेम के आधार पर बनेगा। हमें अगर संसार में जीवित रहना है, तो अपने हृदय में इन्हीं भावों का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संचार करना पड़ेगा। मेरे घर का तो कोई समाचार न मिला होगा?

अहिल्या—मिला क्यों नहीं, बाबूजी हाल ही में काशी गये थे। जगदीशपुर के राजा साहब ने आपके पिताजी को पचास रुपये मासिक बांध दिया है, इससे अब उनको धन का कष्ट नहीं है। आपकी माताजी अलबत्ता रोया करती हैं! छोटी रानी साहब की आपके घर वालों पर विशेष कृपा दृष्टि है।

चक्रधर ने विस्मित होकर पूछा—छोटी रानी कौन?

अहिल्या—रानी मनोरमा, जिनसे अभी थोड़े ही दिन हुए, राजा साहब का विवाह हुआ है।

चक्रधर—तो मनोरमा का विवाह राजा साहब से हो गया?

अहिल्या—यही तो बाबूजी कहते थे।

चक्रधर—तुम्हें खूब याद है, भूल तो नहीं रही हो?

अहिल्या—खूब याद है, इतनी जल्दी भूल जाऊंगी!

चक्रधर—यह तो बड़ी दिल्लगी हुई, मनोरमा का विवाह विशालसिंह के साथ! मुझे तो अब भी विश्वास नहीं आता। बाबूजी ने नाम बताने में गलती की होगी।

अहिल्या—बाबूजी को स्वयं आश्चर्य हो रहा था। काशी में भी लोगों को बड़ा आश्चर्य है। मनोरमा ने अपनी खुशी से विवाह किया है, कोई दबाव न था। मनोरमा किसी से दबने वाली है ही नहीं। सुनती हूं, राजा साहब बिलकुल उनकी मुट्ठी में हैं। जो कुछ वह करती है, वही होता है। राजा साहब तो काठ के पुतले बने हुए हैं। बाबूजी चन्दा मांगने गए थे, तो रानीजी ही ने पांच हजार दिए। बहुत प्रसन्न मालूम होती थीं।

सहसा लेडी ने कहा—वक्त पूरा हो गया। वार्डन, इन्हें अन्दर ले जाओ।

चक्रधर क्षण भर भी और न ठहरे। अहिल्या को तृष्णापूर्ण नेत्रों से देखते हुए चले गए। अहिल्या ने सजल नेत्रों से उन्हें प्रणाम किया और उनके जाते ही फूट-फूटकर रोने लगी।

बाईस

फागुन का महीना आया, ढोल-मंजीरे की आवाजें कानों में आने लगीं; कहीं रामायण की मंडलियां बनीं, कहीं फाग और चौताल का बाजार गर्म हुआ। पेड़ों पर कोयल कूकी, घरों में महिलाएं कूकने लगीं। सारा संसार मस्त है; कोई राग में, कोई साग में। मुंशी वज्रधर की संगीत सभा भी सजग हुई। यों तो कभी-कभी बारहों मास बैठक होती थी; पर फागुन आते ही बिना नागा मृदंग पर थाप पड़ने लगी। उदार आदमी थे, फिक्र को कभी पास न आने देते। इस विषय में वह बड़े-बड़े दार्शनिकों से भी दो कदम आगे बढ़े हुए थे। अपने शरीर को वह कभी कष्ट न देते थे। कवि के आदेशानुसार बिगड़ी को बिसार देते थे, हां, आगे की सुधि न लेते थे। लड़का जेल में है,घर में स्त्री रोते-रोते अंधी हुई जाती है, सयानी लड़की घर में बैठी हुई है; लेकिन मुंशीजी को कोई गम नहीं। पहले पच्चीस रुपये में गुजर करते थे, अब पचहत्तर रुपये भी पूरे नहीं पड़ते। जिनसे मिलते हैं हंसकर, सबकी मदद करने को तैयार, मानो उनके मारे अब कोई प्राणी रोगी, दुखी, दरिद्र न रहने पाएगा; मानो वह ईश्वर के दरबार से लोगों के कष्ट दूर करने का ठेका लेकर आये हैं। वादे सबसे करते हैं, किसी ने झुककर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सलाम किया और प्रसन्न हो गए। दोनों हाथों से वरदान बांटते फिरते हैं, चाहे पूरा एक भी न कर सकें। अपने मुहल्ले के कई बेफिक्रों को, जिन्हें कोई टके को भी न पूछता था, रियासत में नौकर करा दिया—किसी को चौकीदार, किसी को मुहर्रिर, किसी को कारिन्दा। मगर नेकी करके दरिया में डालने की उनकी आदत नहीं। जिससे मिलते हैं, अपना ही यश गाना शुरू करते हैं और उसमें मनमानी अतिशयोक्ति भी करते हैं। मशहूर हो गया है कि राजा और रानी दोनों इनकी मुट्ठी में हैं। सारा अख्तियार मदार इन्हीं के हाथ में है।

अब मुंशीजी के द्वार पर सायलों की भीड़ लगी रहती है, जैसे क्वार के महीने में वैद्यों के द्वार पर रोगियों की। मुंशीजी किसी को निराश नहीं करते, और न कुछ कर सकें, तो बातों से ही पेट भर देते हैं। वह लाख बुरे हों, फिर भी उनसे कहीं अच्छे हैं, जो दर पाकर अपने को भूल जाते हैं, जमीन पर पांव ही नहीं रखते। यों तो कामधेनु भी सबकी इच्छा पूरी नहीं कर सकती; पर मुंशीजी की शरण आकर दुःखी हृदय को शांति अवश्य मिलती है, उसे आशा की झलक दिखाई देने लगती है। मुंशीजी कुछ दिनों तक तहसीलदारी कर चुके हैं, अपनी धाक जमाना जानते हैं। जो काम पहुंच से बाहर होता है, उसके लिए भी 'हां-हां' कर देना, आंखें मारना, उड़नघाइयां बताना, इन चालों में वह सिद्ध हैं। स्वार्थ की दुनिया है, वकील, ठीकेदार, बनिये, महाजन, गरज हर तरह के आदमो उनसे कोइ-न-कोई काम निकालने की आशा रखते हैं, और किसी न किसी हीले से कुछ न कुछ दे ही मरते हैं।

मनोरमा का राजा साहब से विवाह होना था कि मुंशीजी का भाग्य-सूर्य चमक उठा। एक ठीकेदार को रियासत के कई मकानों का ठीका दिलाकर अपना मकान पक्का करा लिया, बनिया बोरों अनाज मुफ्त में भेज देता, धोबी कपड़ों की धुलाई नहीं लेता। सारांश यह कि तहसीलदार साहब के 'पौ बारह' हैं। तहसीलदारी में जो मजे न उड़ाए थे, वह अब उड़ा रहे हैं।

रात के आठ बज गए थे। झिनकू अपने समाजियों के साथ आ बैठा। मुंशीजी मसनद पर बैठे पेचवान पी रहे थे। गाना होने लगा।

मुंशीजी—वाह, झिनकू वाह ! क्या कहना ! अब तुम्हें एक दिन दरबार में ले चलूंगा।

झिनकू—जब मर जाऊंगा, तब ले जाइएगा क्या? सौ बार कह चुके, भैया हमारी भी परवरिस कर दो; मगर जब अपनी तकदीर ही खोटी है तो तुम क्या करोगे। नहीं तो क्या गैर-गैर तो तुम्हारी बदौलत मूंछों पर ताव देते और मैं कोरा ही रह जाता। यों तुम्हारी दुआ से सांझ तक रोटियां तो मिल जाती हैं; लेकिन राज दरबार का सहारा हो जाय, तो जिन्दगी का कुछ मंजा मिले।

मुंशीजी—क्या ...ऊं जी, बार-बार इरादा करता हूं लेकिन ज्यों ही वहां पहुंचा, कभी राजा साहब और कभी रानी साहब कोई ऐसी बात छेड़ देते हैं कि मुझे कुछ कहने की याद ही नहीं रहती। मौका ही नहीं मिलता।

झिनकू—कहो, चाहे न कहो, मैं तो अब तुम्हारे दरवाजे से टलने का नहीं।

मुंशीजी—कहूंगा जी और बदकर। यह समझ लो कि तुम वहां हो गए। बस, मौका मिलने भर की देर है। रानी साहब इतना मानती हैं कि जिसे चाहूं, निकलवा दूं, जिसे चाहूं, रखवा दूं। दीवान साहब भी अब दूर ही से सलाम करते हैं। फिर मुझे अपने काम से काम है, किसी की शिकायत क्यों करूं? मेरे लिए कोई रोकटोक नहीं है, मगर दीवान साहब बाप हैं तो क्या, बिला इत्तला कराए सामने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नहीं जा सकते।

झिनकू—रानीजी का क्या पूछना, सचमुच रानी हैं। आज शहर भर में वाह-वाह हो रही है। बुढ़िया के राज में हकीम डॉक्टर लूटते हैं, अब गुनियों की कदर है।

मुंशीजी—पहुंचा नहां कि सौ काम छोड़कर दौड़ी हुई आकर खड़ी हो जाती हैं। क्या है लालाजी, क्या है लालाजी? जब तक रहता हूं, दिमाग चाट जाती हैं, दूसरों से बात नहीं करतीं। लल्लू को बहुत याद करती हैं। खोद-खोदकर उन्हीं की बातें पूछती हैं। सब्र करो, होली के दिन तुम्हारी नजर दिला दूंगा; मगर भाई, इतना याद रखो कि यहां पक्का गाना गाया और निकाले गए। 'तूम तनाना' की धुन मत देना।

इतने में महादेव नाम का एक बजाज सामने आया और दूर ही से सलाम करके बोला—मुंशीजी, हुजूर के मिजाज अच्छे तो हैं?

मुंशीजी ने त्यौरियां बदलकर कहा—हुजूर के मिजाज की फिक्र न करो, अपना मतलब कहो।

महादेव—हुजूर को सलाम करने आया था।

मुंशीजी—अच्छा, सलाम।

महादेव—आप हमसे कुछ नाराज मालूम होते हैं। हमसे तो कोई ऐसी बात....

मुंशीजी—बड़े आदमियों से मिलने जाया करो, तो तमीज से बात किया करो। मैं तुम्हें 'सेठ जी' कहने के बदले 'अरे, ओ बनिये' कहूं, तो तुम्हें बुरा लगेगा या नहीं?

महादेव—हां, हुजूर इतनी खता तो हो गई, अब माफी दी जाय। नया माल आया है, हुक्म हो तो कुछ कपड़े भेजूं।

मुंशीजी—फिर वही बनियेपन की बातें! कभी आज तक और भी आए थे पूछने कि कपड़े चाहिए, हुजूर को? मैं वही हूं या कोई और? अपना मतलब कहो साफ-साफ।

महादेव—हुजूर तो समझते ही हैं, मैं क्या कहूं?

मुंशीजी—अच्छा, तो सुनो लालाजी, घूस नहीं लेता, रिश्वत नहीं लेता। जब तहसीलदारी के जमाने ही में न लिया, तो अब क्या लूंगा? लड़की की शादी होने वाली है, उसमें जितना कपड़ा लगेगा, वह तुम्हारे सिर। बोलो, मंजूर हो तो आज ही नजर दिलवा दूं। साल भर में एक लाख का माल बेचोगे, जो बेचने का शऊर होगा। हां, बुढ़िया रानी का जमाना नहीं है कि एक के चार लो। बस, रुपये में एक आना बहुत है। इससे ज्यादा लिया और गर्दन नापी गई।

महादेव—हुजूर, खर्चा छोड़कर दो पैसे रुपये ही दिला दें। आपके वसीले से जाकर भला ऐसा दगा करूं।

मुंशीजी—अच्छा, तो कल आना, और दो-चार थान ऊंचे दामों के कपड़े भी लेते आना। याद रखना, विदेशी चीज न हो, नहीं तो फटकार पड़ेगी। सच्चा देशी माल हो। विदेशी चीजों के नाम से चिढ़ती हैं।

बजाज चला गया। मुंशीजी झिनकू से बोले—देखा, बात करने की तमीज नहीं और चले हैं सौदा बेचने।

झिनकू—भैया, भिड़ा देना बेचारे को। जो उसकी तकदीर में होगा, वह मिल ही जाएगा। सेंतमेंत में जस मिले, तो लेने में क्या हर्ज है?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुंशीजी—अच्छा, जरा ठेका संभालो, कुछ भगवान् का भजन हो जाय। यह बनिया न जाने कहां से कूद पड़ा।

यह कहकर मुंशीजी ने मीरा का यह पद गाना शुरू किया—

राम की दिवानी, मेरा दर्द न जाने कोइ।
घायल की गति घायल जानै, जो कोई घायल होइ;
शेषनाग पै सेज पिया की, केहि विधि मिलनो होइ।
राम की दिवानी........
दरद की मारी बन-बन डोलूं, बैद मिला नहिं कोइ;
'मीरा' की प्रभु पीर मिटेगी, बैद संवलिया होइ।
राम की दिवानी........

झिनकू—वाह भैया, वाह! चोला मस्त कर दिया। तुम्हारा गला तो दिन-दिन निखरता जाता है।

मुंशीजी—गाना ऐसा होना चाहिए कि दिल पर असर पड़े। यह नहीं कि तुम तो 'तूम ताना' का तार बांध दो और सुनने वाले तुम्हारा मुंह ताकते रहें। जिस गाने से मन में भक्ति, वैराग्य, प्रेम और आनन्द की तरंगें न उठें, वह गाना नहीं है।

झिनकू—अच्छा, अब की मैं भी कोई ऐसी ही चीज सुनाता हूं; मगर मजा जब है कि हारमोनियम तुम्हारे हाथ में हो।

मुंशीजी सितार, सारंगी, सरोद, इसराज सब कुछ बजा लेते थे, पर हारमोनियम पर तो कमाल ही करते थे। हारमोनियम में सितार की गतों को बजाना उन्हीं का काम था। बाजा लेकर बैठ गए और झिनकू ने मधुर स्वरों से यह असावरी गानी शुरू की।

बसी जिय में तिरछी मुसकान।
कल न परंत घड़ि, पल, छिन, निसि दिन रहत उन्हीं का ध्यान,
भृकुटि धनु-सी देख सखी री, नयना बान समान।

झिनकू संगीत का आचार्य था, जाति का कथक, अच्छे-अच्छे उस्तादों की आंखें देखे हुए, आवाज इस बुढ़ापे में भी ऐसी रसीली कि दिल पर चोट करे, इस पर उनका भाव बताना, जो कथकों की खास सिफत है, और भी गजब ढाता था; लेकिन मुंशी वज्रधर की अब राज-दरबार में रसाई हो गई थी, उन्हें अब झिनकू को शिक्षा देने का अधिकार हो गया था। हारमोनियम बजाते-बजाते नाक सिकोड़कर बोले—ऊंह, क्या बिगाड़ देते हो, बेताल हुए जाते हो। हां, अब ठीक है।

यह कहकर आपने झिनकू के साथ स्वर मिलाकर गाया—

बसी जिय में तिरछी मुसकान।
कल न परत घड़ि, पल, छिन, निसि दिन रहत उन्हीं का ध्यान;
भृकुटि धनु-सी देख सखी री, नयना बान समान।

इतने में एक युवक कोट-पतलून पहने, ऐनक लगाए, मूंछ मुड़ाए, बाल संवारे आकर बैठ गया। मुंशीजी ने पूछा—तुम कौन हो, भाई? मुझसे कुछ काम है?

युवक—मैंने सुना है कि जगदीशपुर में किसी एकाउन्टेंट की जगह खाली है, आप सिफारिश कर दें तो शायद वह जगह मुझे मिल जाय। मैं भी कायस्थ हूं, और बिरादरी के नाते आपके ऊपर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मेरा बहुत बड़ा हक है। मेरे पिताजी कुछ दिनों आपकी मातहती में काम कर चुके हैं। आपको मुंशी सुखवासीलाल का नाम तो याद होगा।

मुंशीजी—तो आप बिरादरी और दोस्ती के नाते नौकरी चाहते हैं, अपनी लियाकत के नाते नहीं ! यह मेरे अख्तियार के बाहर है। मैं न दीवान हूं, न मुहाफिज, न मुंसरिम। उन लोगों के पास जाइए।

युवक—जनाब, आप सब कुछ हैं। मैं तो आपको अपना मुरब्बी समझता हूं।

मुंशी—कहां तक पढ़ा है आपने?

युवक—पढ़ा तो बी॰ ए॰ तक है; पर पास न कर सका।

मुंशी—कोई हरज नहीं। आपको बाजार के सौदे पटाने का कुछ तजरबा है? अगर आपसे कहा जाय कि जाकर दस हजार की इमारती लकड़ी लाइए, तो आप किफायत से लाएंगे।

युवक—जी, मैंने तो कभी लकड़ी खरीदी नहीं।

मुंशी—न सही, आप कुश्ती लड़ना जानते हैं? कुछ बिनवट-पटे के हाथ सीखे हैं? कौन जाने, कभी आपको राजा साहब के साथ सफर करना पड़े और कोई ऐसा मौका आ जाय कि आपको उनकी रक्षा करनी पड़े !

युवक—कुश्ती लड़ना तो नहीं जानता, हां फुटबाल, हॉकी बगैरह खूब खेल सकता हूं।

मुंशी—कुछ गाना-बजाना जानते हो? शायद राजा साहब को सफर में कुछ गाना सुनने का जी चाहे, तो उन्हें खुश कर सकोगे?

युवक—जी नहीं, मैं मुसाहब नहीं होना चाहता, मैं तो एकाउटेंट की जगह चाहता हूं।

मुंशी—यह तो आप पहले ही कह चुके। मैं यह जानना चाहता हूं कि आप हिसाब-किताब के सिवा और क्या कर सकते हैं? आप तैरना जानते हैं?

युवक—तैर सकता हूं, पर बहुत कम।

मुंशी—आप रईसों के दिलबहलाव के लिए किस्से-कहानियां, चुटकुले-लतीफे कह सकते हैं?

युवक—(हंसकर) आप तो मेरे साथ मजाक कर रहे हैं।

मुंशी—जी नहीं, मजाक नहीं कर रहा हूं, आपकी लियाकत का इम्तहान ले रहा हूं। तो आप सिर्फ हिसाब करना जानते हैं और शायद अंग्रेजी बोल और लिख लेते होंगे। मैं ऐसे आदमी की सिफारिश नहीं करता। आपकी उम्र होगी कोई चौबीस साल की। इतने दिनों में आपने सिर्फ हिसाब लगाना सीखा। हमारे यहां तो कितने ही आदमी छः महीने में ऐसे अच्छे मुनीम हो गए हैं कि बड़ी-बड़ी दुकानें संभाल सकते हैं। आपके लिए यहां जगह नहीं है।

युवक चला गया, तो झिनकू ने कहा—भैया, तुमने बेचारे को बहुत बनाया। मारे शरम के कट गया होगा। कुछ उसके साहबी ठाट की परवाह न की।

मुंशी—उसका साहबी ठाट देखकर ही तो मेरे बदन में आग लग गई। आता तो आपको कुछ नहीं; पर ठाट ऐसा बनाया है, मानो खास विलायत से चले आ रहे हैं। मुझ पर बचा रोब जमाने चले थे। चार हरफ अंग्रेजी पढ़ ली, तो समझ गए कि अब हम फाजिल हो गए। पूछो, जब आप बाजार से धेले का सौदा नहीं ला सकते, तो आप हिसाब-किताब क्या करेंगे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यही बातें हो रही थीं कि रानी मनोरमा की मोटर आकर द्वार पर खड़ी हो गई। मुंशीजी नंगे सिर, नंगे पांव दौड़े। जरा भी ठोकर खा जाते, तो फिर उठने का नाम न लेते।

मनोरमा ने हाथ उठाकर कहा—दौड़िए नहीं, मैं आप ही के पास आई हूं, कहीं भागी नहीं जा रही हूं। इस वक्त क्या हो रहा है?

मुंशी—कुछ नहीं हुज़ूर, कुछ ईश्वर का भजन कर रहा हूं।

मनोरमा—बहुत अच्छी बात है, ईश्वर को जरूर मिलाए रहिए, वक्त पर बहुत काम आते हैं; कम से कम दुःख-दर्द में उनके नाम से कुछ सहारा तो हो ही जाता है। मैं आपको इस वक्त एक बड़ी खुशखबरी सुनाने आई हूं। बाबूजी कल यहां आ जाएंगे।

मुंशी—क्या, लल्लू?

मनोरमा—जी हां, सरकार ने उनकी मीयाद घटा दी है।

इतना सुनना था कि मुंशीजी बेतहाशा दौड़े और घर में जाकर हांफते हुए निर्मला से बोले—सुनती हो, लल्लू कल आएंगे। मनोरमा रानी दरवाजे पर खड़ी हैं।

यह कहकर उल्टे पांव फिर द्वार पर आ पहुंचे।

मनोरमा—अम्मांजी क्या कर रही हैं, उनसे मिलने चलूं?

निर्मला बैठी आटा गूंथ रही थीं। रसोई में केवल एक मिट्टी के तेल की कुप्पी जल रही थी, बाकी सारा घर अंधेरा पड़ा था। मुंशीजी सदा लुटाऊ थे, जो कुछ पाते थे, बाहर ही बाहर उड़ा देते थे। घर की दशा ज्यों-की-त्यों थी। निर्मला को रोने-धोने से फुर्सत ही न मिलती थी कि घर की कुछ फिक्र करती। अब मुंशीजी बड़े असमंजस में पड़े। अगर पहले से मालूम होता कि रानीजी का शुभागमन होगा, तो कुछ तैयारी कर रखते। कम-से-कम घर की सफाई तो करवा देते, दो-चार लालटेनें मांग-जांचकर जला रखते; पर अब क्या हो सकता था?

मनोरमा ने उनके जवाब का इंतजार न किया। तुरंत मोटर से उतर पड़ी और दीवानखाने में आकर खड़ी हो गई। मुंशीजी बदहवास अंदर गए और निर्मला से बोले—बाहर निकल आओ, हाथ-वाथ धो डालो। रानीजी आ रही हैं। यह दुर्दशा देखेंगी, तो क्या कहेंगी। तब तक आटा लेकर क्या बैठ गई! कोई काम वक्त से नहीं करतीं। बुढ़िया हो गईं; मगर अभी तमीज न आई।

निर्मला चटपट बाहर निकली। मुंशीजी उसके हाथ धुलाने लगे। मंगला चारपाई बिछाने लगी। मनोरमा बरोठे में आकर रुक गई। इतना अंधेरा था कि वह आगे कदम न रख सकी। मरदाने कमरे में एक दीवारगीर जल रही थी। झिनकू उतावली में उसे उतारने लगे, तो वह जमीन पर गिर पड़ी। यहां भी अंधेरा हो गया। मुंशीजी हाथ में कुप्पी लेकर द्वार की ओर चले, तो चारपाई की ठोकर लगी। कुप्पी हाथ से छूट पड़ी; आशा का दीपक भी बुझ गया। खड़े-खड़े तकदीर को कोसने लगे—रोज-रोज लालटेन आती है और रोज तोड़कर फेंक दी जाती है। कुछ नहीं तो दस लालटेनें ला चुका हूंगा, पर एक का भी पता नहीं मालूम होता है। किसी कुली का घर है, उसके भाग्य की भांति अंधेरा। 'राक्षस के घर ब्याही जोय, भून-भान कलेवा होय।' किसी चीज की हिफाजत करनी तो आती ही नहीं।

मुंशीजी तो अपनी मुसीबत का रोना रो रहे थे, झिनकू दौड़कर अपने घर से लालटेन लाया, और मनोरमा घर में दाखिल हुई! निर्मला आंखों में प्रेम की नदी भरे, सिर झुकाए खड़ी थी। जी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चाहता था, इनके पैरों के नीचे आंखें बिछा दूं। मेरे धन्य भाग !

एकाएक मनोरमा ने झुककर निर्मला के पैरों पर शीश झुका दिया और पुलकित कंठ से बोली--माताजी, धन्य भाग कि आपके दर्शन हुए। जीवन सफल हो गया। निर्मला सारा शिष्याचार भूल गई, बस, खड़ी रोती रही। मनोरमा के शील और विनय ने शिष्टाचार को तृण की भांति मातृ-स्नेह की तरंग में बहा दिया।

इतने में मंगला आकर खड़ी हो गई। मनोरमा ने उसे गले से लगा लिया और स्नेह-कोमल स्वर में बोली—आज तुम्हें अपने साथ ले चलूंगी, दो-चार दिन तुम्हें मेरे साथ रहना पड़ेगा। हम दोनों साथ-साथ खेलेंगी। अकेले पड़े-पड़े मेरा जी घबराता है। तुमसे मिलने की मेरी बड़ी इच्छा थी।

निर्मला—मनोरमा, तुमने हमें धरती से उठाकर आकाश पर पहुंचा दिया। तुम्हारे शील-स्वभाव का कहां तक बखान करूं !

मनोरभा—माता के मुख से ये शब्द सुनकर मेरा हृदय गर्व से फूला नहीं समाता। मैं बचपन ही से मातृ-स्नेह से वंचित हो गई, पर आज मुझे ऐसा ज्ञात हो रहा है कि अपनी जननी के चरणों को स्पर्श कर रही हूं। मुझे आज्ञा दीजिए कि जब कभी जी घबराए तो आकर आपके स्नेह-कोमल चरणों में आश्रय लिया करूं। कल बाबूजी आ जाएंगे। अवकाश मिला तो मैं भी आऊंगी, पर मैं किसी कारण से न आ सकूं, तो आप कह दीजिएगा कि किसी बात की चिन्ता न करें, मेरे हृदय में उनके प्रति अब भी वही श्रद्धा और अनुराग है। ईश्वर ने चाहा तो मैं शीघ्र ही उनके लिए रियासत में कोई स्थान निकालूंगी। बड़ी दिल्लगी हुई। कई दिन हुए लखनऊ के एक ताल्लुकेदार ने गवर्नर की दावत की थी। मैं भी राजा साहब के साथ दावत में गई थी। गवर्नर साहब शतरंज खेल रहे थे। मुझसे भी खेलने के लिए आग्रह किया। मुझे शतरंज खेलना तो आता नहीं, पर उनके आग्रह से बैठ गई। ऐसा संयोग हुआ कि मैंने ताबड़तोड़ उनको दो मातें दीं। तब आप झल्लाकर बोले—अबकी कुछ बाजी लगाकर खेलेंगे। क्या बदती हो? मैंने कहा—इसका निश्चय बाजी पूरी होने के बाद होगा। तीसरी बाजी शुरू हुई। अबकी वह खूब संभलकर खेल रहे थे और मेरे कई मुहरे पीट लिये। मैंने समझा, अबकी मात हुई, लेकिन सहसा मुझे ऐसी चाल सूझ गई कि हाथ से जाती बाजी लौट पड़ी। मैं तो समझती हूं, ईश्वर ने मेरी सहायता की। फिर तो उन्होंने लाख-लाख सिर पटका, उनके सारे मित्र जोर मारते रहे, पर मात न रोक सके। सारे मुहरे धरे ही रह गए। मैंने हंसकर कहा—बाजी मेरी हुई, अब जो कुछ मैं मांगू, वह आपको देना पड़ेगा।

उन्हें क्या खबर थी कि मैं क्या मांगूंगी, हंसकर बोले—हां-हां, कब फिरता हूं !

मैंने तीन वचन लेकर कहा—आप मेरे मास्टर साहब को बेकुसूर जेल में डाले हुए हैं, उन्हें छोड़ दीजिए।

यह सुनकर सभी सन्नाटे में आ गए, मगर कौल हार चुके थे और स्त्रियों के सामने ये सब जरा सज्जनता का स्वांग भरते हैं, मजबूर होकर गवर्नर साहब को वादा करना पड़ा, पर बार-बार पछताते थे और कहते थे, आपकी जिम्मेदारी पर छोड़ रहा हूं। खैर, मुझे कल मालूम हुआ कि रिहाई का हुक्म हो गया है, और मुझे आशा है कि कल किसी वक्त वह यहां आ जाएंगे।

निर्मला—आपने बड़ी दया की, नहीं तो मैं रोते-रोते मर जाती।

मनोरमा—रोने की क्या बात थी? माताओं को चाहिए कि अपने पुत्रों को साहसी और वीर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बनाएं। एक तो यहां लोग यों ही डरपोक होते हैं, उस पर घर वालों का प्रेम उनकी रही-सही हिम्मत भी हर लेता है। तो क्यों बहिन, मेरे यहां चलती हो ! मगर नहीं, कल तो बाबूजी आएंगे, मैं किसी दूसरे दिन तुम्हारे लिए सवारी भेजूंगी।

निर्मला—जब आपकी इच्छा होगी। तभी भेज दूंगी।

मनोरमा—तुम क्यों नहीं बोलतीं, बहिन? समझती होगी कि यह रानी हैं, बड़ी बुद्धिमान और तेजस्वी होंगी। पहले रानी देवप्रिया को देखकर मैं भी यही सोचा करती थी, पर अब मालूम हुआ कि ऐश्वर्य से न बुद्धि बढ़ती है, न तेज। रानी और बांदी में कोई अंतर नहीं होता।

यह कहकर उसने मंगला के गले में बांहे डाल दीं और प्रेम से सने हुए शब्दों में बोली—देख लेना; हम-तुम कैसे मजे से गाती-बजाती हैं। बोलो, आओगी न?

मंगला ने माता की ओर देखा और इशारा पाकर बोली—जब आपकी इतनी कृपा है, तो क्यों न आऊंगी?

मनोरमा—कृपा और दया की बात करने के लिए मैं तुम्हें नहीं बुला रही हूं। ऐसी बातें सुनते-सुनते ऊब गई हूं। सहेलियों की भाँति गाने-बजाने, हंसने-बोलने के लिए बुलाती हूं। वहां सारा घर आदमियों से भरा हुआ है, पर एक भी ऐसा नहीं, जिसके साथ बैठकर एक घड़ी हंसूं-बोलूं।

यह कहते-कहते उसने अपने गले से मोतियों का हार निकालकर मंगला के गले में डाल दिया और मुस्कराकर बोली—देखो अम्मांजी, यह हार इसे अच्छा लगता है न?

मुंशीजी बोले—ले, मंगला, तूने तो पहली ही मुलाकात में मोतियों का हार मार लिया, और लोग मुंह ही ताकते रह गए।

मनोरमा—माता-पिता लड़कियों को देते हैं, मुझे तो आपसे मिलना चाहिए। मंगला तो मेरी छोटी बहिन है। जी चाहता है, इसी वक्त लेती चलूं। इसकी सूरत तो बाबूजी से बिलकुल मिलती है, मरदों के कपड़े पहना दिए जाएं तो, तो पहचानना मुश्किल हो जाये। चलो मंगला, कल हम दोनों आ जाएंगी !

निर्मला—कल ही लेती जाइएगा।

मनोरमा—मैं समझ गई। आप सोचती होंगी, ये कपड़े पहने क्या जाएगी। तो क्या वहां किसी बेगाने घर जा रही है? क्या वहां साड़ियां न मिलेंगी?

उसने मंगला का हाथ पकड़ लिया और उसे लिये द्वार की ओर चली। मंगला हिचकिचा रही थी, पर कुछ कह न सकती थी।

जब मोटर चली गई तो निर्मला ने कहा—साक्षात् देवी है।

मुंशी—लल्लू पर इतना प्रेम करती है कि वह चाहता, तो इससे विवाह कर लेता। धर्म ही खोना था तो कुछ स्वार्थ से खोता। मीठा हो, तो जूठा भी अच्छा, नहीं तो कहां जाकर गिरा उस कंगली पर जिसके मां-बाप का भी पता नहीं।

निर्मला—(व्यंग्य से) वाह-वाह ! क्या लाख रुपये की बात कही है। ऐसी बहू घर में आ जाए, लाला, तो एक दिन न चले। फूल सूंघने में ही अच्छा लगता है, खाने में नहीं ! गरीबों का निर्वाह गरीबों ही में होता है।

मुंशी—प्रेम बड़ों-बड़ों का सिर नीचा कर देता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निर्मला—न जी जलाओ। बे-बात की बात करते हो। तुम्हारे लल्लू ऐसे ही तो बड़े खूबसूरत हैं। सिर में एक बाल न रहता। ऐसी औरतों को प्रसन्न रखने के लिए धन चाहिए। प्रभुता पर मरने वाली औरत है।

दस बज रहे थे। मुंशीजी भोजन करने बैठे। मारे ख़ुशी के फूले न समाते थे। लल्लू को रियासत में कोई अच्छी जगह मिल जाएगी, फिर पांचों अंगुली घी में हैं। अब मुसीबत के दिन गए। मारे खुशी के खाया भी नहीं गया। जल्दी से दो-चार कौर खाकर बाहर भागे और अपने इष्ट-मित्रों से चक्रधर के स्वागत के विषय में आधी रात तक बातें करते रहे। निश्चय किया गया कि प्रातःकाल शहर में नोटिस बांटी जाए और सेवा समिति के सेवक स्टेशन पर बैंड बजाते हुए उनका स्वागत करें।

लेकिन निर्मला उदास थी। मनोरमा से उसे न जाने क्यों एक प्रकार का भय हो रहा था।

तेईस

राजा विशालसिंह की मनोवृत्तियां अब एक ही लक्ष्य पर केंद्रित हो गई थीं और वह लक्ष्य था—मनोरमा। वह उपासक थे, मनोरमा उपास्य थी। वह सैनिक थे, मनोरमा सेनापति थी, वह गेंद थे, मनोरमा खिलाड़ी थी। मनोरमा का उनके मन पर, उनकी आत्मा पर सम्पूर्ण आधिपत्य था। वह अब मनोरमा ही की आंखों से देखते, मनोरमा ही के कानों से सुनते और मनोरमा ही के विचार से सोचते थे। उनका प्रेम संपूर्ण आत्म-समर्पण था। मनोरमा ही की इच्छा अब उनकी इच्छा है, मनोरमा ही के विचार अब उनके विचार हैं ! उनके राज्य विस्तार के मंसूबे गायब हो गए। धन से उनको कितना प्रेम था ! वह इतनी किफायत से राज्य का प्रबन्ध करना चाहते थे कि थोड़े दिनों में रियासत के पास एक विराट कोष हो जाय। अब वह हौसला नहीं रहा। मनोरमा के हाथों जो कुछ खर्च होता है, वह श्रेय है। अनुराग चित्त की वृत्तियों की कितनी कायापलट कर सकता है।

अब तक राजा विशालसिंह का जिन स्त्रियों से साबिका पड़ा था, वे ईर्ष्या, द्वेष, माया-मोह और राग-रंग में लिप्त थीं। मनोरमा उन सबों से भिन्न थी। उसमें सांसारिकता का लेश भी न था। न उसे वस्त्राभूषण से प्रेम, न किसी से ईर्ष्या या द्वेष। ऐसा प्रतीत होता था कि वह स्वर्ग लोक की देवी है। परोपकार में उसका ऐसा सच्चा अनुराग था कि पग-पग पर राजा साहब को अपनी लघुता और क्षुद्रता का अनुभव होता था और उस पर उनकी श्रद्धा और भी दृढ़ होती जाती थी। रियासत के मामलों या निज के व्यवहारों में जब वह कोई ऐसी बात कर बैठते, जिसमें स्वार्थ और अधिकार के दुरुपयोग या अनम्रता की गन्ध आती हो, तो उन्हें यह जानने में देर न लगती थी कि मनोरमा की भृकुटी चढ़ी हुई है और उसने भोजन नहीं किया। फिर उन्हें उस बात के दुहराने का साहस न होता था। मनोरमा की निर्मल कीर्ति अज्ञात रूप से उन्हें परलोक की ओर खींचे लिए जाती थी। उसके समीप आते ही उनकी वासना लुप्त और धार्मिक कल्पना सजग हो जाती थी। उसकी बुद्धि-प्रतिभा पर उन्हें इतना अटल विश्वास हो जाता था कि वह जो कुछ करती थी, उन्हें सर्वोचित और श्रेयस्कर जान पड़ता था। वह अगर उनके देखते हुए घर में आग लगा देती, तो भी वह उसे निर्दोष ही समझते। उसमें भी उन्हें शुभ और कल्याण ही की सुवर्ण रेखा दिखाई देती। रियासत में असामियों से कर के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नाम पर न जाने कितनी बेगार ली जाती थी, वह सब रानी के हुक्म से बंद कर दी गई और रियासत को लाखों रुपये की क्षति हुई, पर राजा साहब ने जरा भी हस्तक्षेप नहीं किया। पहले जिले के हुक्काम रियासत में तशरीफ लाते, तो रियासत में खलबली मच जाती थी, कर्मचारी सारे काम छोड़कर हुक्काम को रसद पहुंचाने में मुस्तैद हो जाते थे। हाकिम की निगाह तिरछी देखकर राजा कांप जाते थे। पर अब किसी को चाहे वह सूबे का लाट ही क्यों हो, नियमों के विरुद्ध एक कदम रखने की भी हिम्मत न पड़ती थी। जितनी धांधलियां राज्य-प्रथा के नाम पर सदैव से होती आती थीं, वह एक-एक करके उठती जाती थीं, पर राजा साहब को कोई शंका न थी।

राजा साहब की चिर संचित पुत्र लालसा भी इस प्रेम-तरंग में मग्न हो गई। मनोरमा पर उन्होंने अपनी यह महान् अभिलाषा भी अर्पित कर दी। मनोरमा को पाकर उन्हें किसी वस्तु की इच्छा ही न रही। उसके सामने और सभी चीजें तुच्छ हो गईं। एक दिन, केवल एक दिन उन्होंने मनोरमा से कहा था—मुझे अब केवल एक इच्छा और है। ईश्वर मुझे एक पुत्र प्रदान कर देता, तो मेरे सारे मनोरथ पूरे हो जाते। मनोरमा ने उस समय जिन कोमल शब्दों में उन्हें सांत्वना दी थी, वे अब तक कानों में गूंज रहे थे--नाथ, मनुष्य का उद्धार पुत्र से नहीं, अपने कर्मों से होता है। यश और कीर्ति भी कर्मों ही से प्राप्त होती है। सन्तान वह सबसे कठिन परीक्षा है, जो ईश्वर ने मनुष्यों को परखने के लिए गढ़ी है। बड़ी-बड़ी आत्माएं जो और सभी परीक्षाओं में सफल हो जाती हैं, यहां ठोकर खाकर गिर पड़ती हैं। सुख के मार्ग में इससे बड़ी और कोई बाधा नहीं है। जब इच्छा दु:ख का मूल है, तो सबसे बड़े दु:ख का मूल क्यों न होगी? ये वचन मनोरमा के मुख से निकलकर अमर हो गए थे।

सबसे विचित्र बात यह थी कि राजा साहब की विषय-वासना सम्पूर्णत: लोप हो गई थी। एकान्त में बैठे हुए वह मन में भांति-भांति की मृदु कल्पनाएं किया करते, लेकिन मनोरमा के सम्मुख आते ही उन पर श्रद्धा का अनुराग छा जाता, मानो किसी देव मंदिर में आ गए हों। मनोरमा उनका सम्मान करती, उन्हें देखते ही खिल जाती, उनसे मीठी-मीठी बातें करती, उन्हें अपने हाथों से स्वादिष्ट पदार्थ बनाकर खिलाती, उन्हें पंखा झलती। उनकी तृप्ति के लिए वह इतना ही काफी समझती थी। कविता में और सब रस थे, केवल श्रृंगार रस न था। वह बांकी चितवन, जो मन को हर लेती है, वह हाव-भाव, जो चित्त को उद्दीप्त कर देता है, यहां कहां? सागर के स्वच्छ निर्मल जल में तारे नाचते हैं, चांद थिरकता है, लहरें गाती हैं। वहां देवता संध्योपासना करते हैं, देवियां स्नान करती हैं, पर कोई मैले कपड़े नहीं धोता। संगमरमर की जमीन पर थूकने की कुरुचि किसमें होगी ! आत्मा को स्वयं ऐसे घृणास्पद व्यवहार से संकोच होता है।

इसी भांति छ: महीने गुजर गए।

प्रभात का समय था। प्रकृति फागुन के शीतल,उल्लासमय समीर सागर में निमग्न हो रही थी। बाग में नव विकसित पुष्प, किरणों के सुनहरे हार पहने मुस्करा रहे थे। आम के सुगंधित नव पल्लवों में कोयल अपनी मधुर तान अलाप रही थी। और मनोरमा आईने के सामने खड़ी अपनी केश-राशि का जाल सजा रही थी। आज बहुत दिनों के बाद उसने अपने दिव्य, रत्नजटित आभूषण निकाले हैं, बहुत दिन के बाद अपने वस्त्रों में इत्र बसाए हैं! आज उसका एक-एक अंग मनोल्लास से खिला हुआ है। आज चक्रधर जेल से छूटकर आएंगे और वह उनका स्वागत करने जा रही है।

यों बन-ठनकर मनोरमा ने बगलवाले कमरे का परदा उठाया और दबे पांव अंदर गई।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मंगला अभी तक पलंग पर पड़ी मीठी-मीठी नींद ले रही थी। उसके लम्बे-लम्बे केश तकिए पर बिखरे पड़े थे। दोनों सखियां आधी रात तक बातें करती रही थीं। जब मंगला ऊंघ-ऊंघकर गिरने लगी थी, तो मनोरमा उसे सुलाकर अपने कमरे में चली गई थी। मंगला अभी तक पड़ी सो रही थी, मनोरमा की पलकें तक न झपकीं, अपने कल्पना-कुंज में विचरते हुए रात काट दी। मंगला को इतनी देर तक सोते देखकर उसने आहिस्ता से पुकारा--मंगला, कब तक सोएगी? देख तो, कितना दिन चढ़ आया? जब पुकारने से मंगला न जागी, तो उसका कन्धा हिलाकर कहा--क्या दिनभर सोती रहेगी?

मंगला ने पड़े-पड़े कहा--सोने दो, अभी तो सोयी हूं, फिर सिर पर सवार हो गईं?

मनोरमा--तो फिर मैं जाती हूं; यह न कहना, मुझे क्यों नहीं जगाया!

मंगला--(आंखें खोलकर) अरे! इतना दिन चढ़ आया--मुझे पहले ही क्यों न जगा दिया?

मनोरमा--जगा तो रही हूं, जब तेरी नींद टूटे तब न। स्टेशन चलेगी?

मंगला--मैं स्टेशन कैसे जाऊंगी?

मनोरमा--जैसे मैं जाऊंगी, वैसे ही तू भी चलना। चल, कपड़े पहन ले!

मंगला--न भैया, मैं न जाऊंगी। लोग क्या कहेंगे?

मनोरमा--मुझे जो कहेंगे, वही तुझे भी कहेंगे; मेरी खातिर से सुन लेना!

मंगला--आपकी बात और है, मेरी बात और। आपको कोई नहीं हंसता, मुझे सब हंसेंगे। मगर मैं डरती हूं, कहीं तुम्हें नजर न लग जाए।

मनोरमा--चल-चल उठ, बहुत बातें मत बना। मैं तुझे खींचकर ले जाऊंगी, मोटर में परदा कर दूंगी, अब राजी हुई?

मंगला--हां, यह तो अच्छा उपाय है, लेकिन मैं नहीं जाऊंगी। अम्मांजी सुनेंगी तो बहुत नाराज होंगी।

मनोरमा--और जो उन्हें भी ले चलूं, तब तो तुझे कोई आपत्ति न होगी?

मंगला--वह चलें तो मैं भी चलूं; लेकिन नहीं, वह बड़ी-बूढ़ी हैं, जहां चाहें वहां जा-आ सकती हैं। मैं तो लोगों को अपनी ओर घूरते देखकर कट ही जाऊंगी।

मनोरमा--अच्छा, पड़ी-पड़ी सो, मैं जाती हूं। अभी बहुत-सी तैयारियां करनी हैं।

मनोरमा अपने कमरे में आई और मेज पर बैठकर बड़ी उतावली में कुछ लिखने लगी कि दीवान साहब के आने की इत्तला हुई और एक क्षण में आकर वह एक कुर्सी पर बैठ गए। मनोरमा ने पूछा--रियासत का बैण्ड तैयार है न?

हरिसेवक--हां, उसे पहले ही हुक्म दिया जा चुका है।

मनोरमा--जुलूस का प्रबन्ध ठीक है न? मैं डरती हूं, कहीं भद्द न हो जाय।

हरिसेवक-- प्रबन्ध तो मैंने सब कर दिया है, पर इस विषय में रियासत की ओर से जो उत्साह प्रकट हो रहा है, वह शायद इसके लिए हानिकर हो। रियासतों पर हुक्काम की कितनी बड़ी निगाह होती है, यह आपको खूब मालूम है। मैं पहले भी कह चुका हूं और अब भी कहता हूं कि आपको इस मामले में खूब सोच-विचार कर काम करना चाहिए।

मनोरमा--क्या आप समझते हैं कि मैं बिना सोचे-विचारे ही कोई काम कर बैठती हूं? मैंने सोच लिया है, बाबू चक्रधर चोर नहीं, डाकू नहीं, खूनी नहीं, एक सच्चे आदमी हैं। उनका स्वागत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करने के लिए हुक्काम हमसे बुरा मानते हैं, तो मानें। हमें इसकी कोई परवा नहीं। जाकर सम्पूर्ण दल को तैयार कीजिए।

हरिसेवक—श्रीमान् राजा साहब की तो राय है कि शहरवालों को जुलूस निकालने दिया जाय, हमारे सम्मिलित होने की जरूरत नहीं।

मनोरमा ने रुष्ट होकर कहा—राजा साहब से मैंने पूछ लिया है। उनकी राय वही है जो मेरी है। अगर सन्मार्ग पर चलने में रियासत जब्त भी हो जाय; तो भी मैं उस मार्ग से विचलित न हूंगी। आपको रियासत के विषय में इतना चिंतित होने की क्या जरूरत है?

दीवान साहब ने सजल नेत्रों से मनोरमा को देखकर कहा—बेटी, तुम्हारे हीं भले को कहता हूं। तुम नहीं जानती, जमाना कितना नाजुक है।

मनोरमा उत्तेजित होकर बोली—पिताजी, इस सदुपदेश के लिए मैं आपकी बहुत अनुगृहीत हूं, लेकिन मेरी आत्मा उसे ग्रहण नहीं करती। मैंने सर्प की भांति धन-राशि पर बैठकर उसकी रक्षा करने के लिए यह पद नहीं स्वीकार किया है, बल्कि अपनी आत्मोन्नति और दूसरों के उपकार के लिए ही। अगर रियासत इन दो में से एक काम भी न आये, तो उसका रहना ही व्यर्थ है। अभी सात बजे हैं। आठ बजते-बजते स्टेशन पहुंच जाना चाहिए। मैं ठीक वक्त पर पहुंच जाऊंगी। जाइए।

दीवान साहब के जाने के बाद मनोरमा फिर मेज पर बैठकर लिखने लगी। यह वह भाषण था, जो वह चक्रधर के स्वागत के अवसर पर देना चाहती थी। वह लिखने में इतनी तल्लीन हो गई थी कि उसे राजा साहब के आकर बैठ जाने की उस वक्त तक खबर न हुई, जब तक कि उन्हें उनके फेफड़ों ने खांसने पर मजबूर न कर दिया। कुछ देर तक तो बेचारे खांसी को दबाते रहे, लेकिन नैसर्गिक क्रियाओं को कौन रोक सकता है? खांसी दबकर उत्तरोत्तर प्रचंड होती जाती थी, —यहां तक कि अन्त में वह निकल ही पड़ी—कुछ छींक थी, कुछ खांसी और कुछ इन दोनों का सम्मिश्रण, मानो कोई बन्दर गुर्रा रहा हो। मनोरमा ने चौंककर आंखें उठाईं, तो देखा कि राजा साहब बैठे हुए उसकी ओर प्रेम-विह्वल नेत्रों से ताक रहे हैं। बोली—क्षमा कीजिएगा, मुझे आपकी आहट ही न मिली। क्या आप देर से बैठे हैं?

राजा—नहीं तो, अभी-अभी आया हूं। तुम लिख रही थीं। मैंने छेड़ना उचित न समझा।

मनोरमा—आपकी खांसी बढ़ती ही जाती है, और आप इसकी कुछ दवा नहीं करते।

राजा—आप ही आप अच्छी हो जाएगी। बाबू चक्रधर तो दस बजे की डाक से आ रहे हैं न? उनके स्वागत की तैयारियां पूरी हो गईं?

मनोरमा—जी हां, बहुत कुछ पूरी हो गई हैं।

राजा—मैं चाहता हूं, जुलूस इतनी धूमधाम से निकले कि कम से कम इस शहर के इतिहास में अमर हो जाय।

मनोरमा—यही तो मैं भी चाहती हूं।

राजा—मैं सैनिकों के आगे फौजी वर्दी में रहना चाहता हूं।

मनोरमा ने चिन्तित होकर कहा—आपका जाना उचित नहीं जान पड़ता। आप यहीं उनका स्वागत कीजिएगा। अपनी मर्यादा का निर्वाह तो करना ही पड़ेगा। सरकार यों भी हम लोगों पर सन्देह करती है, तब तो वह सत्तू बांधकर हमारे पीछे पड़ जाएगी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

G.M. College
Raipur, Bantalab
Jammu
Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

Acc No...
Dated...

राजा—कोई चिन्ता नहीं। संसार में सभी प्राणी राजा ही तो नहीं हैं। शान्ति राज्य में नहीं, संतोष में है। मैं अवश्य चलूंगा, अगर रियासत ऐसे महात्माओं के दर्शन में बाधक होती है, तो उससे इस्तीफा दे देना ही अच्छा।

मनोरमा ने राजा की ओर बड़ी करुण दृष्टि से देखकर कहा—यह ठीक है, लेकिन जब मैं जा रही हूं तो आपके जाने की जरूरत नहीं।

राजा—खैर न जाऊंगा, लेकिन यहां मैं अपनी जबान को न रोकूंगा। उनके गुजारे की भी तो कुछ फिक्र करनी होगी?

मनोरमा—मुझे भय है कि वह कुछ लेना स्वीकार न करेंगे। बड़े त्यागी पुरुष हैं।

राजा—यह तो मैं जानता हूं। उनके त्याग का क्या कहना ! चाहते तो अच्छी नौकरी करके आराम से रहते, पर दूसरे के उपकार के लिए प्राणों को हथेली पर लिये रहते हैं। उन्हें धन्य है ! लेकिन उनका किसी तरह गुजर-बसर तो होना ही चाहिए। तुम्हें संकोच होता है, तो मैं कह दूं।

मनोरमा—नहीं, आप न कहिएगा, मैं ही कहूंगी। मान लें, तो है।

राजा—मेरी और उनकी तो बहुत पुरानी मुलाकात है। मैं तो उनकी समिति का मेम्बर था। अब फिर नाम लिखाऊंगा। कितने रुपये तुम्हारे विचार में काफी होंगे? रकम ऐसी होनी चाहिए, जिसमें उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न होने पाए।

मनोरमा—मैं तो समझती हूं पचास रुपये बहुत होंगे, उन्हें और जरूरत ही क्या है?

राजा—नहीं जी, उनके लिए दस रुपये काफी हैं। पचास रुपये की थैली लेकर भला वह क्या करेंगे। तुम्हें कहते शर्म न आई? पचास रुपये में आजकल रोटियां भी नहीं चल सकतीं, और बातों का तो जिक्र ही क्या। एक भले आदमी के निर्वाह के लिए इस जमाने में पांच सौ रुपये से कम नहीं खर्च होते।

मनोरमा—पांच सौ ! कभी न लेंगे। पचास रुपये ही ले लें, मैं इसी को गनीमत समझती हूं। पांच सौ का तो नाम ही सुनकर वह भाग खड़े होंगे।

राजा—हमारा जो धर्म है, वह हम कर देंगे, लेने या न लेने का उनको अख्तियार है।

मनोरमा फिर लिखने लगी, और यह राजा साहब को वहां से चले जाने का संकेत था, पर राजा साहब ज्यों के त्यों बैठे रहे। उनकी दृष्टि मकरन्द के प्यासे भ्रमर की भांति मनोरमा के मुख-कमल का माधुर्य रसपान कर रही थी। उसकी बांकी अदा आज उनकी आंखों में खुबी जाती थी। मनोरमा का श्रृंगार-रूप आज तक उन्होंने न देखा था। इस समय उनके हृदय में जो गुदगुदी हो रही थी, वह उन्हें कभी न हुई थी। दिल थाम-थामकर रह जाते थे। मन में बार-बार एक प्रश्न उठता था, पर जल में उछलने वाली मछलियों की भांति फिर मन में विलीन हो जाता था। प्रश्न था—इसका वास्तविक स्वरूप यह है या वह?

सहसा घड़ी में नौ बजे। मनोरमा कुर्सी से उठ खड़ी हुई। राजा साहब भी किसी वृक्ष की छाया में विश्राम करने वाले पथिक की भांति उठे और धीरे-धीरे द्वार की ओर चले। मनोरमा ने करुण कोमल नेत्रों से देखकर कहा—अच्छी बात है, चलिए, लेकिन पिताजी के पास किसी अच्छे डॉक्टर को बिठाते जाइएगा, नहीं तो शायद उनके प्राण न बचें।

राजा—दीवान साहब रियासत के सच्चे शुभचिन्तक हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

G.M.C.E.J
5166

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रेमचंद (1880-1936)

बनारस के पास लमही में 1880 ई में जन्म। असली नाम श्री धनपतराय। आठ वर्ष की आयु में माता और चौदह में पिता का निधन हो गया। अपने बल-बूते से पढ़े। शिक्षा बी॰ ए॰ तक। 1901 में उपन्यास लिखना शुरू किया। कहानी 1907 से लिखने लगे। उर्दू में नवाबराय नाम से लिखते थे। 1910 में सोज़े वतन (कहानी) जब्त की गई, उसके बाद प्रेमचंद नाम से लिखने लगे। 1920 तक सरकारी नौकरी की। फिर सत्याग्रह से प्रभावित हो नौकरी छोड़ दी। 1923 में 'सरस्वती प्रेस' की स्थापना की और 1930 में 'हंस' का प्रकाशन शुरू किया। 8 अक्टूबर, 1936 को निधन।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

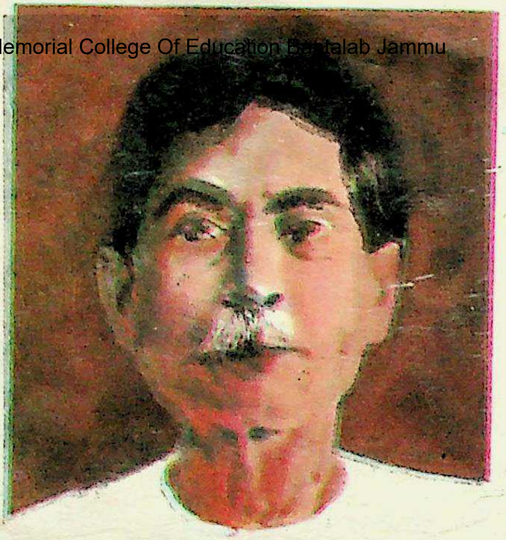

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant